गुरु है द्वार प्रभु का

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिलाः सोनीपत, हरियाणा 131021

 contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

  Rajneeshfragrance

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

अनुक्रमांक

सद्गुरु ओशो के अमृत वचनों से आरंभ

मंदिर से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है प्रवेश–द्वार

यदि दरवाजा न हो, तो मंदिर का होना या न होना हमारे लिए बराबर हो जाए। अगर मार्ग न हो, तो मंजिल का होना भी नहीं होने के तुल्य हो जाए। ठीक ऐसे ही यदि गुरु न हो, तो प्रभु का अस्तित्व हमारे लिए अनस्तित्व के समान हो जाए। तब धर्म का कोई उपाय ही शेष न बचे। ईसा मसीह का वचन है– 'आई एम दि गेट' अर्थात् मैं एक द्वार हूं। ओशो ने इस सारगर्भित वचन को अपनी एक अंग्रेजी प्रवचनमाला के शीर्षक रूप में चुना है। सिक्ख अपने उपासनागृह को गुरुद्वारा ठीक ही कहते हैं। संत कबीर ने तो गुरु–महिमा गाते हुए यहां तक कहा है–

तीन लोक नौ खंड में, गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय।।

सदगुरु ओशो ने इस दोहे का भावार्थ इस प्रकार समझाया है–

''बड़ा कठिन वचन है। अगाध श्रद्धा हो तो ही समझ में आ सकता है। आस्तिक भी थोड़ा डरेगाः ये कबीर थोड़ा सीमा के बाहर जा रहे हैं! आस्तिक भी कहेगा कि ठीक था कि गुरु पर श्रद्धा हो; लेकिन कबीर अब यह कह रहे हैं, तीन लोक नौ खंड में गुरु ते बड़ा न कोय। पर समग्र अस्तित्व में गुरु से बड़ा कोई भी नहीं। इसलिए हम गुरु कहते हैं। गुरु का अर्थ है, जिससे भारी और कुछ भी नहीं।

करता करै न करि सके– और परमात्मा भी करना चाहे, तो भी न कर पाए। गुरु करै सो होय– और गुरु जो करना चाहे, वह हो जाए। क्या मतलब परमात्मा के ऊपर गुरु को रखने में? परमात्मा के साथ रखने तक भी हम जा सकते हैं कि चलो ठीक, हमें पता नहीं श्रद्धा का, होगा कि गुरु भी परमात्मा है– लेकिन परमात्मा के ऊपर!

कबीर अतिशयोक्ति करते मालूम पड़ते हैं। नहीं, कबीर यह कह रहे हैं कि साधन साध्य से बड़ा है। क्योंकि साधन के बिना तुम साध्य तक तभी न पहुंच सकोगे। मार्ग मंजिल से बड़ा है, क्योंकि मार्ग के बिना तुम मंजिल तक कभी न पहुंच सकोगे। और जब मार्ग के बिना मंजिल मिल ही नहीं सकती, तो कौन बड़ा है? जब मार्ग बिलकुल अपरिहार्य है, उसके बिना इंच भर गति नहीं तो मंजिल सिर्फ मार्ग का आखिरी छोर हुआ। जब सीढ़ी के बिना तुम चढ़ ही न सकोगे छप्पर पर, तो सीढ़ी छप्पर से बड़ी हो गई।

करता करै न करि, सके, गुरु करै सो होय।

और परमात्मा भी जो करना चाहे, तो न कर पाए, वह भी गुरु करना चाहे तो कर सकता है। क्यों? उसके कई कारण हैं। समझने की कोशिश करें।

मनुष्य की पहली अवस्थाः अंधकार, अज्ञान, भटका हुआ। परमात्मा की अवस्थाः परमज्ञान, पहुंचा हुआ। गुरु दोनों के बीच- आधा मनुष्य, आधा परमात्मा; परमात्मा और मनुष्य के बीच सेतु। परमात्मा समझ भी नहीं सकता तुम्हारी तकलीफ। तुम कितना ही रोओ-गाओ, कितना ही चिल्लाओ, परमात्मा के कान तुम्हारी आवाज न सुन सकेंगे; क्योंकि वह कान ही उसके पास नहीं हैं। वह परम अवस्था है। वहां दुख की कोई बात पहुंच नहीं सकती। वह परम शून्यता है। वहां तुम चिल्लाते रहोगे, आकाश में गूंजेगी बात और खो जाएगी, वहां से कोई उत्तर न आएगा। वह आखिरी अवस्था है। उससे तुम्हारा कोई संबंध नहीं जुड़ सकता। लेकिन गुरु मध्य में है। वह आधा तुम जैसा है; आधा परमात्मा जैसा है। वहां दोनों मिलते हैं। वह जैसे संपर्क की जगह है, जहां दी सीमाएं मिलती हैं।

जहां तुम्हारा अंत होता है और जहां परमात्मा शुरू होता है- उस सीमा पर थोड़ी बात हो सकती है। तुम गुरु से कुछ कह सकते हो। वह समझेगा। क्योंकि वह भी वहीं से गुजरा है, जहां से तुम गुजरे हो। उन्हीं कष्टों में, उन्हीं चिंताओं और दुखों में वह भी जीया है, जिनमें तुम अब जी रहे हो। जो तुम्हारा वर्तमान है, वह उसका अतीत था। जो तुम्हारा भविष्य है वह भी उसका वर्तमान है। वह वहां खड़ा है, जहां से परमात्मा और तुम जुड़े हो, ठीक मध्य में। तुम कुछ कहोगे, अगर गुरु ने सुन लिया, तो गुरु के द्वारा परमात्मा ने सुन लिया। तुम कुछ निवेदन करोगे, तुम्हारी भाषा उसकी समझ में आएगी, क्योंकि तुम्हारी भाषा वह बोलता है। परमात्मा को तुम्हारी भाषा बिलकुल समझ में नहीं आ सकती। कौन सी भाषा समझेगा परमात्मा? कैसे समझेगा?

परमात्मा, तुम्हारी भाषा कोई भी हो, न समझ पाएगा- चाहे संस्कृत, चाहे अंग्रेजी, कुछ भी हो। आदमी की भाषा परमात्मा कैसे समझ सकता है? आदमी की भाषा आदमी समझ सकता है। लेकिन आदमी ही अगर समझे तो सहायता क्या करेगा?

गुरु ऐसा आदमी है जो तुम्हारी भाषा भी समझ सकता है; और एक तरफ से जिसका जीवन और प्राण परमात्मा में लीन हो गया। एक हाथ तुम्हारे हाथ में और एक हाथ परमात्मा के हाथ में। इसलिए तुम जो कहोगे, वह समझेगा। तुम जो कहोगे, वह करेगा। वह चाहेगा कि तुम्हारी मांग उचित है, तो कुछ हो सकता है। क्योंकि दूसरा हाथ उसका परमात्मा का हाथ है। वह दोनों है। इसलिए कबीर जो कहते हैं, मैं भी सहमत हूं। अतिशयोक्ति नहीं है यह बात, बिलकुल सही है।

'करता करै न कर सके, गुरु करै सो होय।' (सुनो भाई साधो, प्रवचन-4 से)

सद्‌गुरु ओशो के चरणों में अर्पित हैं एक शिष्य के ये भाव-सुमन। इन्हें प्रवचनों अथवा 'गुरु ग्रंथ साहिब' के शबदों की बौद्धिक व्याख्याओं की भांति मत समझना। श्रद्धापूर्वक हृदयंगम करना। इनकी सुगंध से जीवन को ओतप्रोत कर दिव्यलोक में प्रवेश करना। किसी सदगुरु के शिष्य बनने की प्रेरणा बनाना।

—मा ओशो नियति, मा ओशो प्रियांशी (संपादिका)

खोजते बड़भागी राम-राम बोल

राम राम बोलि बोलि खोजते बड़भागी।
हरि का पंथु कोऊ बतावै हउ ता कै पाइ लागी ।।1।।रहाउ।।
हरि हमारो मीतु सखाई हम हरि सिउ प्रीति लागी।
हरि हम गावहि हरि हम बोलहि
अउरु दुतीआ प्रीति हम तिआगी ।।1।।
मनमोहन मोरो प्रीतम रामु हरि परमानंदु बैरागी।
हरि देखे जीवत है नानकु इक निमख पलो मुखि लागी ।।2।।

राम-नाम जपते हुए सौभाग्यशाली जीव गुरु की खोज करते हैं। जो हमें हरि का मार्ग बताए, मैं उसके चरण-स्पर्श करूँगा ।।1।।रहाउ।।

हरि हमारा सखा है, मित्र है और उसके साथ हमारी प्रीति लग गई है। हरि का हम गायन करते हैं और हरि को उच्चारित करके हम जाप करते हैं और दूसरी दुनियावी प्रीति हमने त्याग दी है ।।1।।

मन को मोहित करने वाला राम परमानन्द रूप है, वैरागी है, मेरा प्रियतम है। गुरु नानक का कथन है कि उस हरि को देखने से हमारा जीवन सफल है, जो एक निमिष मात्र के लिए हमें दर्शन दे ।।2।।

सभी मित्रों को नमस्कार।

मनुष्य का जीवन एक खोजी का जीवन है। हर मनुष्य कुछ खोज रहा है। चाहे स्पष्ट ना भी हो कि वह क्या खोज रहा है? फिर भी बड़े गहरे चेतन में एक तलाश चल रही है। हम जहां हैं, जो हैं, उससे तृप्त नहीं है। इससे कुछ भिन्न, इससे कुछ अलग कहीं और पहुंचने की चाहत है। अन्य पशु-पक्षियों से तुलना करें, वे कुछ भी नहीं खोज रहे हैं, वे जैसे हैं, जहां हैं, जो हैं वैसे होने से राजी है। कोई खोज नहीं है उनकी। एक कुत्ता, कुत्ता है। एक गाय, गाय है। चिड़िया, चिड़िया है। आम का पौधा, आम का पौधा है। गुलाब का फूल, गुलाब का फूल है। कोई खोज-बीन नहीं है। लेकिन मनुष्य एक खोज में है।

साफ-साफ नहीं है कि हम क्या खोज रहे हैं? क्यों खोज रहे? और एक बात पक्की है कि जहां हम हैं, प्रकृति ने हमें जैसा जीवन दिया है हम उससे तृप्त नहीं हैं, कुछ और तलाश है। कुछ गहरी तलाश, कुछ श्रेष्ठतर, उच्चतर की खोज। यह खोज दो रूप ले लेती है। जो बर्हिमुखी लोग हैं, उन्होंने विज्ञान विकसित किया, पदार्थ की खोज की और दूसरे, जो अंतर्मुखी लोग हैं उन्होंने आत्मा की, परमात्मा की खोज की। अध्यात्म का जन्म हुआ।

तो पूरब और पश्चिम, इन दोनों के खोजियों ने, मनीषियों ने दो भिन्न आयामों में खोज-बीन की। एक पदार्थ को खोजते-खोजते परमाणु तक पहुंच गए और एक स्वयं में डुबकी लगाते-लगाते परमात्मा तक पहुंच गए। गुरु नानक देव जी आज के शबद में कहते हैं, धन्य भागी हैं वे लोग जो अपने प्रभु की खोज में लगे। और जिन्होंने जाना कि प्रभु की खोज के लिए गुरु के सहारे की जरूरत होगी और इसलिए पहले गुरु का सहारा खोजा। राम-राम बोल-बोल खोजते बड़भागी। कहते हैं, बड़भागी हैं वे लोग, बड़े सौभाग्यशाली हैं जो खोज में लगे हैं। किसकी? 'हरि का पंथ कोउ बताए, ताके पाएं लागी।' उस सद्गुरु की खोज में, जो हरि मिलन का मार्ग बता सके। 'हरि का पंथ कोउ बतावे' कहते हैं, मैं उसके चरण स्पर्श करूं 'ताके पाएं लागी।' गुरु की खोज पैदा हो जाए, अर्थात् शिष्य भाव का जन्म हो जाए, यही महासौभाग्य की घटना है।

नानक के माननेवालों को सिक्ख कहा जाता है। पर याद रखना सिक्ख कोई तभी होता है जब उसमें शिष्यत्व पैदा हो जाए। हिन्दी के 'शिष्य' शब्द का पंजाबी रूपांतरण है 'सिक्ख' यानि सीखने वाला। एक खास प्रकार के कपड़े पहन लेने से, केश बढ़ा लेने से, कटार लटका लेने से कोई सिक्ख नहीं हो जाता। जिसमें सीखने की गहन अभीप्सा हो, जो गुरु का सत्संग खोज रहा हो, वह सिक्ख है। ऐसा व्यक्ति बड़भागी है, सौभाग्यशाली है।

'राम-राम बोल-बोल खोजते बड़भागी।' प्रभु का नाम लेते हुए, बोलते हुए ऐसे लोग गुरु की खोज करते हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण वचन है याद रखना। जो भूल हो जाती है वो यह हो जाती है कि हम सीधे ही प्रभु की खोज में लग जाते हैं। जो कि लगभग नामुमकिन है, ९९ प्रतिशत असंभव है। यदा-कदा बहुत किसी बिरले व्यक्ति को ही सीधा, साक्षात घटित होता होगा। ९९ प्रतिशत लोगों को तो गुरु की सहारे की जरूरत पड़ती है। तो गुरु को ही पहले खोजना उचित है। गुरु के माध्यम से फिर प्रभु मिल ही जाएंगे। तो अध्यात्म में

जो बड़ी से बड़ी भूलें होती हैं उनको भी समझ लेना जरूरी है कि वह कौन सी भूलें हैं?

सबसे पहले बच्चा अपने चारों तरफ देखता है, परिवार में, समाज में अन्य लोग क्या-क्या कर रहे हैं? वह देखता है कि सब मंदिर जाते हैं, मस्जिद जाते हैं। मूर्ति पूजा होती है किसी घर में, वो भी मूर्ति पूजा सीख जाता है। बच्चे नकलची होते हैं, सारी चीजें नकल कर-कर के सीखते हैं। सीखने का अन्य कोई उपाय है भी नहीं। नकल कर के ही तो सीखेंगे। अध्यात्म का पहला पड़ाव है मूर्ति पूजा। साकार की उपासना। वही सबसे ज्यादा प्रचलित है, हमारी इंद्रियों के पकड़ में आती है।

वही धर्म का सबसे स्थूल रूप सदा-सदा से हावी रहा है। आज भी है और शायद भविष्य में भी होगा। ये करीब-करीब ऐसे हैं, जैसे हम कहें कि अध्यात्म का के.जी. स्कूल। तो स्वाभावतः सबसे ज्यादा तो के.जी. स्कूल की जरूरत होगी। हायर स्कूलों की गिनती इससे कम होगी, कॉलेज की गिनती और कम होगी, युनिवर्सिटी की गिनती न्यूनतम होगी। स्वभाविक रूप से पिरामिड की तरह ऊपर चीजें छोटी होती जाएंगी। सारे लोग इतने बड़भागी नहीं है कि हायर एजुकेशन प्राप्त कर सकें।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मोटी सी किताब लिए अपने गांव के बाहर एक पहाड़ी थी, उस पहाड़ी पर चढ़ गया। तेज धूप थी, छाता लेकर गया था और ऊपर पहाड़ी की चोटी पर छाता लगाकर बैठा हुआ वह किताब पढ़ रहा था। किसी ने नीचे से चिल्लाकर पूछा, इस तेज दोपहरी में, गर्मी में किसलिए इतना ऊपर चढ़े, पसीना-पसीना हो गए होगे? और क्या पढ़ रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने सुना है बहुत लोग आज-कल हायर स्टडीज कर रहे हैं। मैं भी उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर रहा हूं।

भीतर भी, अध्यात्म की उच्चतर शिक्षा की ओर हम जैसे-जैसे बढ़ेंगे, हम पाएंगे पर्वत का शिखर बड़ा छोटा होता जाता है। पर्वत की बुनियाद, जहां से पहाड़ शुरू होता है वह बुनियाद चौड़ी होती है। हिमालय कितने सैकड़ों किलोमीटर तक फैला है, आधार में फैलाव है और एवरेस्ट की चोटी पर सिर्फ पैर रखकर मुश्किल से खड़े भर हो सकते हैं। बड़ी छोटी सी जगह है। जैसे-जैसे हम नीचे से ऊपर की ओर जाते हैं स्वभावतः गिनती कम और कम होती चली जाती है। धर्म की विशाल बुनियाद है- मूर्ति पूजा। साकार के संग भक्ति भाव को जोड़ना। वहां से यात्रा की शुरूआत होती है। अधिकांश यहीं अटक जाते हैं।

लेकिन थोड़े से लोग हैं जो इससे ऊब जाते हैं, उनको लगता है कि बात कुछ बन नहीं रही, ये बड़भागी लोग हैं। इनकी खोज थोड़ी आगे बढ़ी। दूसरी चीज जो नजर आती है वह है- शास्त्र, सिद्धांत, फिलासफी, धर्म ग्रंथ एवं इनका अध्ययन, मनन, चिंतन, स्वाध्याय, तर्क-वितर्क और वाद-विवाद आदि। यह सब भी बड़े उलझाने वाले हैं। विवादों का कोई अंत नहीं है। कितना ही तर्क-वितर्क में दिमाग लगाओ, सत्य हाथ में नहीं आता। कोरे सिद्धांत, कोरे शब्द हाथ में आते हैं। लेकिन कई साल इसमें लग जाएंगे, उलझे-उलझे। तब एक दिन किन्हीं बड़भागियों को अचानक सूझेगा कि मैं व्यर्थ मेहनत कर रहा हूं। कोई अनुभव तो हो नहीं रहा। ईश्वर के बारे में बहुत ज्ञान हो गया, किंतु ईश्वर का ज्ञान तो नहीं हुआ। भागवत-अनुभव तो अभी उतना ही दूर है जितना पहले था। अब क्या किया जाए?

दो नावों पर सवार होकर देख लिया। मूर्ति पूजा है पत्थर की नाव। और ये शास्त्र अध्ययन करने वाले कागज की नाव पर सवार हैं। ना तो पत्थर की नाव उस पार ले जा सकती है, ना यह कागज की नाव। लेकिन बहुत विरले लोग हैं जिनको यह बात सूझेगी। फिर तीसरी खोज शुरू होती है कि मैं अपने ही बल पर कुछ करूं। पहले जो संसार में किया था अब उसका उल्टा कर के देखूं। पहले धन संग्रह किया था, चलो, अब दान कर के देखूं। पहले प्रेम संबंध बनाए थे, मित्रता साधी थी, घर-गृहस्थी बसायी थी, अब परिवार एवं समाज आदि का त्याग कर दूं। पहले घर बनाया था, अब जाकर जंगल की गुफा में रहूं। कुछ उल्टा करूं। पहले यश, मान, प्रतिष्ठा इसके पीछे दीवाना था। अब इन सब को छोड़-छाड़ के चल दूं। यह भी एक बड़ा फेरा है। इसमें से निकलना बड़ा मुश्किल है। यह भंवर जाल में फंसना है- धर्म के नाम पर तीसरा उलझाव।

तथाकथित धार्मिक आदमी उन सब चीजों में फंस जाता है जो कि संसार के लोगों के ठीक विपरीत हैं। पहले वह स्त्रियों की तरफ भाग रहा था, अब स्त्रियों से दूर भाग रहा है; लेकिन ध्यान स्त्री पर ही केंद्रित है। फर्क नहीं पड़ा। पहले अहंकार को पुष्ट करने में लगा था; अब विनम्र बनने में लगा है लेकिन मुख्य बिन्दु अभी भी अहंकार ही है। पहले धन संग्रह था, अब दान है; लेकिन केन्द्र बिंदु अभी भी धन ही है। ईश्वर कैसे मिलेंगे? पहले शरीर की सुख-सुविधा खोज रहा था अब अपने आप को कष्ट दे रहा है, तपस्वी बन गया। लेकिन न तो सुविधा में रहने से प्रभु मिलते, न कष्ट में रहने से मिलते हैं। प्रभु का इससे कोई संबंध ही नहीं है। ये दोनों घटनाएं बाहर की है, और परमात्मा विराजमान है हमारे भीतर। ये सब बाहर की चीजें हैं- परिग्रह या दान, भोग या त्याग, राग-विराग।

धन भी बाहर था और दान भी बाहर है। भोग भी बाहर है, त्याग भी बाहर है। सुविधा भी बाहर की, तपस्या भी बाहर की है। भीतर का तो कोई संबंध ही नहीं। आदमी तो अभी भी बाहर में उलझा है- किए जा रहा है बाह्य इंतजाम। पहले अच्छे से अच्छे कोमल गद्दे खरीदने का इंतजाम कर रहा था अब पैने से पैने तेज कांटे बिछा रहा है। नुकीले पत्थर ढूंढ रहा है। लेकिन दोनों इंतजाम बाहर के हैं। भीतर की बात इससे नहीं सधेगी। फिर इस गड्ढे से निकलने में भी बहुत समय लगेगा; जब यह सूझ-बूझ उत्पन्न होना कि ना मूर्ति, ना शास्त्र और ना ही धर्म के नाम पर चल रहे ये दान, पुण्य, त्याग, तपस्या इत्यादि किसी काम के हैं। ये साधनाएं प्रभु-प्राप्ति के साधन नहीं हैं।

लेकिन सवाल उठता है अब करो तो क्या करो? जो-जो हम कर सकते थे कर के देख लिया। इसके आगे हमारे बुद्धि काम नहीं करती। तब यह ख्याल आता है कि किसी सद्गुरु को खोजें, किसी ऐसे व्यक्ति को जिसने प्रभु को पा लिया है। उससे शायद कुछ बात बने। उसने कैसे पाया? उसके संग उठे-बैठें, उसके संग जिएं, उससे पूछें। क्योंकि वो तो साक्षात प्रमाण है। शास्त्र लिखने वाले कौन थे... अब हमको तो नहीं पता। हजारों साल पुरानी किताबें, किसने लिखे? क्यों लिखे? वो सत्यवादी थे, नहीं थे, क्या मालूम?

समय के संग-साथ शास्त्रों में न जाने क्या-क्या जुड़ता/घटता जाता है। किसने क्या लिख दिया, हटा दिया अपने हिसाब से। बार-बार एडिटिंग, रि-एडिटिंग चलती रहती है।

अतः एक ही बात समझ में आती है कि कोई रास्ता मिल जाए, कोई सद्‌गुरु मिल जाए, उससे पूछें। तो निश्चित ही बड़े विरले लोगों के जीवन में ये घटना घट पाएगी। जो के.जी. स्कूल, प्राईमरी स्कूल, हाई स्कूल सब पास कर आए हैं। मूर्ति पूजा, शास्त्र अध्ययन, तर्क-वितर्क, सिद्धांत, त्याग-तपस्या उस सब से बाहर निकल चुके हैं। इन लोगों में बड़ी गहरी समझ उत्पन्न हो गई। अब उनकी खोज ने एक नया आयाम पकड़ा कि किसी जीवित व्यक्ति को खोजें, जो जानता हो, उससे मार्ग दर्शन लें।

'हरि का पंथ कोउ बतावे।

हौं ताके पाव लागी।।'

अब उसके चरण पकड़ें, अब उसके चरण-चिह्नों पर चलकर देखें। चरण पकड़ने का अर्थ केवल भौतिक रूप से मत लेना कि कदमों में झुक गए। वह तो एक प्रतीक है। असली बात है कि वह व्यक्ति जिस राह पर चल रहा है, उसके कदमों के निशाँ जहां पड़े हैं, उन पर हम भी चल कर देखें। वह जो मार्ग बताए, 'हरि का पंथ कोउ बताए।' वह जो इशारा करे, जो संकेत दे, अब हम वही करें। धर्म की राह में कदमों के निशाँ पर चलना भी संभव नहीं है क्योंकि अध्यात्म में कोई ठोस भूमि नहीं है जहां पर पैरों के निशान भी बन सकें। यह तो आकाश की भांति है, पंछी उड़ जाता है और पीछे कोई रास्ता नहीं छूटता, कोई चिन्ह नहीं छूटते। हजारों लोगों ने बुद्धत्व पा लिया, परम ज्ञान हासिल कर लिया, ब्रह्मलीन हो गए; किंतु पीछे कोई पगडंडी नहीं बनती। इसलिए साधक, गुरु के द्वारा इंगित सूक्ष्म इशारों को समझे, पकड़े और उस अदृश्य राह पर चले।

'हरि हमारो मीत सखायी हम हरि सों प्रीत लागी।'

कहते हैं, मेरी प्रीति परमात्मा से लग गयी है।

'हरि हम गावै, हरि हम बोलै।'

अब तो हम उसी की गुणगान करते हैं, उसी की बातें करते हैं, चर्चा करते हैं।

'दुतीया प्रीत हम त्यागी।'

दूसरी सारी प्रीति की भावना समाप्त हो गयी क्योंकि परमात्मा में सब कुछ शामिल हो गया। इस भावार्थ को ठीक से समझना। जब हम कह रहे हैं परमात्मा, उसमें सब कुछ आ गया। जो प्रीत बच्चों से लगी थी, भाई-बहनों से लगी थी, माता-पिता से लगी थी, पति-पत्नी से लगी थी, मित्रों से लगी थी, वस्तुओं से लगी थी, अन्य-अन्य चीजों से लगी थी, हरि में सब कुछ आ गया। परमात्मा यानी सब कुछ, समस्त ब्रह्माण्ड, पूरा अस्तित्व। उसमें हमारे जो छोटे-छोटे प्रेम-पात्र थे वे सब शामिल हैं। इसका ऐसा पॉजिटिव अर्थ लेना।

हरि से प्रीत लागी, हरि हमारो मीत सखायी। अब हमें पता चल गया कि हमारे सारे मीतों में, सारे सखाओं में, सारे प्रेम संबंधो में हम जिसे खोज रहे थे वास्तव में वह परम चैतन्य ही था। शायद आपने कभी इसका गौर न किया हो, ख्याल करना... जब आप कहते हैं मैं फलां व्यक्ति से बहुत प्रेम करता हूं; अगर आप से पूछा जाए, जरा ठीक-ठीक बताओ किस चीज से? क्या यह प्रेम शरीर का प्रेम है? आप कहोगे नहीं। वह व्यक्ति जिस

दिन मर जाएगा आप ही उसकी अर्थी बांधकर ले जाओगे, श्मशान पर जलाने के लिए। शरीर से प्रेम तो नहीं था, तो फिर किससे प्रेम है- मन से, उसके विचारों से? नहीं। मन से भी नहीं है। इस मन के कारण ही तो हजार मतभेद होते हैं, कलह-क्लेश होते हैं, लड़ाई झगड़े होते हैं।

मन की वजह से तो प्रेम में बाधा पड़ती है हमेशा। विचार अलग-अलग हैं। उससे मुश्किल खड़ी होती है। तो हम किससे प्रेम करते हैं? तन को नहीं करते, मन को नहीं करते, फिर? वास्तव में उसके भीतर विराजमान चैतन्य को हम प्रेम करते हैं।

इस तरह से खोजने पर तुम पाओगे कि तुम्हारे सारे प्रेम के नातों में कुल मिलाकर परोक्ष रूप से परमात्मा से ही प्रेम चल रहा है। और हमारे ये नाते हमें तृप्त नहीं कर पाते क्योंकि हमने बहुत ऊंची आकांक्षा की थी, हमने परमात्मा को ही चाहा था।

भारत में कहा जाता है- पति परमेश्वर। हर स्त्री की चाहत वही है कि परमेश्वर से प्रेम हो! इतनी ऊंची आकांक्षा और अपेक्षा लेकर जिस व्यक्ति को प्रेम किया था बाद में वह साधारण मनुष्य साबित होता है। हृदय जार-जार हो जाता है। चाहत में गलती नहीं थी, चाहत तो बिल्कुल ठीक थी। लेकिन हम जहां चाह रहे थे, जिससे उम्मीद लगा कर बैठे थे वहां वह कामना पूरी नहीं हो सकी। हम बहुत ऊंची उड़ान भरने की कोशिश कर रहे थे। हर युवक ने अपनी प्रेमिका में किसी अप्सरा के, दिव्यता के ही दर्शन किए थे। किसी देवी को ही वह खोज रहा था। बाद में पता चला कि ऐसा नहीं, सचाई कुछ और है।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी बीवी का खूब झगड़ा हो रहा था। काफी कटाक्ष और अपशब्द भी बोले जा रहे थे दोनों तरफ से। अंततः पत्नी ने चिल्ला कर कहा कि अब चुप भी करो! तुम्हारी बजाए मेरी शादी किसी राक्षस से भी हुई होती तो मैं ज्यादा सुखी रहती। नसरुद्दीन ने कहा, गुलजान, ऐसा कभी नहीं हो सकता, भाई-बहन में शादी नहीं होती।

खोज रहे थे देवी, निकली राक्षसनी। साधारण प्रेम हमें तृप्ति नहीं दे पाता, कभी नहीं दे पाएगा। ऐसा नहीं है कि किसी व्यक्ति का दोष है, परंतु हम कुछ असंभव खोज रहे हैं। समझदार वह है जो जल्दी से जल्दी इस बात को समझ ले कि वास्तव में, मैं खोज क्या रहा हूं? मैं विराट असीम परमात्मा को ही खोज रहा हूं। और इतने छोटे रूप और आकार में वह नहीं समा सकता। मैं उस अनंत अथाह सागर को चम्मच में ढूंढ़ रहा हूं! तलाश रहा हूं क्षुद्र में तो मिलेगा कैसे? तो विराट को विराट में ही खोजा जाए, अंश में नहीं, संपूर्ण को संपूर्ण में ही खोजा जाए, तो ही मुलाकात हो सकती है।

'हरि हमारो मीत सखाई, हम हरि सों प्रीत लागी।'

तब व्यक्ति का प्रेम भाव, पराभक्ति बन जाता है और संपूर्ण अस्तित्व के प्रति संलग्न हो जाता है। उसमें सारे संबंध भी समा जाते हैं। हां, अब हमारी अपेक्षाएं वो न रहेंगी। अब हम अंश से पूर्ण की अपेक्षा न करेंगे। हम क्षुद्र से विराट की तमन्ना ना करेंगे। क्षुद्र में जितना हो सकता है उतना ही बहुत है। अब हम दीपक में सूरज को न खोजेंगे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम दीपक पर क्रोधित हो गए। हमारी खोज बिल्कुल ठीक थी; हम सूर्य ही चाह रहे थे। लेकिन दीपक से नाराज होने की जरूरत नहीं। एक दीपक में

जितना तेल है, उसके अनुसार ही उसकी रोशनी है। इस छोटे से दीपक में इतना ही हो सकता है इसके लिए धन्यवाद भाव से भरना और विराट की खोज में आगे निकल जाना।

तो संसार के विरोध में नहीं है, प्रभु की खोज। संसार में तो हमने सबक सीखा यही तो हमारा कॉलेज था; विश्वविद्यालय था। ये शब्द बड़ा अच्छा है। यह पूरा विश्व ही विद्यालय है; दि यूनिवर्स इज दि यूनिर्वसिटी! समस्त जीवन से सीखो पाठ और सर्वाधिक महत्वपूर्ण पाठ यह है कि यहां किसी भी व्यक्ति से हम प्रेम लगाऐंगे तो बात नहीं बनेगी। क्योंकि हमारी आकांक्षा बहुत महान की है, विराट की है। इन छोटे-छोटे प्रेम पात्रों में वह विराटता समा नहीं सकती। तब हमारी प्रीति उड़ान भरती है और भक्ति बन जाती है। 'दुतीया प्रीत हम त्यागी।'

अभी छोटे से लगाव छोड़ दिया, पर उनके विरोध में नहीं हैं। वह दीपक जितनी रोशनी दे सकता था उसने दी है, उसके लिए धन्यवाद देना, शुक्रगुजार होना।

'मनमोहन मोर प्रीतम राम हरि परमानंद वैरागी।'

कहते हैं, उस मोहन ने मेरे मन को मोह लिया। मनमोहन शब्द का अर्थ है कि मन को मोह लिया। अब मुझे सूझ-बूझ पैदा हो गयी है कि मैं क्या खोज रहा था? क्यों खोज रहा था? अब बात समझ में आयी। 'मनमोहन मोर प्रीतम राम।' वह प्रीतम, वह परमात्मा ही मेरे मन को मोह रहा था।

'हरि परमानंद वैरागी।'

हरि शब्द भी बहुत अच्छा है, इसके कई अर्थ है, करीब सवा सौ से ज्यादा अर्थ। उसमें से एक अर्थ है, हरण करने वाला, चुराने वाला। अब प्रभु ने ही मेरा दिल चुरा लिया। 'हरि परमानंद।' वह परमानंद स्वरूप है मेरा प्रियतम। 'हरि देखो जीवत है नानक एक निमष पलो मुख लागी।' कहते हैं नानक, कि जीवन उसी का सार्थक हुआ जिसने हरि दर्शन कर लिया। इस अंतिम वचन में एक बात और समझ लेना, दर्शन का अर्थ वैसा नहीं है जैसा हम बाहर की दुनिया में चीजों को देखते हैं; द्वैत भाव से।

मैं एक वृक्ष को देखता हूं तो मैं, मैं हूं; वृक्ष, वृक्ष है- वहां दो हैं। हम अध्यात्म में जो जानेंगे वह एक होकर जानेंगे। तो मजबूरी वश भाषा में तो ऐसे ही व्यक्त करना पड़ेगा कि प्रभु-दर्शन हुए लेकिन उस दर्शन में दृष्टा और दृश्य अलग-अलग न थे। यह बात ख्याल में रहे। ऐसा नहीं है कि आप कहीं पहुंच गए और दरवाजा खटखटाया और जिन्होंने दरवाजा खोला वह बोले कि 'हेलो, मैं ही हूं परमात्मा, परमानंद रूपी प्रभु! तुम मुझे ही खोज रहे थे, आओ बड़भागी'।

ऐसा कभी नहीं होगा। दृष्टा और दृश्य में विभाजन नहीं होगा। जहां-जहां दो थे, नानक पहले ही कह रहे हैं 'दुतीया प्रीत हम त्यागी।' जहां-जहां द्वैत था, दूसरापन था, वह वाली प्रीति हमने छोड़ दी, अब तो अद्वैत है- 'जिसे' हमने जाना, 'उसे' 'वही' होकर जाना।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं ब्रह्म को जानने वाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है। अद्भुत है यह बात। यह हमारे लौकिक ज्ञान से बिल्कुल भिन्न है, जब आप एक वृक्ष को जानते हैं तब आप वृक्ष नहीं हो जाते। जब आप एक भैंस को देखते हैं तो आप भैंस नहीं हो जाते। बाहर के

जगत में हम जो भी जानेंगे, हम हमेशा उसके दूर साक्षी बने रहते हैं। हम दृष्टा रहते हैं, वह घटना दृश्यरूप होती है हमारे सामने। लेकिन अपने अंतर्तम में जो हम जानते हैं वहां कोई दूसरा, भिन्न नहीं है। वहां द्वैत भाव नहीं है। वहां तो हम स्वयं ही स्वयं को जान रहे हैं। आत्मा ही परमात्मा है। लेकिन यह बात कौन बताएगा? कोई सद्‌गुरु ही बता सकता है, जिसने खुद में खुदा को पहचाना है। और इसलिए... खोजते बड़भागी!

'हरि का पंथ कोउ बताए ताके पाए हम लागी।' और गुरु यह भी बताते हैं कि न मूर्ति पूजा जरूरी थी, न शास्त्र अध्ययन जरूरी था, न त्याग-तपस्या, न दान-पुण्य जरूरी था। उससे प्रभु मिलन का कोई संबंध नहीं है। प्रभु मिलन का संबंध इससे है कि जहां-जहां द्वैत है वहां से तुम खिसक जाओ। भीतर ध्यान में डूबते-डूबते तुम उस जगह पहुंच जाओगे जहां अद्वैत है, जहां केवल तुम ही रह गए। अब तुम्हारी मर्जी चाहे इसे कह लो आत्म स्मरण, चाहे कह लो हरि स्मरण। गुरु दोनों के मध्य में है, उसने मार्ग बताया इसलिए वह दोनों के बीच की जोड़ने वाली कड़ी है। दो किनारों के बीच का सेतु है।

गुरु एक तरफ से हमारे जैसा है, मनुष्य है। रूप में है, आकार में है, शरीरधारी है ठीक हमारे जैसा। भूख-प्यास उसको लगती है। बीमार पड़ता, दवाई लेता, एक तरफ से हमारे जैसा है। हमारे जैसे वचन बोलता, भाषा का उपयोग करता और दूसरी तरफ से उस विराट निराकार के संग एक है। तो गुरु एक अद्भुत घटना है एक तरफ से मनुष्य दूसरी तरफ से परमात्मा। जहां तक देह का संबंध है वह एक मनुष्य है और जहां तक चेतना का संबंध है वह परमात्मा है। और इसलिए वहां से मार्ग मिल जाता है। सत्संग में शिष्य भी धीरे-धीरे उसे 'एब्ज़ार्ब' कर लेता है, ग्रहण कर लेता है। देह के अंदर मन-मंदिर में डूबते-डूबते, अपनी आत्मा में परमात्मा से मिलन हो जाता है, जैसा कि गुरु का हुआ है।

ना मंदिर-मस्जिद जाना जरूरी था इसके लिए, ना ग्रंथ-अध्ययन आवश्यक थे, न सिद्धांतों में उलझना जरूरी था, न भोग जरूरी था, न त्याग जरूरी था। कुछ भी अनिवार्य न था। यह बात तो अपने अंतर्तम में घटती है। वस्तुतः अध्यात्म अपने ध्यान में, स्मृति भाव में , सुरति में डूबना है। जहां द्वैत न रह जाए, 'दुतीया प्रीत हम त्यागी।'

गुरु नानक देव जी के इस प्यारे तथा सारगर्भित शबद के संग अब चलें उस लोक में, अंतर्लोक में डूबें। यद्यपि यह गीत लिखा है गुरु रामदास जी ने, किंतु अपने गुरु के संग ऐसा गहन एकात्म सध गया है कि अपना नाम तक नहीं लिखते। नानक का नाम ही लिखते हैं। वास्तव में उनके मुख से अब नानक ही बोल रहे, उनके कंठ से नानक ही गा रहे हैं। अन्य सभी गुरु साहिबानों ने भी ऐसा ही किया है। उनकी इस अद्वितीय एंव 'अदुतीया प्रीति' का समादर करते हुए आगे मैं भी केवल गुरु नानक का ही नाम लूंगा।

इन शबदों की गुरुमुखी भाषा करीब तीन-चार सौ साल पुरानी हो गई। इस बीच में काफी कुछ बदल गया। इसलिए अनेक अप्रचलित शब्दों का हिन्दी उच्चार करूंगा। जो श्रोताओं की समझ आ सकें। मेरे लिए व्याकरण और भाषा आदि से अधिक महत्वपूर्ण हैं सुनने वाले। मुझे विद्वता नहीं दिखानी है, बात समझानी है। हृदय में उतारनी है। तो भाषागत त्रुटियां मत ढूंढ़ते रहना। अपने भीतर निशब्द मौन में डूबना। धन्यवाद।

गुरु कृपा से प्रभु मिलन

रामु रामु करता सभु जगु फिरै रामु न पाइया जाए।
अगमु अगोचरु अति वडा अतुलु न तुलिआ जाइ।
कीमति किनै न पाईआ कितै न लइआ जाइ।
गुरु कै सबदि भेदिआ इन बिधि वसिआ मनि आई।
नानक आपि अमेउ है गुर किरपा ते रहिआ समाइ।
आपे मिलिआ मिलि रहिआ आपे मिलिआ आइ।

सारा विश्व 'राम-राम' कहता फिरता है, लेकिन इस प्रकार राम मिल नहीं पाता। प्रभु अपहुंच है, इन्द्रियों की पकड़ से परे है। अत्यंत महान है, अद्वितीय है और मूल्यांकन से परे है। किसी ने उसका मूल्याकंन नहीं किया और किसी जगह से उसे खरीदा भी नहीं जाता। लेकिन यदि गुरु के शब्द में मन बींधा जाए, तो इस प्रकार प्रभु मन में अवस्थित हो जाता है। हे नानक! प्रभु आप तो मूल्यांकन से पर हैं, लेकिन सद्‌गुरु की कृपा से यह विश्वास हो जाता है कि वह सर्वव्यापक है, प्रभु आप ही सर्वत्र मिला हुआ है और आप ही जीव के हृदय में आकर प्रकट होता है।

गुरु रामदास जी की अमृत वाणी में कल हमने सुना था कि-
'राम-राम बोल-बोल खोजते बड़भागी।
हरि का पंथ कोउ बतावे ताके पाय लागी।।'

कहते हैं सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो सद्गुरु को खोजते हैं, जो हरि का पंथ बताए। आज हम सुनते हैं गुरु अमरदास जी की वाणी। वे उसी बात को दूसरे लहजे में, अलग शैली में प्रस्तुत कर रहे हैं। कहते हैं-

'राम-राम करता सब जग फिरे, राम न पाया जाए।'

प्रभु की खोज में लाखों-लाखों लोग अपनी जिंदगी गवां देते हैं। 'राम-राम करता सब जग फिरे।' किन्तु राम नहीं मिलते। सीधे परमात्मा की खोज में जो लगे हैं वे बड़ी भूल कर रहे हैं। खोजना चाहिए गुरु को, प्रभु स्वयं मिल जाएगा। और जिसने सीधा प्रभु को खोजा; उसे ना प्रभु मिलेगा, ना गुरु मिल पाएगा। दोनों से चूक जाएगा। और धर्म के नाम पर जो बड़े जाल फैले हुए हैं, वह उस भीषण जंजाल में उलझ के रह जाएगा। इसलिए ठीक कहते हैं अमर दास जी- 'राम-राम करता सब जग फिरे, राम न पाया जाए।' क्यों नहीं पा सकते प्रभु को? क्योंकि वह अगम है, अगोचर है, विराट है और अतुलनीय है। 'अगम अगोचर अति बड़ा, अतुल न तुलिया जाए।' उसकी किसी से तुलना नहीं हो सकती।

परमात्मा यानी सब कुछ, द होल एक्जिस्टेंस- संपूर्ण अस्तित्व। उसकी तुलना किससे करोगे? तुलना के लिए कम से कम दो तो होने चाहिए इसलिए हमारी भाषा के सभी शब्द बड़े ओछे पड़ जाते हैं। उस आत्यंतिक वर्णन का अनुभव भाषा में संभव नहीं। क्योंकि हमारी भाषा बनी है तुलनात्मक तरीके से। भाषा बनी है अनेक को प्रगट करने के लिए, उस एक प्रभु की अभिव्यक्ति के लिए नहीं। भाषा बनी है द्वंदात्मक चीजों को उजागर करने के लिए। अद्वैत की अभिव्यक्ति के लिए नहीं। हमारी सारी भाषा और उसके सारे शब्द सापेक्ष हैं। किसी की तुलना में हैं, रिलेटिव अर्थात् सापेक्ष हैं।

जब हम किसी चीज को कहते हैं छोटी तो वह किसी चीज की तुलना में छोटी है। जब किसी चीज को कहते हैं बड़ी तो किसी अन्य चीज की तुलना में वह बड़ी है। ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं, क्षुद्र-विराट, मोटा-पतला, स्वस्थ-बीमार, सुन्दर-कुरूप आदि, हमारी भाषा में जितने भी शब्द हैं वे तुलनात्मक हैं। और अतुलनीय की तुलना कैसे होगी? जो बस एक ही है, उसकी किस से तुलना होगी? इसलिए हमारे भाषा के कोई भी शब्द वहां पर लागू नहीं होते, फिर भी संतों की करुणा है कि उन्होंने अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है। यह जानते हुए कि उस अगम-अगोचर को प्रगट नहीं कर सकेंगे।

अगम अर्थात् वहां तक पहुंचा नहीं जा सकता। अगोचर अर्थात् अदृश्य, उसे देखा नहीं जा सकता। जहां तक हमारे कदमों का सवाल है, ये कदम उस तक नहीं पहुंच सकते। और जहां तक इन चर्म चक्षुओं का सवाल है, ये आंखे उसे नहीं देख

सकतीं, इनके लिए वह अगोचर है। जहां तक इन कानों का सवाल है, ये कान उसकी ध्वनि को न सुन सकेंगे। वह अश्रव्य है, इसका मतलब यह नहीं कि वहां पहुंचा नहीं जाता, देखा नहीं जाता, सुना नहीं जाता। किंतु वह शरीर की किन्हीं ज्ञानेंद्रियों से अथवा कर्मेन्द्रियों के माध्यम से नहीं जाना जाता है, बल्कि सब कर्मेन्द्रिय जब निष्क्रिय हो जाएं और सब ज्ञानेंद्रियां बंद हों, बाहर की तरफ उन्मुख ना हों, शरीर कुछ भी न करता हो, आंखे देखती न हों, कान सुनते ना हों, और जब पैर कहीं जाने की शीघ्रता में न हों। मन में कहीं पहुंचने का विचार भी न हों... क्योंकि इन ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को चलाने वाला तो मन है... तब अचानक वहां पहुंचना घटता है- अवाक, मौन में!

तुम आंख बंद कर के बैठ गए और पालथी मार कर, आसन लगा कर बैठ गए ऊपर से स्थिर और भीतर मन भाग-दौड़ कर रहा है तो कुछ बात न बनेगी। भीतर तुम चल ही रहे हो। और चल-चल के वहां नहीं पहुंचा जा सकता क्योंकि वह पहुंच के परे हैं। अगम्य, अगोचर, अति बड़ा। कैसे उस अनुभूति को कहें? विराट को शब्दों में कहेंगे तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। भूल-चूक हो जाएगी लेकिन फिर भी मजबूरी है कि उन्हीं शब्दों का इस्तेमाल करना होगा जो भाषा में है। नए शब्द कहां से लाएं? कह रहे हैं अति बड़ा, अत्यंत विराट। लेकिन हमारा मन जो भी अनुमान करेगा विराट का, उसकी सीमा थोड़ी बड़ी होगी। हम जिन छोटी-छोटी चीजों को जानते हैं इनसे बहुत बड़ा। बस यहीं भूल-चूक हो जाएगी। उस मनातीत, शब्दातीत, विचारातीत को कहना नामुमकिन है।

कल मैं किसी से मजाक कर रहा था कि खाने-पीने की चीजों में आलू बड़ा, साबुदाना बड़ा, दही बड़ा, साम्भर बड़ा, मैदू बड़ा; इत्यादि नाम आते हैं। मैंने पूछा कि छोटा कौन है? छोटा नाम का कोई आईटम है ही नहीं खाद्य पदार्थों में। तो बड़ा किसकी तुलना में बड़ा है? कोई छोटा व्यंजन भी तो होना चाहिए ना!

अमरदास जी कह रहे हैं अतुल न तुलिया जाए। वह अतुलनीय है, किसी से उसकी तुलना नहीं हो सकती क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। परमात्मा यानी संपूर्ण अस्तित्व। इसलिए ये विरोधाभासी बातें- एक तरफ वे कहते हैं- अगम है, अगोचर है, अत्यंत बड़ा है और तुरंत कहते हैं कि अतुलनीय है, इसकी तुलना हो ही नहीं सकती। अर्थात् जिन शब्दों का इस्तेमाल कर रहे हैं वे कोई भी सटीक नहीं हैं। वे केवल अनिर्वचनीय के बारे में कहने की कोशिश कर रहे हैं- संकेत मात्र दे रहे हैं।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं, परमात्मा अकथनीय है, अवर्णनीय है। लेकिन इतना कहकर भी आखिर वर्णन तो कर ही दिया। कथन कर ही दिया। इतना कहना कि वह अनिर्वचनीय है यह भी तो वचन हो गया। भाषा की मजबूरी है। कंट्राडिक्टरी टर्म्स में, विरोधाभाषी शब्दों में अभिव्यक्त करना होगा परम सत्य को। अन्य कोई उपाय नहीं।

'कीमत किनै न पाईया किते न लेईया जाए।'

ना ही उसकी कोई कीमत हो सकती, न उसे कोई खरीद सकता है। वह कोई वस्तु

नहीं जो हस्तांतरित हो सके। कोई किसी को दे सके, विनिमय कर सके। वस्तुओं की कीमत होती है। सम्पूर्ण अस्तित्व की क्या कीमत होगी? क्योंकि जिन चीजों से हम कीमत आंकेंगे वे भी उस अस्तित्व में शामिल हैं। अगर रुपए पैसे से या हीरे जवाहरातों से हम दाम लगाएं तो वे तो खुद ही उस अस्तित्व का हिस्सा है। उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। यह तो साधारण अर्थ या स्थूल अर्थ है। अब सूक्ष्म भावार्थ भी पकड़ना... बहुत से योगी, तपस्वी, दानी, त्यागी यह समझते हैं कि हमने ऐसा-ऐसा कर दिया, इतना दान दे दिया अब हमें प्रभु मिलना चाहिए। उन्होंने भी कीमत आंक ली।

यह तो खूब मजा हुआ कि एक आदमी धन से समान खरीद रहा था और धन से ही दान देकर इसने प्रभु को पाने की ठानी है। तो गजब कर दिया! तुम परमात्मा को ही खरीदने चले दान के द्वारा। यह तो कीमत हो गयी उसकी। कि इतना-इतना दान कर दो, इतना-इतना त्याग कर दो, इतनी तपस्या कर दो तो परमात्मा मिलेगा ही।

जरा सोचो क्या ऐसा संभव है? इसका तो मतलब हुआ कि परमात्मा भी बंधन में है, वह भी मुक्त नहीं है। नियम के अनुसार हमने उतना दाम चुका दिया अब उसे उपलब्ध होना पड़ेगा, नहीं तो स्पष्ट बता दे कि और कितनी कीमत है? और तपस्या करें और त्याग करें? किंतु कितनी भी कीमत हो, वह सीमा व बंधन बन जाएगी।

परमात्मा इस नियम के अंतर्गत फिट नहीं बैठ सकता। उसकी कोई कीमत नहीं हो सकती इसलिए जो हम सोच रहे हैं कि ऐसे-ऐसे क्रियाकाण्ड कर लिए, इतनी तीर्थ यात्रा कर ली, इतनी बार गंगा स्नान कर ली, मंदिर बनवा दिया, इतने शास्त्र पढ़ लिए, गीता कण्ठस्थ कर ली, अब तो प्रभु मिलेंगे ही। ऐसा मन वही बाजार वाला व्यवसायी चित्त है। यह उसी विनिमय वाली दुकानदारी की भाषा में सोच रहा है। प्रभु की कीमत आंक रहा है। अमरदास जी कह रहे हैं कि इस महा भूल से सावधान!

'कीमत किनै न पाईया किते न लेईया जाए।'

कोई उसे किसी प्रकार से नहीं ले सकता।

भगवान महावीर के जीवन में उल्लेख आता है कि एक दूर देश के सम्राट को यह खबर लगी कि महावीर ने शांति प्राप्त कर ली, वे परमानंद अवस्था को उपलब्ध हो गए हैं। सम्राट आकर बोला कि मैं बड़ा बेचैन हूं, बड़ा अशांत हूं कृपया थोड़ी शांति मुझे भी दे दीजिए। मुझे विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि आपने शांति और आनंद को पाया है। मैं बहुत दुख में हूं, बड़ी चिंता और पीड़ा में हूं। थोड़ी सी शांति मुझे दे दीजिए, जो भी कीमत आप कहेंगे मैं चुकाने को तैयार हूं। महावीर को हंसी आ गयी उसकी बात सुनकर। महावीर को मौन मगर मुस्कुराते हुए देखकर उस सम्राट ने सोचा कि शायद इनको समझ नहीं आया है कि मैं महाराजा हूं। उसने कहा जो कीमत आप कहेंगे उसकी डेढ़ गुनी, दुगनी दूंगा। चलो बोलो, कितनी कीमत है तुम्हारी शांति की?

महावीर को समझ में आया कि बहुत ही नासमझ व्यक्ति आया हुआ है। उन्होंने

मजाक में कहा, देखो, तुम्हें पता ही होगा पहले मैं भी राजा था। मुझे तो जरूरत नहीं है मैं तो अपना राजपाट छोड़कर आ गया हूं, तो मुझे धन वगैरह में उत्सुकता नहीं है कि तुम कितनी कीमत चुकाओगे, डेढ़ गुनी या दुगनी, मैं उसे लेकर क्या करूंगा? मेरे पास भी बहुत था। तुम ऐसा करो, मेरा एक गरीब शिष्य है वो फलां-फलां जंगल में साधना कर रहा है, उसने भी परम शांति को पा लिया है; तुम उसके पास चले जाओ, शायद वो बेचने को तैयार हो जाए। उस सम्राट को भी बात जंची कि महावीर तो खुद ही राजा थे, इनसे क्या मोल-भाव करना? ये अपनी संपत्ति त्याग आए, ये लोभ-लालच में न फसेंगे।

उसने जाकर उस गरीब शिष्य को ढूंढा, खोजते-खोजते जंगल में वह मिल गया। उससे पूछा, क्या आपको परम शांति मिल गयी? आप वही हैं? उसने कहा, हां मैं वही हूं। राजा बोला कि आपके गुरु हैं महावीर, उन्होंने मुझे भेजा है। मुझे थोड़ी सी शांति चाहिए, कुछ थोड़ा सा अंश मुझे दे दीजिए, आपके पास तो बहुत है। मैं बहुत बड़ा राजा हूं और मुझे पता चला आप बहुत दीन-दरिद्र हैं। आपकी स्थिति देखकर ही लग रहा है, आपके पास कुछ भी नहीं है। तो बोलिए आपको क्या-क्या चाहिए? वह सारी सुविधाएं मैं आपको जुटा दूंगा, जो धन राशि कहेंगे वह दे दूंगा। दाम से भी ज्यादा ही दूंगा।

उस मुनि ने सारी बात समझायी कि तुम महावीर की बात का सूक्ष्म अर्थ नहीं समझे। बड़े बुद्धू हो। शांति भीतर की बात है, उसकी कोई कीमत कैसे हो सकती है? मैं चाहूं भी तो तुम्हें नहीं दे सकता। कीमत का सवाल नहीं, दे ही नहीं सकता।

प्रेम हमारे हृदय में होता है तो हम किसी को प्रेम देना चाहते हैं, क्या दे पाते हैं? आनंद का अनुभव हमारी अंतर्आत्मा में होता है। क्या हम उसे दे सकते हैं? हमारे भीतर चैतन्य विराजमान है, हम जानते हैं। लेकिन क्या हम इसे बांट सकते हैं? असंभव। परमात्मा इन सारे गुणों का समन्वित रूप है। सत्-चित्त-आनंद। शांति, प्रीति, मुक्ति। सत्यम् शिवम् सुन्दरम्। एक शब्द में इन सारी दिव्य गुणवत्ताओं को इकट्ठा करो, उसका नाम है परमात्मा। यह तो आंतरिक अनुभूतियां हैं, ध्यान में डूबकर हासिल होंगी। बाहर की किसी चीज से इनकी कीमत नहीं आंकी जा सकती।

'कीमत किनै न पाईया किते न लेईया जाए।
गुरु के शब्द भेदिया इन विधि मन बसिया आए।।'

अब कहते हैं अमरदास जी कि किसी कीमत से तो नहीं पा सकोगे किंतु गुरु के शब्दों का अगर भेद जान लो, उसके इशारे समझ जाओ तो बात बन जाएगी। इन विधि बसिया मन आए। इस विधि से तुम पाओगे कि वह तुम्हारे मन के भीतर ही, तुम्हारे मन मंदिर में बसा है। जिसे तुम खोजते थे वह भीतर ही है। गुरु के शब्दों का भेद बूझो, उनका रहस्य जानो। दो अर्थ है गुरु के, दोनों अर्थ सही हैं।

प्रथम अर्थ- गुरु के कंठ से उच्चारित, उसके मुखारविंद से निकली वाणी, वे शब्द हैं, वे इशारे हैं और भीतर ध्यान में डूबने के लिए संकेत हैं। और दूसरा अर्थ- गुरु का

शबद अर्थात् गुरु के भीतर जो ओंकार का नाद गूंज रहा है, वह एक ओंकार सत्नाम, तुम उसमें डूबो। उस भेद को जानो। 'गुरु के शब्दे भेदिया, इन विधि बसिया मन आए।' ओंकार के भेद को जानकर ही तुम पाओगे कि प्रभु मन मंदिर में विराजमान है। 'नानक आप अमेउ है गुरु कृपयाते रहिया समाय।' अपने आप में तो वह अमाप है। उसकी कोई नाप-तौल नहीं हो सकती। कोई सीमा निर्धारण नहीं हो सकती। किंतु गुरु की कृपा से वह हमें अपने ही भीतर मिल जाता है।

'गुरु कृपयाते रहिया समाय।' हमारे भीतर ही वह समाया हुआ है और हम उसे बाहर खोजने चले थे। दिशा ही गलत थी, इसलिए बाहर वह अगम प्रतीत होता था, अगोचर प्रतीत होता था, अश्रव्य एवं अदृश्य प्रतीत होता था। वास्तव में वह तो भीतर ही विराजमान था, भीतर ध्यान में डुबकी लगने से अनहद नाद सुनाई पड़ने लगता है- परमात्मा का परम संगीत। दिखाई पड़ने लगता है दिव्य आलोक, उसका प्रकाश और पहुंच जाते हैं हम वहां, जहां स्थूल पैर नहीं पहुंच सकते। भीतर पहुंचने के लिए स्थिर होना पड़ता है। चलना नहीं पड़ता। और उसे देखने के लिए आंखों की बहिर्मुखता बंद करनी होती है। उसे सुनने के लिए बाहर की ध्वनियों के प्रति उपेक्षा भाव अपनाना होता है। इसलिए कहा- अगम है, अगोचर है, अदृश्य है, अश्रव्य है लेकिन गुरु कृपा से यह अनुभव संभव हो पाता है। गुरु ने इशारा किया कि अपने भीतर डूबो। हम परमात्मा को खोजते थे बाहर जो कि एक असंभव कार्य था।

'आपे मिलिया मिल रहिया, आपे मिलिया आयी।'

वह परमात्मा स्वयं ही आ मिलता है। तुम खुद में डूबो और उस खुदा को पा जाओगे। 'आपे मिलिया मिल रहिया।' वो मिला ही हुआ है। उसको पाना ऐसा नहीं है कि कोई बाहरी वस्तु मिल गई हो। इस भाव को ठीक से समझना।

कुछ चीजें हमने जिंदगी में मेहनत से प्राप्त की हैं। पच्चीस साल पढ़ाई-लिखाई की तब जाकर ग्रेजुएशन, पोस्ट ग्रेजुएशन की डिग्री मिली। नौकरी करते हैं, दुकान चलाते हैं तब आजीविका हेतु धन कमा पाते हैं। मकान बनाया तो मकान बन पाया, अपने आप नहीं बन गया। कार खरीदने के लिए पैसे इकट्ठे किए, कार खरीदी तब कार घर में आयी। अपने आप नहीं आ गयी। चुनाव लड़ेंगे तब जाकर एम.एल.ए या मंत्री बन पाएंगे। अपने आप घर बैठे-ठाले नहीं बन जाएंगे।

अतः बाहर की दुनिया में जो भी पाया जाता है वह अचीवमेंट है, मेहनत से मिला है। अपने प्रयास से, मूल्य चुकाकर वह उपलब्ध किया गया है। हर चीज की कीमत चुकानी पड़ी है। परमात्मा तो अमूल्य है। उसे कैसे पाएंगे? निष्क्रिय होकर, शांत होकर, स्थिर होकर, 'कुछ ना' कर के। कर्म के द्वारा दुनिया में चीजों को पाया जाता है और निष्क्रिय जागरूकता के द्वारा प्रभु को पाया जाता है। कुछ न करो, स्थिर हो जाओ अपने आप में। 'आपे मिलिया मिल रहिया।' और तुम पाओगे कि वह मिला ही हुआ

है। हमने उस तरफ नजर न की थी इसलिए हम चूकते रहे। इसको अचिवमेंट नहीं कह सकते। इसलिए परमात्मा को पा कर कोई अहंकारी घोषणा नहीं कर सकता कि देखो मैंने कितना महान कार्य कर लिया।

हां, एवरेस्ट पर पहुंचने वाला हिलेरी कह सकता है कि दुनिया में आज तक जो काम कोई नहीं कर पाया, वह मैंने कर लिया, मैं वहां पहुंच गया। चांद पर उतरने वाला आर्मस्ट्रांग कह सकता है कि मेरे कदम उस जमीन पर पड़े जहां आज तक कोई मनुष्य न चला था। कोई विश्व का सबसे बड़ा अमीर हो गया, वो कह सकता है कि मैंने अनोखा काम किया है जो अन्य कोई न कर सका। परमात्मा को पाने वाला ऐसी अहंकार पूर्ण घोषणा नहीं कर सकता। क्योंकि उसे पता है कि जो मिला है उसे वह पहले से ही मिला हुआ था। कुछ नया नहीं खोज लिया।

अध्यात्म आविष्कार है, अन्वेषण नहीं है।

'मिल रहिया, आपे मिलिया आयी।'

वह स्वयं ही मिला हुआ है। हमने कुछ पा नहीं लिया, जो पाया हुआ था उसके प्रति सजग हो गये बस। विज्ञान में खोज के लिए दो शब्दों का इस्तेमाल होता है, इन्वेंशन और डिस्कव्हरी। इन्वेंशन का मतलब है कुछ नया अन्वेषण। जिन राईट ब्रदर्स ने हवाई जहाज बनाई उन्होंने एक नया अन्वेषण किया, उनके पहले हवाई जहाज नहीं थी। किसी ने रेडियो बनाया, टेलीविजन बनाया, टेलीफोन बनाया। ये उपकरण पहले नहीं थे। ये नए इन्वेंशन हैं। और न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का नियम खोजा, वह इन्वेंशन नहीं है, वह डिस्कव्हरी है।

गुरुत्वाकर्षण का नियम न्यूटन से पहले मौजूद था। न्यूटन के पूर्वज जब नहीं थे तब भी था। यह पृथ्वी नहीं थी तब भी था। वह तो शाश्वत नियम है प्रकृति का। न्यूटन ने नहीं बनाया, न्यूटन ने केवल अनावरण किया जैसे किसी मूर्ति पर से हमने एक पर्दा हटा दिया हो। जो चीज पता नहीं थी वह पता हो गयी। ठीक ऐसे ही परमात्मा का अनावरण होता है। हमारे विचारों के धुंए की पर्त में परमात्मा का स्वरूप, भीतर ही छुपा हुआ था। गुरु के संकेत से, गुरु की बताई विधि से, जब इन विचारों के पर्दे को सजगता द्वारा हटाओगे तो तुम पाओगे कि भीतर जो मिला, वह सदा सदा से पाया ही हुआ है।

'आपे मिलिया मिल रहिया, आपे मिलिया आयी।'

यह खोज बड़ी अद्भुत है। हम उसी को खोज रहे हैं जो खोजने वाला है। यह खोज बड़ी निराली है जो तलाश कर रहा है उसी की तलाश है। और इसीलिए यह बड़ा मुश्किल काम भी है और बड़ा सरल भी है। समझ लो तो क्षण भर में बात बन जाए। बात बनी ही हुई है। और ना समझो तो जन्मों-जन्मों तक भटकते रहो, न मिलेगा।

गुरु कृपा से ही यह हो पाता है- प्रभु मिलन! और प्रभु कृपा से मिल पाते हैं जीवन में सदगुरु। हम सौभाग्यशाली है कि ओशो जैसे सदगुरु से मिले... अहो! अहो!!
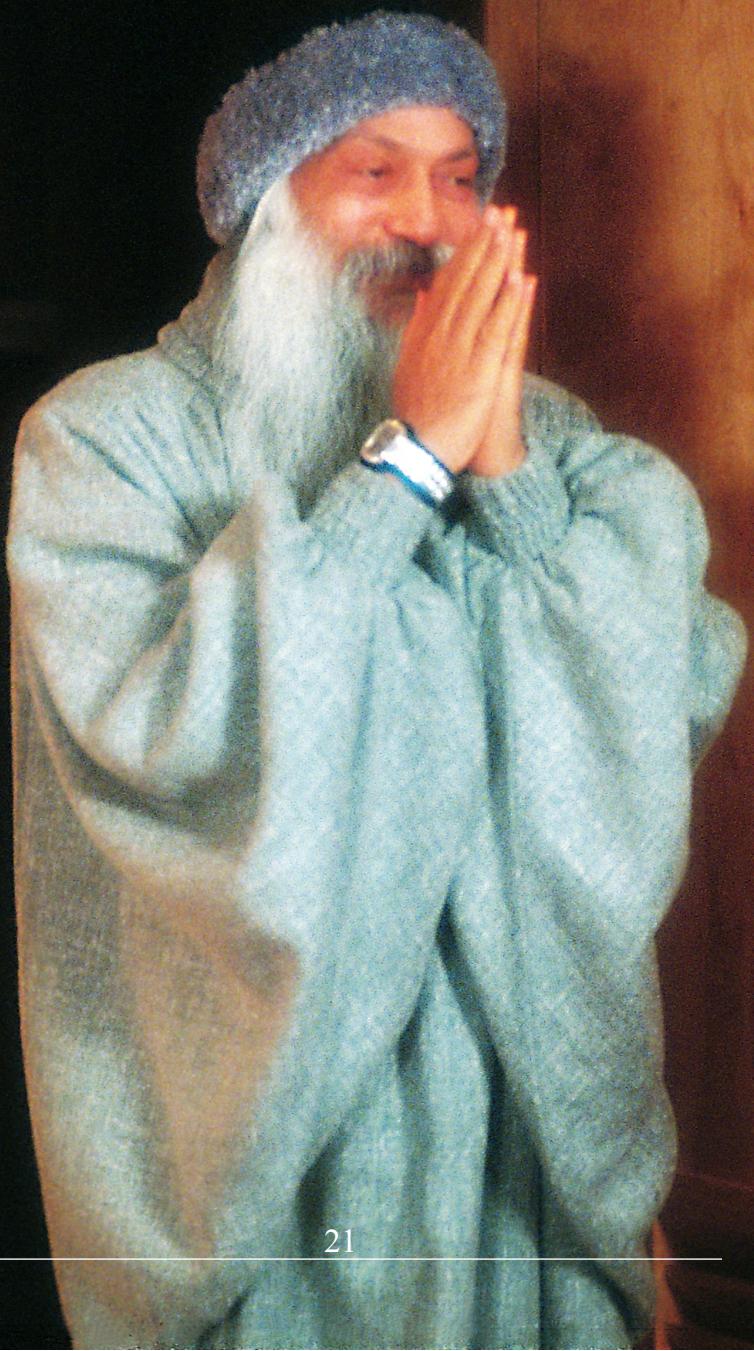
जीव-जंतु सब शरण तुम्हारी

मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा।
एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा ।।1।।
मनु बेधिआ दइआल सेती मेरी माई। कउणु जाणै पीर पराई।
हम नाही चिंत पराई ।।1।।रहाउ।।
अगम अगोचर अलख अपारा चिंता करहु हमारी।
जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा घटि घटि जोति तुमारी ।।2।।
सिख मति सभ बुधि तुमारी मंदिर छावा तेरे।
तुझ बिनु अवरु न जाणा मेरे साहिबा गुण गावा नित तेरे ।।3।।
जीअ जंत सभि सरणि तुम्ारी सरब चिंत तुधु पासे।
जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदासे ।।4।।

मेरा मन ही प्रभु का मंदिर है और मेरा शरीर कलंदर का वेश धारण किए हुए है, मैं हृदय-तीर्थ में ही स्नान करता हूँ। केवल एक ओंकार ही प्राणों में निवास करता है, इसलिए मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा अर्थात् मुक्त हो जाऊँगा ।।1।। हे माँ! मेरा मन उस दयालु परमेश्वर से जुड़ (बिंध) चुका है। उसके अतिरिक्त पर-पीड़ा को कौन समझ सकता है। इसीलिए हम किसी अन्य के संबंध में सोचते ही नहीं ।।1।।रहाउ।। हे अगम, अगोचर, अलख, अपार परमेश्वर! तुम्हीं हमारी चिन्ता करने वाले हो। जल में, थल में, पृथ्वी-आकाश में सर्वत्र तुम्हीं व्याप्त हो और घट-घट में तुम्हारा ही प्रकाश है ।।2।।

समस्त जीवों को समझ-बूझ, बुद्धि तुम्हारी ही प्रदान की हुई है, सब जीवों के शरीर में तुम्हारा ही निवास है। हे मालिक! तुम्हारे अतिरिक्त मैं अन्य किसी को नहीं जानता, मैं तो तुम्हारे ही गुण-गान करता हूँ ।।3।। सब जीव-जन्तु तुम्हारी ही शरण में हैं और तुम्हें ही सबकी चिन्ता है। (गुरु) नानक की यही प्रार्थना है कि जो तुम्हें अच्छा लगे, उसमें ही मेरी रुचि रहे अर्थात् तुम्हारी रज़ा के अनुकूल चलता रहूँ ।।4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

प्रेम एक अमृत है किन्तु उसमें वासना और विकारों का अत्याधिक विष घुल गया है, इसीलिए आज हमें प्रेम के नाम से ही डर लगने लगता है। जहां अपेक्षा है वहां खींच-तान शुरू हो जाएगी। अगर पता चल जाए कि पिता ने वसीयत में लिख दिया है कि मेरे मरने के बाद फलां संस्था को सब दान कर देना तो बेटा नाराज हो जाएगा। शायद इसके पहले उसने कभी सोचा न होगा कि उसके मन में क्या अपेक्षाएं हैं, लेकिन अपेक्षाएं हैं। इसलिए हमारा प्रेम बहुत ज्यादा जहरीला हो जाता है। जहां कामना है वहां ईर्ष्या पैदा हो जाएगी कि कोई और न कब्जा कर ले, मालकियत की भावना आ जाएगी। कम से कम दोस्तों के बीच में इस प्रकार का पोज़ैशन, मालकियत और घनी ईर्ष्या नहीं होती है। होगी, पर छुटपुट होगी और बहुत कम प्रतिशत में होगी। इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेमभाव से भी ऊपर मैत्रीभाव है।

मैत्रीभाव में हम ज्यादा विस्तीर्ण हो पाते हैं, हम ज्यादा खुल पाते हैं। कई बार जब मैं ट्रेन में यात्राएं करता हूं तो अक्सर देखने को मिलता है कि चार-छः मित्र जो मौजूद हैं वो आपस में एक-दूसरे से काफी खुल जाते हैं जबकि सब एक-दूसरे से अपरिचित हैं। चार घंटे बाद किसी की स्टेशन आएगी तो वह उतर जाएगा, हो सकता है अब जिंदगी में कभी मुलाकात न हो। शायद यह पहली और आखिरी मुलाकात है लेकिन लोग उसमें ज्यादा रिलैक्सड हैं, ज्यादा दोस्ताना हैं, ज्यादा सद्व्यवहार कर रहे हैं क्योंकि हमें दूसरे से कोई अपेक्षा नहीं है।

किंतु जहां हमारा प्रेम संबंध है, नाते-रिश्तेदार हैं वहां भारी अपेक्षाएं हैं। चाहे वे प्रत्यक्ष हों या अप्रत्यक्ष हों। मां-बाप सोचते हैं कि वह अपने बच्चों को बहुत प्रेम करते हैं। वे सोचते हैं कि अनकंडीशंड लव, बेशर्त प्रेम, हम अपने बच्चों को दे रहे हैं लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। वह आशा लगाए बैठे हैं कि शायद कभी यह बच्चे उनको रिस्पेक्ट देंगे, उनकी सेवा करेंगे; जब वह बूढ़े हो जाएंगे तब वे सहारा देंगे। अगर बच्चों ने ऐसा नहीं किया तब ये माता-पिता बहुत नाराज होते हैं। अधिकांश वृद्धजन बच्चों से नाराज रहते हैं। बच्चे अपना जीवन अपने ढंग से जिएंगे, माता-पिता सोच रहे थे कि बच्चे उनकी कामनाओं की पूर्ति करें। बच्चों की जिंदगी उनकी हैं, वह अपने विवेक से चलेंगे, कोई जरूरी नहीं कि वह आपकी उस लकीर पर ही चलें और आपकी अपेक्षाएं पूरी करें। उनकी चेतना स्वतंत्र है अपनी कामनाएं पूरी करने के लिए।

उनकी जिंदगी में कई दूसरी आशाएं हैं, दूसरे सपने हैं, वे उनको पूरा करेंगे, आपके सपने पूरा करने वे नहीं आए थे। लेकिन माता-पिता लंबे समय तक इस वहम में रहते हैं कि हम तो बच्चों को प्रेम कर रहे हैं, हमको क्या चाहिए? लेकिन अचेतन में कहीं यह धारणा बैठी है कि मेरे सपने ये पूरे करेंगे, जो मैं नहीं कर पाया यह करके

दिखाएंगे। उनके अचेतन मन में छिपी हुई धारणा है कि इन बच्चों को कैसा होना चाहिए? क्या करना चाहिए; क्या नहीं करना चाहिए? इन धाारणा से बाद में भारी तकलीफ होगी, वह सुनिश्चित ही है।

प्रेम के साथ जुड़ी ये जटिलताएं हैं। प्रेम जो कि शांतिदायी-सुखदायी है वह बहुत प्रकार की अशांतियों से घिर जाता है। कम से कम मित्रता में यह जहर नहीं हैं या बहुत कम मात्रा में हैं। ज्यादा साफ-सुथरा मामला है, काफी स्पष्टता है। दुराव, छिपाव, कपट नहीं है, ईर्ष्या नहीं है, पकड़ और मालकियत नहीं है, कब्जा जताने का भाव नहीं है, मोह नहीं है कि अब तुम मेरे दोस्त हो तो किसी और के दोस्त नहीं हो सकते।

मैंने सुना है एक युवक अपने दोस्त को बता रहा था अपनी गर्लफ्रेंड के बारे में कि अगर वह मेरी नहीं हुई तो मैं दुनिया में उसको किसी की न होने दूंगा। देखते हैं, प्रेम कैसे एकदम द्वेष में बदल जाता है। उसके दोस्त ने कहा अच्छा, और अगर वह तेरी हो गई तो क्या तू सबकी हो जाने देगा? उसे सार्वजनिक संपत्ति बनने देगा? देखते हैं, प्रेम कैसा कठोर रूप ले लेता है। हम जिनके प्रति कोमल थे, प्रेमल थे उनके आस-पास हम ऐसी कठोर दीवार बना देना चाहते हैं, बिल्कुल जेल में बंद कर देना चाहते हैं।

गुरुनानक देव जी कहते हैं कि मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा। मेरी काया जैसे कलंदर का वेश है, मेरा मन ही मंदिर है। और मेरे हृदय में ही तीर्थ स्थान है, मैं उसी में स्नान करता हूं। अगर हमारा यह प्रेमभाव साफ-सुथरा हो जाए, स्नान कर ले तो यह मैत्रीभाव में बदल जाए, इसके जहर धुल जाएं।

एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा। कहते हैं वह एक ओंकार का शब्द ही मेरे प्राणों में गूंजता है वही मैं हूं। मनु बेधिआ दइआल सेती मेरी माई। कउणु जाणै पीर पराई। हम नाहि चिंत पराई। यह शब्द भी बड़ा प्यारा है- 'बेधिआ'। जैसे कोई स्पंज पानी को सोख ले तो हम कहेंगे पानी बिंध गया है इसमें अर्थात् पानी भर गया है। कहते हैं मनु बेधिआ दइआल सेती मेरी माई।

कहते हैं उस परमात्मा ने मेरे मन को बेध लिया है, सब तरफ से वही प्रवेश कर गया है, उसने मेरे मन को भर लिया है। हम नाहीं चिंत पराई, अब मुझे जगत में किसी की चिंता नहीं है। अगम अगोचर अलख अपारा चिंता करहु हमारी, वह अपरंपार प्रभु हम सबकी चिंता करता है, हम सबका ख्याल रखता है।

जलि थलि महिअलि भरिपुरि लीणा घटि घटि जोति तुमारी। वह सर्वव्यापी जल में, थल में, आकाश में है, घट-घट में उसकी ज्योति है वह सर्वव्यापी सबका ख्याल रख रहा है इसलिए अब हमें किसी की चिंता नहीं, हमारी चिंता करने वाला वही है। सिख मति सभ बुधि तुमारी मंदिर छावा तेरे। कहते हैं हे प्रभु! यह जो मति है, बुद्धि है

यह सब भी तुम्हारे ही द्वारा प्रदत्त है, तुम्हारा ही दान है।

तुझ बिनु अवरू न जाणा मेरे साहिबा गुण गांवा नित तेरे। हे मेरे मालिक, तेरे अतिरिक्त अब मुझे कुछ नजर ही नहीं आता इसलिए तेरे ही गुणगान करता हूं। तेरे अलावा और कोई है ही नहीं। तुझ बिण अवरू न जाणा, तेरे बिना और किसी को नहीं जानता हूं। यह बात सभी संतों की वाणी में आती है। मीरा कहती है, मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। यहां वैसा अर्थ नहीं लेना जैसा सामान्य भाषा में होता है कि दूसरा कोई है ही नहीं। दूसरा न कोई, इसका भावार्थ है कि बस एक वह प्रभु ही है, दूसरा कोई है ही नहीं। यह अद्वैत की घोषणा है। ऐसा नहीं है कि मीरा कह रही है कि कृष्ण से मैं प्रेम करती हूं और अन्य किसी से नहीं। अन्य जो देवी देवता हैं उनसे मेरी दुश्मनी है, मीरा का ऐसा भाव नहीं है। अनन्य प्रभु को जान लिया। अन्य है ही नहीं!

दूसरा का अर्थ, दूसरा कोई है ही नहीं, द्वैत है ही नहीं, बस एक ही है। वही बात यहां पर है, तुझ बिनु अवरू न जाणा मेरे साहिबा। कहते हैं, हे मालिक तेरे बिना अन्य का ज्ञान ही नहीं होता, और किसी को मैं नहीं जान पाया, बस एक तू ही है। जीअ जंत सभि सरणि तुमारी सरब चिंत तुधु पासे, जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदासे। यह अंतिम पंक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है। कहते हैं नानक, मेरी प्रार्थना बस इतनी ही है कि उस परम अस्तित्व को जो भाए, बस वैसा ही हो। जो तुद भावे सोइ चंगा, जो तुझे भाता है वही अच्छा, वही चंगा है, श्रेष्ठ है। इक नानक की अरदासे, अद्भुत प्रार्थना है यह जिसमें कोई मांग नहीं है, कोई डिमांड नहीं। हम जिसे प्रार्थना कहते हैं वह बिल्कुल भिखमंगापन है। कहीं मंदिर, मस्जिद, मजार में जाकर देखना।

एक बार मैं किसी मजार पर गया, ऐसा विचित्र दृश्य देखा, जैसे पूरी दुनिया के भिखमंगे इकट्ठे हो गए हैं। गजब का नजारा वहां नजर आया। जैसे बिल्कुल परमात्मा को लूटने ही आ गए हैं। भिखमंगे ही नहीं, चोर-डकैत भी नजर आते हैं, जबरन लेकर ही रहेंगे। कबीर ने बहुत मजाक उड़ाई है तपस्वियों की और भक्तों की। कहते हैं कि तपस्वी बिल्कुल ऐसे हैं जैसे जिद करके खड़े हों कि लूट के ही ले जाएंगे और भक्त ऐसे भिखमंगे हैं, कि मांगे जा रहे हैं। भीख मांगना भी एक प्रकार का आक्रमण है। आपने महसूस किया होगा जब कोई भिखमंगा आपके पीछे पड़ जाए तो आपको कैसा लगता है? वह एक प्रकार से छीनने की कोशिश में है। उसके पास एक छोटा सा कटोरा ही है लेकिन वह कटोरा किसी चाकू-छूरे से कम नहीं है और वह चार आदमियों के बीच में यह कटोरा आगे करेगा जहां आपकी इज्जत दांव पर लग जाए। वह दूसरे प्रकार से आपकी जेब काटेगा। करीब-करीब आक्रमण ही है, देना ही पड़ेगा।

मैंने सुना है अमेरिका में एक बहुत बड़ा अरबपति हुआ। एक भिखारी उसके यहां रोज आता था नियमित रूप से। तो उसने तय ही कर दिया था कि इसको दस

डालर रोज देना है। उसको अंदर जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी, बाहर दरबान ही उसको दस डालर दे देता था। फिर एक बार दरबान ने उसको पांच डालर दिए। भिखारी तो बहुत नाराज हुआ कि इतने सालों से हमारे दस डालर निश्चित हैं, क्या बात है?

उसने कहा कि मालिक ने सब जगह खर्चों में कमी करने को कहा है, उनका बिजनेस भी डाउन जा रहा है और फिर उनकी बेटी की शादी है उसमें बहुत सारे पैसे खर्च होंगे तो सभी जगह उन्होंने कटौती करने को कहा है इसलिए पचास परसेंट सब जगह काट रहा हूं।

वह भिखारी तो भड़क गया, उसने कहा- हद हो गई, मेरे पैसे के बलबूते अपनी बेटी की शादी करेगा, गरीब आदमी का पेट काटकर, यह तो सरासर अन्याय है।

कबीर ने कहा है सहज मिले, अपने आप देने वाले का मूड हो तो दे दे, हम मांगे भी न, हमारी अपेक्षा भी न हो कि कुछ मिले वही लेने योग्य है अन्यथा लेने योग्य भी नहीं है। कबीर ने तीन उपमाएं दी हैं- एक कहा है खून, दूसरा कहा है दूध और तीसरा कहा है पानी। हठकर्मी, हठयोगी, उपद्रवी किस्म के लोग, आतंकवादी किस्म के लोग हठयोगी होते हैं। कोई शीर्षासन लगा के खड़ा है, कोई लेटा हुआ है, कोई उपवास कर रहा है, कोई धूप में खड़ा है कि जब तक हमारी इच्छा पूरी नहीं हो जाएगी हम छोड़ेंगे नहीं।

चंदूलाल की बीबी कह रही थी कि जानते हो, मैंने सोलह सोमवार उपवास किया था तब तुम्हारे जैसा पति मिला। चंदूलाल बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि अगर तुम उपवास न करती तब क्या होता? बीबी ने कहा कि तब तुमसे भी गया बीता पति मिलता।

उपवास किया कुछ मांगने के लिए, कुछ पाने के लिए, ऐसे ही थोड़ी भूखे बैठे हैं। ये हठी किस्म के लोग हैं ये लेकर ही रहेंगे। आपने देखा नहीं जैसे बच्चे कहते हैं कि अगर खिलौना नहीं मिला तो खाना नहीं खाएंगे, अब हो गया उपवास शुरू कि जब तक खिलौना नहीं लाएंगे, तब तक खाना नहीं खाएंगे। झक मार के लाना पड़ेगा, दुष्ट उग्रवादी बच्चा है वह, बचपन से ही आतंक मचा रहा है।

बड़ा होकर यह बहुत उपद्रव करेगा। या तो साधु-सन्यासी हो जाएगा कोई हठयोगी या फिर सत्याग्रही हो जाएगा, कुछ न कुछ करेगा यह। इसको भूखे रहने का अभ्यास हो गया है। जिन लोगों को यह कला आने लगती है वे बहुत तानाशाह हो जाते हैं। महिलाएं तो इस कला में खूब एक्सपर्ट होती हैं, पति से नाराज हैं तो खाना नहीं खाएंगी, उसको झुका के रहेंगी। वह कहेगा कि सॉरी, ठीक है, गलती हो गई।

यह हठधर्मिता है। कबीर ने कहा है, योगी जो हैं वह जिद्दी हैं, वह खून चूसने जैसा व्यवहार करते हैं। कबीर उसे रक्तसम कहते हैं, जो रक्त के तुल्य है। दूसरा कहा है भक्त, जो गिड़गिड़ा रहे हैं, आंसू बहा रहे हैं, रो रहे हैं, इनको भी मिलेगा लेकिन यह पानी के समान है। सर्वश्रेष्ठ कहा है सहज को। जो स्वतः अपने आप हो रहा है अस्तित्व की तरफ से, जो उसके साथ एक हो गया है, अलग से जिसकी कोई मांग नहीं है, न ही खींचा-तानी है। वह दूध समान है, वह अमृत तुल्य है। तो कबीर कह रहे हैं कि परमात्मा सबको देता है मगर तीन प्रकार के लेने वाले हैं। निश्चित ही कबीर ने अपनी राय निष्पक्ष रूप से दी है कि वह सहज के पक्ष में हैं।

सहज मिले सो दूध सम, मांगे मिले सो पानी।

कहै कबीर वह रक्तसम, जा में ऐंचा तानी।।

मांगो ही मत। सहज हो रहो।

नानक कह रहे हैं कि मेरी यही प्रार्थना है कि तुधु भावै सोई चंगा। यह प्रार्थना मांग से भरी हुई नहीं है, कहने की भी क्या जरूरत है, परमात्मा जो तू कर रहा है वह अच्छा ही है। किसी ने नानक से पूछा होगा कि आपकी प्रार्थना क्या है? पूछने वाले ने सोचा होगा कि ये तीर्थ करने नहीं जाते, मंदिर भी नहीं जाते, प्रार्थना भी नहीं करते तो आखिर करते क्या हैं? तो नानक समझा रहे हैं कि मन-मंदिर, मेरा मन ही मंदिर है और मेरा हृदय ही तीर्थस्थान है। और मेरे अंदर वह परमात्मा रूपी शब्द बसा हुआ है। और मेरी प्रार्थना यही है कि जो तू दे रहा है वही अच्छा है।

न मंदिर जाने की जरूरत, न तीर्थ स्थान जाने की जरूरत, न प्रार्थना करने की जरूरत है। जो लोग तथाकथित प्रार्थना कर रहे हैं वे सब व्यर्थ बकवास हैं। मेरी दृष्टि में ऐसे लोग बिल्कुल नास्तिक हैं, वे परमात्मा से राजी नहीं हैं। वे कह रहे हैं कि मैं अपनी लिस्ट दे रहा हूं इसको पूरा करो, तुम जिस ढंग से दुनिया चला रहे हो वह सही नहीं है, ऐसा मैं नहीं होने दूंगा। सच्चा आस्तिक तो शायद कभी मंदिर जाएगा ही नहीं, क्यों जाएगा? यह पूरा जगत ही उसका मंदिर है, और कौन सा अन्य मंदिर?

सदगुरु ओशो कहते हैं- 'जीवन ही है प्रभु।' तुम इसके प्रति सम्मानभाव से, प्रेमभाव से भर जाओ, तो बस हो गए तुम धार्मिक। शास्त्र पढ़ने से कोई धार्मिक हो जाएगा क्या? पुनः कबीर का प्यारा दोहा स्मरण आ रहा है-

पोथी पढ़-पढ़ जगमुआ पंडित भया न कोय

ढाई आखर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।।

अभी कई लोग जो शास्त्रों में उलझे हैं वह वही लोग हैं जिनके पास प्रेम के ढाई आखर नहीं है, वह शास्त्र किसी काम न आएंगे। जीवन में संतोष और तृप्ति

प्रेमभाव से, मैत्रीभाव से होती है। जब हम जगत के साथ एक अटूट संबंध महसूस करते हैं, जब हम जगत के साथ एकात्म हो जाते हैं, तब इस एकात्म में प्रार्थना करने वाला भी नहीं बचता। मांगने का कोई सवाल ही नहीं शेष रहता। मांगा उससे जाता है जो दूसरा हो। क्या आपकी अंगुली ने कभी आपके मस्तिष्क से कुछ मांगा है? आपकी आंखों ने पैर के पंजों से कुछ मांगा है? मांगेंगे क्या? एक ही है पूरा शरीर। शरीर के ही भिन्न-भिन्न हिस्से हैं, सब जुड़े ही हुए हैं, पूरा खेल अखंडता में चल रहा है।

नाक श्वास ले रही है तो दूसरे अंगों को कुछ मांगना नहीं पड़ता है कि थोड़ी हवा हमें भी दे दो। हवा तो पूरे शरीर को जा ही रही है। सब इंटर-कनेक्टेड है, सब संयुक्त है। क्या ऐसा होता है कि मुंह से खाना खा लिया तो हाथ-पैर आश्चर्य चकित होकर देख रहे हैं कि पता नहीं, यह भोजन हम तक पहुंचेगा कि नहीं? अरे यह तो सब पेट में ही चला गया। नहीं, ऐसा नहीं है। सब एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है, सब चीजें सब जगह पहुंचेंगी। नानक यही बात कह रहे हैं कि 'वह संपूर्ण' हमारा ख्याल रखता है।

जलि थलि महिअलि भरिपुरि लीणा घटि घटि जोति तुमारी, अगम अगोचर अलख अपारा चिंता करहु हमारी। जैसे इस शरीर के विभिन्न अंग हैं और किसी को किसी की चिंता नहीं करनी पड़ती है, सब अंगों का पोषण अपने आप ही हो रहा है, ठीक वैसे ही, इस अस्तित्व के साथ जब हम मैत्री भाव में डूबते हैं तब हम पाते हैं कि सब कुछ आपस में जुड़ा हुआ है।

होश में आने पर पता चलता है कि सब ख्याल रखा ही जा रहा है और तब सारी मांग समाप्त हो जाती हैं, सारी प्रार्थनाएं बंद हो जाती हैं। कोई शर्त का सवाल ही नहीं। इतना कुछ मिल रहा है, ज्यादा से ज्यादा मिल रहा है, तब केवल धन्यवाद का भाव ही रह सकता है, मांगने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

जो मिला है वही इतना ज्यादा है कि उसी को हम पूरा कहां जी पा रहे हैं! ऐसा अहोभाव, हमें जगत के साथ गहराई से जोड़ देता है। अपने प्रियजनों और मित्रों के साथ खुशी से मिलना तथा सबके साथ मित्रता का भाव रखने से भविष्य का कोई बंधन निर्मित नहीं होता है। इस मैत्री भाव में कोई अपेक्षा नहीं होती है इसलिए अत्यंत शांति और आनंद बरस जाता है। आओ, इस निराली, सच्ची प्रार्थना में डूबें-

सिख मति सभ बुधि तुमारी मंदिर छावा तेरे। तुझ बिनु अवरु न जाणा मेरे साहिबा गुण गावा नित तेरे।। जीअ जंत सभि सरणि तुमारी सरब चिंत तुधु पासे। जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदासे।। ऐसी अनूठी दृष्टि देने वाले सदगुरु नानक को नमन। सदगुरु ओशो को नमन। जय ओशो, जय ओशो, जय ओशो। धन्यवाद।।

शीश झुकाने की कला

तितु जाइ बहहु सतसंगती जिथै हरि का हरि नामु बिलोईऐ।
सहजे ही हरि नामु लेहु हरि ततु न खोईऐ।
नित जपिअहु हरि हरि दिनसु राति हरि दरगह ढोईऐ।
सो पाए पूरा सतगुरु जिसु धुरि मसतकि लिलाटि लिखोईऐ।
तिसु गुर कंउ सभि नमसकारु करहु जिनि हरि की हरि गाल गलोई।।4।।

उस सत्संग में जाकर बैठो, जहाँ प्रभु के नाम का विचार होता है। (वहाँ)मन टिकाकर हरि का नाम जपो, ताकि नाम-तत्व छिन न जाए। सत्संग में हमेशा रात-दिन हरि का नाम जपो, यह नाम रूपी सहारा लेकर ही प्रभु की सेवा में पहुँचा जाता है। उसी मनुष्य को पूर्णगुरु मिलता है, जिसके मस्तक पर परमात्मा द्वारा (शुभ कर्मों का लेख) लिखा हुआ है। हे भाई! सब उस गुरु के समक्ष शीश झुकाओ, जो सदा प्रभु की गुण-स्तुति की बातें करता है ।।4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार। आज का प्यारा शबद-

तितु जाइ बहहु सतसंगती जिथै हरि का हरि नामु बिलोईऐ।

ऐसे सत्संगो में जाकर बैठो जहां प्रभु की चर्चा हो और उसके नाम में डुबकी लगे।

सहजे ही हरि नामु लेहु हरि ततु न खोईऐ।

जहां मन लगाकर साधना में डूब सको, ताकि यह नाम-तत्व कहीं छिन न जाए, खो न जाए, भूल न जाए। गुम तो नहीं हो सकता, लेकिन विस्मृत हो सकता है।

नित जपिअहु हरि हरि दिनसु राति हरि दरगह ढोईऐ।

जो व्यक्ति इस प्रकार निरंतर साधना में संलग्न रहता है वह प्रभु की सेवा में पहुंच जाता है। स्मरण साधते-साधते सध जाता है। भक्त का भगवान से मिलन हो जाता है।

सो पाए पूरा सतगुरु जिसु धुरि मसतकि लिलाटि लिखोईऐ।

जिसके मस्तक पर प्रभु ने पहले से ही लिख कर भेजा है, जिसकी किस्मत में यह संयोग लिखा है, उसी भाग्यशाली को पूरा सद्गुरु मिल पाता है।

तिसु गुर कंउ सभि नमसकारु करहु जिनि हरि की हरि गाल गलोई।।

उस गुरु के समक्ष अपना शीश झुकाओ, उसे नमन करो जो सदा तुम्हें परमात्मा की दिशा की ओर जाने का इशारा करता है। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है, दुनिया में बहुत प्रकार के गुरु हैं, शिष्य के लिए बड़ी मुश्किल है कि वह कैसे पहचाने? कैसे तय करे? सब अलग-अलग प्रकार की शिक्षाएं दे रहे हैं। उनके दर्शन अलग, उनके सिद्धांत अलग। वे जो सिखा रहे हैं वो बातें भिन्न-भिन्न हैं। शिष्य अज्ञानी है, वह कैसे समझे कि क्या सही है? क्या गलत है? किस मार्ग पर चलना चाहिए? किस मार्ग पर नहीं चलना चाहिए? इसका एक बहुत ही आसान उपाय है, इस शबद में कहा गया है कि उस गुरु के समक्ष झुक जाओ 'तीस गुरु का सब नमस्कारै करौ जिन हरि की गाल गलोयी।'

यहां पर हरि की तरफ इशारा किया जा रहा है। यह छोटा सा सूत्र बड़े काम का क्योंकि जो अपने से जोड़ना चाह रहा है वह सद्गुरु, सद्गुरु नहीं होगा। वह अहंकार का ही प्रपंच रच रहा है, अपने को महत्वपूर्ण बनाने के लिए। वह धर्म के नाम पर भी राजनीति ही कर रहा होगा, भीड़ इकट्ठी कर रहा है, अपने समर्थक जुटा रहा है। उसका प्रभु से कुछ लेना-देना नहीं है।

वास्तविक सद्गुरु तो सदा अपने शिष्य को उस परम तत्व की ओर चलने के लिए मार्ग दर्शन देगा। जो अंतिम लक्ष्य है, उसकी तरफ इशारा करेगा।

प्रायः अध्यात्म में उत्सुक लोगों से दो प्रकार की गलतियां हो सकती हैं।

पहली भूल-चूक कि साधक अपने अहंकार की वजह से किसी का सहारा लेने से ही इंकार कर दे, वह सोचे कि गुरु की जरूरत ही क्या है? मैं खुद ही किताबों से पढ़कर सब जान लूंगा। शास्त्र उपलब्ध हैं, सिद्घांत उपलब्ध हैं, मैं ढूंढ लूंगा कि सही

क्या है? मैं स्वयं ही अपना मार्ग खोज लूंगा। इसमें गुरु की क्या जरूरत है?

ऐसा व्यक्ति अपने अहंकार से भरा हुआ है, वह झुकना ही नहीं चाहता, वह किसी से सीखने को तैयार नहीं है। सीखने के लिए विनम्रता चाहिए। परंतु इस प्रकार के लोगों को अपने ज्ञान का घमण्ड है। यह पहली गलती है कि हम किसी की मदद लेने को तैयार नहीं हैं। यद्यपि अन्य छोटे-छोटे कामों में हम मदद लेते हैं। माता-पिता और परिवार के लोगों की मदद से भाषा सीखी, स्कूल गए, गुणा-भाग सीखा, भूगोल व इतिहास सीखा, शिक्षकों की मदद ली, फिजिक्स, कैमेस्ट्री सीखी। संसार की छोटी-छोटी चीजों में सबकी मदद लेनी पड़ी।

अगर एक आदमी के बच्चे को पैदा होने के तुरंत बाद ही जंगल में छोड़ दिया जाए, जानवरों के बीच; तो वह जिंदगी में कभी दो पैरों पर खड़ा भी नहीं हो सकेगा। खड़े होकर चलना कोई प्राकृतिक घटना नहीं है, यह भी हमने सीखा है, दूसरों को देख-देखकर। दूसरों ने हमारी मदद की है खड़े होने में। उनको देखकर हमें ख्याल आया कि खड़ा हुआ जा सकता है। अन्यथा पूरी उम्र हमें यह विचार ही नहीं आ सकता था कि खड़ा होना संभव है।

सब छोटी-छोटी बातें हमने सीखी हैं। छोटे बच्चे को तो खाना भी सिखाना पड़ता है, अन्यथा वह कुछ भी कचड़ा-कूड़ा उठाकर खाने लगेगा। कीड़े-मकोड़े उठा कर खा लेगा। छोटी से छोटी बात सिखानी पड़ती है। और हम सीखने को तैयार भी रहते हैं।

आप कार ड्राईव करते जा रहे हैं, खड़े होकर पान की दुकान पर अजनबी से पूछ लिया कि रेल्वे स्टेशन का रास्ता कौन सा है? और उसने बता दिया और आप चल भी दिए, पूर्ण भरोसा कर लिया। जिस आदमी को कभी जानते नहीं थे, पहचानते नहीं थे उसकी बात भी आपने मान ली, उससे भी सहयोग ले लिया। इतनी स्थूल बात कि स्टेशन का रास्ता कौन सा है? इस बात में भी आपने सहयोग ले लिया तो आप शीघ्रता से पहुंच गए। अगर आप तय कर लेते हैं कि मैं खुद ही खोजूंगा, सुनता हूं रेल की आवाज कहीं से, कहीं से तो इंजन की आवाज आएगी, जहां से आवाज आएगी उसी दिशा में आगे बढ़ता जाऊंगा। तब एक बात तो पक्की है कि आप यह ट्रेन चूक जाएंगे।

छोटी-छोटी बात में हमारा अहंकार आड़े नहीं आता। बीमार पड़ते हैं तो चिकित्सक के पास चले जाते हैं, इलाज पूछ लेते हैं और दवाई खाना शुरू कर देते हैं। आपको चिकित्सक के बारे में कुछ पता नहीं है, पर एक तरह का भरोसा है।

मुल्ला नसरुद्दीन का आपरेशन होना था, टेबल पर लिटा दिया। जब बेहोशी का इंजेक्शन देने लगे तो उसने कहा, रुकिए एक मिनट! उसने अपने कुर्ते के जेब में हाथ डाला, नोट की गड्डी निकाली, रुपए गिनने लगा। डॉक्टर ने कहा, फीस अभी देने की जरूरत नहीं है, बाद में ले लेंगे। उसने कहा, नहीं, आपको फीस नहीं दे रहा हूं, मैं तो गिन रहा हूं कि मेरी जेब में कितने पैसे हैं? क्योंकि आप बेहोश कर देंगे फिर क्या भरोसा? पहले गिन तो लूं कि हैं कितने?

अस्पताल में जब मुल्ला भर्ती था, ऑपरेशन के बाद तीन-चार दिन बीत चुके थे,

उसने नर्स से कहा जो बहुत सुन्दर थी; कि तुमने मेरा दिल चुरा लिया है। नर्स ने कहा, खबरदार जो ऐसी बात कही। हम लोग यहां सिर्फ किडनी चुराते हैं, किसी का दिल-विल नहीं चुराते। हम इतना भी गलत काम नहीं करते।

यद्यपि हमको पता है कि डॉक्टर किडनी तक चुरा लेते हैं! मगर फिर भी भरोसा करके हम ऑपरेशन टेबल पर लेट जाते हैं कि शायद हमारी न चुराएं। संसार में भरोसा कर के हम चलते हैं, माना कि धोखा-धड़ी भी हो रही हैं। लेकिन जहां अध्यात्म का मामला आता है वहां अचानक हमारा अहंकार अत्यंत प्रबल हो जाता है, हमें लगता है कि यह तो हम खुद ही कर लेंगे। छोटी-छोटी बात सीखनी पड़ी, पूछनी पड़ी, पर ब्रह्मज्ञान पाने खुद ही चले। यह पहली गलती साधक के अहंकार की वजह से होती है।

दूसरी भूल होती है, तथाकथित गुरुओं के अहंकार की वजह से। उनको पता है कि अध्यात्म के क्षेत्र में किसी को कुछ पता नहीं है, बुरी तरह से लोगों को भरमाया जा सकता है। खूब धोखा-धड़ी की जा सकती है। वे भूल करते हैं, वे अहंकार ग्रस्त हैं, वे राजनीतिक चाल चल रहे हैं, उनको भीड़ इकट्ठी करनी है, शोहरत पानी है। उनको प्रतिष्ठा कमानी है। अतः साधक की तरफ से दूसरी भूल जो हो सकती है वह ये कि वह गुरु के रूप और आकार से मोहित हो कर उसे पकड़ ले। गुरु से आकर्षित हो जाए, गुरु के प्रेम में पड़े, उसके भीतर श्रद्धा भाव जागे, इससे वह साधना शुरू कर दे पर गुरु से अटैच हो जाए, मोहित हो जाए। उनका रूप, उनका आकार, उनकी वाणी इसी में अटक जाए। गुरु जो इशारा कर रहे, कह रहे हैं; वो उसे न देखे, विचारों में खो जाए।

ओशो की एक किताब का शीर्षक है 'डोन्ट बाईट माई फिंगर, लुक एट द मून व्हेयर इट पॉण्इटिंग' उस चांद की तरफ देखो जिसकी ओर मेरी उंगली संकेत कर रही है, मेरी उंगली को ही मत काटो। बिल्कुल ठीक कहा है ओशो ने, लेकिन वह उंगली इतनी प्यारी है और उससे मोह हो जाना भी स्वभाविक है। लेकिन यह स्वभाविक भूल से हमें बचना होगा, संभलना होगा, नहीं तो हम अंगुली की ही तारीफ करने लगें और अंगुली पर ही हमारी नजर जम जाए। इतनी प्यारी अंगुली, इतनी सुन्दर अंगुली। अंगुली जिस ओर इशारा कर रही थी वो पूरी बात ही खतम हो गयी। जहां नजर उठानी थी वहां हमने उठायी ही नहीं।

साधक की तरफ से दो भूलें संभव हैं। पहली, वह बिना गुरु के ही अपनी बुद्धि से चलना चाहे। दूसरी, गुरु के प्रति प्रेम से भर जाए, झुक जाए, शिष्य बन जाए किंतु उनके इशारे को न पकड़े, उनकी स्थूल बातों को पकड़कर, सूक्ष्म संकेत से चूक जाए।

कई बार मेरे पास फोन आते हैं कि स्वामी जी, आज आस्था चैनल के प्रवचन पर आपने जो गाऊन और टोपी पहनी थी, बहुत ही बढ़िया मैचिंग लग रही थी। मैंने कहा, अच्छा आज का सूत्र क्या था? किस विषय पर बोला था? तो कहते हैं कि ये तो नहीं पता। अब देखो, प्रवचन का सूत्र सुना ही नहीं, उससे कुछ मतलब ही नहीं है, उस पर ध्यान ही नहीं दिया कि भाषण किस बात पर था? बस उन्हें टोपी और गाउन का रंग

बहुत अच्छा लगा। खासकर महिलाओं की नजर वस्त्रों पर अटक जाती है। निश्चित ही ये प्रेम में तो हैं लेकिन इनका प्रेम खतरनाक किस्म का प्रेम है। मूल बात को नहीं पकड़ रहे हैं, कुछ गौण बातों को पकड़ लिए हैं। सावधान!

एक व्यक्ति अहंकारी है, जो गुरु से जुड़ता ही नहीं है और दूसरा व्यक्ति अति प्रेमल है जो जुड़ तो गया है मगर केवल किसी स्थूल बात से जुड़ा है। किसी को वाणी अच्छी लग रही है, किसी को भाषा की शैली अच्छी लग रही है, किसी को चुटकुले अच्छे लग रहे हैं, किसी को कुछ और... परंतु जिस तरफ इशारा किया जा रहा है, जो मूल लक्ष्य है, उससे वह चूक रहा है। किसी को कपड़े अच्छे लग रहे हैं, इन सब बातों का कोई महत्वपूर्ण अर्थ नहीं है। गुरु की तरफ से जो गलती है वह यह है कि वह प्रभु से जोड़ने की बजाय, लोगों को स्वयं से जोड़ने पर ज्यादा जोर दे रहा है। कबीर ने कहा है-

'गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पाएं। बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविन्द दियो बताए।।' उस गुरु की बलिहारी जिसने गोविन्द की तरफ इशारा किया है, गोविंद ही अंतिम लक्ष्य है। यह शब्द गुरुद्वारा बड़ा अच्छा है। ओशो ने इसकी परिभाषा की है कि गुरु भी एक द्वार है। जिससे गुजर कर प्रभु तक जाना है। कोई व्यक्ति द्वार को ही पकड़ ले कि इसकी चौखट कितनी अच्छी है, कितनी कीमती लकड़ी का बनाया है, और कितनी अच्छी नक्काशी की है, कितना सुंदर रंग है, तो वह दरवाजे पर ही अटक गया। और दरवाजा जिस प्रयोजन से बनाया गया था, उस प्रयोजन को हम भूल ही गए। दरवाजा इसलिए था कि उस में से गुजर के, आगे बढ़ो। अब कोई दरवाजे पर खड़ा होकर ही कविताएं लिखने लगा, कोई दरवाजे की प्रशंसा ही किए जा रहा है कि कितना अच्छा है यह दरवाजा! तो इन दोनों गलतियों के प्रति सचेत रहना होगा।

'जो पाए पूरा सत्गुरु, जिस धर सर मस्तक ललाट लिखोईए।'

जो अपने पिछले कर्मों के कारण अपने ललाट पर लिखवाकर लाया है, जिसकी ऐसी मनोदशा निर्मित हो गई है कि वह साधना में उत्सुक है, ऐसा व्यक्ति ही गुरु से जुड़ता है। यह बात भी समझने जैसी है, इसमें भी भूल-चूक की एक संभावना है। लगता है कि जो लोग साधक बन गए हैं, किसी गुरु से जुड़ गए हैं उनकी किस्मत में लिखा था इसलिए वो ऐसा कर रहे हैं। अगर हमारी किस्मत में नहीं लिखा तो हम क्या कर सकते हैं? अभी हमारा समय ही नहीं आया है। अभी हमारे भीतर साधना का या किसी गुरु से जुड़ने का ख्याल ही नहीं आ रहा है। कोई जिज्ञासा ही नहीं है, जैसा है सब ठीक ही चल रहा है। परंतु याद रखो, जिज्ञासा की शुरूआत कहीं से तो होगी। जिन लोगों के भीतर आज प्रगाढ़ जिज्ञासा है, मुमुक्षा है, कभी उनकी भी तो कहीं से शुरूआत हुई थी।

महावीर ने अपने पिछले जन्मों को जानकर अपना पूरा इतिहास बताया कि लगभग एक लाख साल पहले किसी सद्गुरु ने उनसे कहा था कि तुम साधना में बहुत अग्रणी होओगे और दूसरों का मार्गदर्शन करोगे। परंतु उस समय महावीर को भी धर्म आदि में कोई उत्सुकता नहीं थी। तब महावीर ने उस गुरु से कहा था कि क्षमा करें,

आपको कुछ भ्रांति हो गयी है। मुझे अध्यात्म में कोई रूचि नहीं है। आप जो कह रहे हैं वह संभव ही नहीं हो सकता है। फिर दो-चार जन्म बीते, कभी उनके भीतर किसी घटना से उत्सुकता पैदा हुई, फिर किसी गुरु के पास गए, थोड़ा-बहुत सीखा फिर भूल-भाल गए। फिर दो चार जन्म काफी दूर निकल गए, संसार में लिप्त हो गए।

उन्होंने पूरा वर्णन किया है कि कितनी बार उतार-चढ़ाव आए। कभी ध्यान के मार्ग पर बहुत आगे बढ़े, फिर कभी फिसल भी गए। कभी पांच-सात सौ साल का लंबा गैप पड़ गया, फिर से ध्यान की उत्सुकता पैदा हुई, फिर कुछ कदम बढ़ाए, फिर थोड़ा-बहुत कुछ हासिल किया, फिर प्यास कहीं खो गयी।

एक लाख साल कम से कम दो-चार सौ जन्म हुए होंगे। तब जाकर ध्यान की परम अवस्था घटी। महावीर इसलिए पूरी बात बता रहे हैं कि किसी भी व्यक्ति को निराश होने की जरूरत नहीं है। हम कहीं न कहीं किसी बिंदु पर तो शुरूआत करेंगे। दूसरी बात धीरज की शिक्षा भी मिलती है, महावीर के इस जीवन-वृतांत से। ध्यान या शांति या आनंद या परमात्मा का फूल, कोई मौसमी फूल नहीं है, कि अभी पौधा लगाया और चार-पांच दिन बाद अंकुर निकल आया, दो हफ्ते में फूल खिल गए। ऐसे मौसमी फूल और पौधे महीने भर में खत्म भी हो जाएंगे। परंतु ध्यान तो शाश्वत वृक्ष है, सनातन फूल है। इसके अंकुरित होने में तो हजारों-हजारों साल लग सकते हैं।

मुझे स्मरण आता है, जब ओशो मीरा बाई पर बोल रहे थे तो उन्होंने उल्लेख किया कि मीरा कहती हैं किसी पिछले जन्म में, कृष्ण के समय में वह ललिता नाम की गोपी थी। इतिहासविद् इस बात को नहीं मानते, शास्त्रों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं आता है। पर ओशो ने कहा कि मैं इतिहासविदों की नहीं मानता। मैं मीरा की बात को मानता हूं, मैं मीरा से सहमत हूं। जब मीरा ही कह रही है तो इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा? संभव है कि शास्त्रों में सारी बातें इतने विस्तार से न लिखी गई हों।

अगले दिन एक संन्यासी ने सवाल पूछा कि मैं बहुत दुखी हो गया हूं यह सुनकर कि जब कृष्ण की इतनी निकट की गोपी पांच हजार साल बाद ज्ञान को उपलब्ध हो पायी तो फिर हमारा क्या होगा?

सदगुरु ओशो ने कहा, तुम निराश न हो, तुम भी कोई नए नहीं हो। पांच हजार साल में मीरा उपलब्ध हो गयी परम अवस्था को, इससे जल्दी और क्या हो सकता है? यह तो बहुत ही शीघ्र हो गया। इस बात से धीरज का सबक सीखो। जितना ही तुम प्रतीक्षा करने को तैयार होते जाओगे, उतने ही तुम शांत होते जाओगे। जितनी हड़बड़ी, जल्दबाजी, जितनी शीघ्रता, उतनी ही देर लगेगी, उतना ही विलम्ब होता जाएगा क्योंकि उतना अशांत रहोगे, बेचैन रहोगे। प्रतीक्षा करना सीखो। जिसे शांत होना हो वह समय को भूल ही जाए। मान कर चले कि जो किस्मत में लिखा है, वही हो रहा है, वही होगा, वही होना चाहिए। इस भाव से उसमें अनंत धैर्य उत्पन्न होगा। जय ओशो।

अब मिलो मेरे प्रीतम

मिलु मेरे प्रीतमा जीउ तुधु बिनु खरी निमाणी।
मै नैणी नीद न आवै जीउ भावै अंनु न पाणी।
पाणी अनुं न भावै मरीऐ हावै बिनु पिर किउ सुखु पाईऐ।
गुर आगै करउ बिनंती जे गुर भावै जिउ मिलै तिवै मिलाईऐ ।
आपे मेलि लए सुखदाता आपि मिलिया घरि आए।
नानक कामणि सदा सुहागणि ना पिरु मरै न जाए ।।

हे मेरे प्रियतम प्रभु! मुझे मिल। तेरे बिना मैं व्याकुल हूँ। तेरे बिना मेरी आंखों में नींद नहीं आती; मुझे न अन्न अच्छा लगता है और न ही पानी। हे माँ! (प्रियतम के विछोह में) अन्न-पानी अच्छा नहीं लगता, आहों में आत्मा व्याकुल होती है, प्रभु-पति के बिना आत्मिक आनंद प्राप्त नहीं होता। मैं गुरु के समक्ष प्रार्थना करती हूँ - हे गुरु! यदि तुझे मेरी प्रार्थना अच्छी लगे तो जैसे हो सके मुझे (प्रियतम-प्रभु से) मिला। सारे सुखों के दाता प्रभु-प्रियतम (जिसे चाहता है) आप ही मिला लेता है, उसके हृदय-घर में आप ही आकर मिल पड़ता है। हे नानक! वह जीव-स्त्री सदा के लिए सौभाग्यशालिनी हो जाती है, क्योंकि उसका (यह प्रभु) पति न कभी मरता है न उससे बिछुड़ता है ।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

अभी हम सुन रहे थे यह प्यारा गीत- 'इश्क में ओशो के दीवाना बने फिरते हैं'। चलिए, यहीं से आज की चर्चा शुरू करते हैं। फिर शबद का भावार्थ गृहण करेंगे।

गुरु के प्रति प्रेम, अध्यात्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। हमारे जीवन में प्रेम के तीन रूप सामान्यतः नजर आते हैं। एक और चौथा रूप भी है वह प्रायः नजर नहीं आता। हम पहले इन चार रूपों पर दृष्टि डालें- प्रेम का पहला रूप है अपने से छोटों के प्रति लगाव, जिसे हम कहते हैं स्नेह। इसमें करुणा का तत्व ज्यादा है, दूसरे की देखभाल करना, उसकी सुधि लेना। प्रेम का दूसरा रूप है अपने बराबर वालों के संग लगाव, जिसे हम कहते हैं मैत्री। प्रेम का तीसरा रूप है अपने से बड़ों के प्रति लगाव, यानी श्रद्धा। जिन लोगों को हम अपने से ज्यादा श्रेष्ठ मानते हैं, ज्यादा अनुभवी समझते हैं, जिन पर हम भरोसा करते हैं जैसे माता-पिता, गुरुजन आदि।

प्रेम के दो रूप साधारणतः बहुतायत में देखने को मिलते हैं, तीसरा थोड़ा कठिन है कभी-कभी प्रगट होता है। इन तीनों रूपों से संबंधित मनोविज्ञान को समझ लें, फिर ही हम चौथे में छलांग लगा पाएंगे। चौथा है भक्ति। भक्ति यानि समस्त अस्तित्व से प्रेम, अब किसी व्यक्ति से नहीं बल्कि संपूर्ण समष्टि से प्रेम हो गया। पहले तीन रूप व्यक्ति से संबंधित हैं। अपने से छोटे के प्रति, बराबर वाले के प्रति अथवा अपने से बड़े के प्रति; ये तीनों ही प्रेम व्यक्तियों से संबंधित हैं। चौथा रूप निर्वैयक्तिक है, संपूर्ण अस्तित्व के प्रति प्रेम है, उसी का नाम है भक्ति। तीन अपरा, लौकिक हैं। चौथा परा, अलौकिक है।

पहले तीनों रूपों से गुजर कर ही कोई चौथे की तरफ बढ़ पाता है, यही जीवन का विकास क्रम है। स्नेह करना बहुत आसान है क्योंकि इसमें हमारा अहंकार मजबूत होता है। दूसरे व्यक्ति को प्रेम की जरूरत है, हम देने वाले हैं, हम उससे श्रेष्ठतर हो जाते हैं। दूसरा लेने की स्थिति में है इसलिए अहंकार को इसमें कोई अड़चन नहीं होती है। दया करना, करुणा करना, दूसरे की चिंता करना, सेवा करना इसमें अहंकार ही पुष्ट होता है। तो स्नेह में प्रेम का प्रतिशत कम और अहंकार का प्रतिशत अधिक होता है।

लोगों की शादी होती है और अगर दो-तीन साल बच्चे न हों तो बड़ी चिंता होने लगती है, हड़बड़ी मच जाती है कि अब क्या होगा? क्यों बच्चों की इतनी जल्दी है? बच्चे आ जाएं तो फिर लगता है कि कोई तो है जो आपकी तरफ आशा भरी दृष्टि से देख रहा है, कोई तो है जिसको आपकी जरूरत है, संसार में कोई तो है जो आपके बिना असहाय है, जो अपने आप कुछ नहीं कर सकता है। बच्चा आपको पुकारेगा और आप अपने ढंग से उसे चला सकते हैं, आप उसके जीवन को दिशा दे सकते हैं, आप उसे कह सकते हैं कि ऐसा करो, ऐसा मत करो। बच्चा हर प्रकार से आपके ऊपर निर्भर है। अहंकार को इसमें बहुत रस आता है। इसलिए स्नेह वाला जो प्रेम है उसमें प्रेम की मात्रा थोड़ी सी है। जैसे अशुद्ध सोना, एक कैरेट गोल्ड तथा तेईस कैरेट

अशुद्धियां, ऐसा है हमारा स्नेह, वात्सल्य का भाव, दया का भाव।

इससे बेहतर है अपने बराबर वाले के संग दोस्ती का भाव, इसमें पचास परसेंट प्रेम, पचास परसेंट अहंकार होता है। ऐसा समझो कि बारह कैरेट गोल्ड, आधा-आधा। क्योंकि दूसरा व्यक्ति अहंकार को सहन नहीं करेगा, बराबर के तल पर हैं, एक लेन-देन है, परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दूसरा व्यक्ति बर्दाश्त तभी करेगा जब कम से कम पचास परसेंट प्रीति की मात्रा हो, इससे कम में तो संबंध ही टूट जाएगा।

बहुत लोगों के जीवन में बराबरी वाला प्रेम भी पैदा नहीं हो पाता, अहंकार इतना ज्यादा होता है कि वे इस तल पर भी नहीं आते कि बराबर वाला प्रेम कर सकें। दूसरे को अपने बराबर मानें, यह भी संभव नहीं हो पाता है।

तीसरा प्रकार का प्रेम तो और भी कम देखने को मिलता है, उसका नाम है श्रद्धा। श्रद्धा में हमें झुकना होता है। हम जानते हैं कि हम जिसको श्रद्धा कर रहे हैं वह हमसे ज्यादा अनुभवी, हमसे ज्यादा ज्ञानी है, वह हमें दिशा-दर्शन दे सकता है, वह हमारे जीवन को संवार सकता है। हम उसकी तुलना में अनुभवहीन हैं, नासमझ हैं इसलिए हम उसके साथ श्रद्धा भाव से जीते हैं। श्रद्धा कठिन है क्योंकि अहंकार किसी के सामने झुकना नहीं चाहता है। किसी को अपने से ऊपर मानना तो बहुत ही कठिन है। इसलिए जगत में, सच्ची श्रद्धा बहुत कम नजर आती है, यदा-कदा पैदा होती है।

श्रद्धा भाव के साथ दूसरा खतरा यह भी है कि जब श्रद्धा करने वाला झुका हुआ है, समर्पित है, तो पूरी संभावना है कि जिसके प्रति श्रद्धा की जा रही है वह खूब अहंकार से भर जाए और वह शोषण शुरू कर दे। यह खतरा हमेशा बना ही रहेगा। जहां श्रद्धा करने वाले मौजूद हैं वहां शोषक पैदा हो जाएंगे। शोषण के कड़वे अनुभव के बाद लोगों के हृदय से श्रद्धा की भावना जड़ से समाप्त हो जाएगी। एक-दो कड़वे अनुभव अगर हो गए, एक-दो जगह धोखा खा लिया तो फिर तीसरी जगह बहुत ही मुश्किल हो जाएगी। ये खतरे जुड़े हुए हैं, कुछ किया नहीं जा सकता, यह तो चलता ही रहेगा। जहां लोग भरोसा करेंगे वहां धोखेबाज भी होंगे जो कि धोखा देंगे।

श्रद्धा दुनिया में इतनी कम नजर आती है क्योंकि श्रद्धा का खूब शोषण होता है।

जिनका सम्मान किया जाता है बाद में पता चलता है कि वह सम्मान योग्य हैं ही नहीं। फिर आगे के लिए भरोसा टूट जाता है, किसी और पर श्रद्धा जमती ही नहीं। आदमी संदेहग्रस्त हो जाता है कि जिन पर भरोसा किया था वे भरोसे के काबिल न निकले। और इसकी जो सबसे मंहगी चोट पड़ती है, वह, कि श्रद्धा टूट जाती है। माता-पिता के प्रति जो सम्मान है वहां से यह शुरूआत होती है। छोटा बच्चा पूरा श्रद्धालु है माता-पिता के प्रति, उन पर सौ प्रतिशत भरोसा करता है। बड़े होने पर पता चलता है कि धोखा-धड़ी चल रही, ये कह कुछ रहे हैं तथा कर कुछ और रहे हैं।

स्कूल के शिक्षकों पर खूब श्रद्धा होती है बच्चों की। छोटे बच्चे को देखो, वे अक्सर इस बात पर अड़ जाते हैं कि मेरी टीचर ने ऐसा ही बताया है। उसको टीचर पर

सौ प्रतिशत भरोसा है। बच्चा बहुत श्रद्धालु है, जो कहा जा रहा है वह वैसा ही मान रहा है। लेकिन धीरे-धीरे उसको पता चलता है कि ये लोग भरोसे के काबिल नहीं हैं, दुनिया में धोखाधड़ी चल रही है। बच्चे का हृदय बहुत विषाद से भर जाता है इसलिए दुनिया में श्रद्धा इतनी कम नजर आती है। जिन पर सहज रूप से श्रद्धा आई थी वे श्रद्धा योग्य सिद्ध नहीं हुए। इसलिए किसी अन्जान व्यक्ति पर भरोसा करना तो और मुश्किल हो जाता है। प्रेम के ये तीनों रूप व्यक्तियों से संबंधित हैं।

चौथा रूप, प्रेम की पराकाष्ठा है। इसमें सौ प्रतिशत प्रेम ही प्रेम है, अहंकार जरा भी नहीं, उसी का नाम है भक्ति। यह भक्ति निर्व्यैक्तिक ही हो सकती है। व्यक्ति के साथ परिपूर्ण रूप से अहंकार खत्म नहीं हो सकता क्योंकि व्यक्ति की एक सीमा है। दोनों तरफ से सीमाएं हैं लेकिन पूरे अस्तित्व के साथ हमारा प्रेम असीम हो सकता है, विराट रूप ले सकता है क्योंकि दूसरी तरफ कोई सीमा नहीं है। हम भी पूरे-पूरे फैल सकते हैं। मैत्री में अहंकार का संघर्ष है, श्रद्धा में शोषण की संभावना है, भक्ति में इन दोनों के पार चले गए। संपूर्ण अस्तित्व का न कोई अहंकार है जिससे संबंध हो सके और न ही दूसरी तरफ से शोषण की संभावना है। अतः प्रेम अपनी शुद्धि पर पहुंच सकता है, चौबीस कैरेट गोल्ड बन सकता है।

इस शबद में नानक कहते हैं कि जीवात्मा रूपी स्त्री ऐसी सदा सुहागन हो गई है जिसका पति न कभी मरेगा और न ही कहीं छोड़ के जाएगा। ऐसा प्रेमी तो बस संपूर्ण अस्तित्व ही हो सकता है, कोई व्यक्ति नहीं हो सकता, व्यक्ति तो मरेगा, व्यक्ति तो छोड़ेगा, जिसने पकड़ा है वह छोड़ेगा भी, जो जन्मा है वह मरेगा भी। सदा साथ रहने वाली बात किसी व्यक्ति पर लागू नहीं हो सकती। नानक भक्ति की तरफ इशारा कर रहे हैं कि सदा सुहागन केवल तभी हो सकते हैं जब हम उस प्रीतम को पा लें जिसकी मृत्यु नहीं होगी और जो कहीं आता-जाता ही नहीं है, जो अजूनी है, स्वयंभू है, न आया है और न गया है। ऐसा अमर व शाश्वत सत्य तो संपूर्ण अस्तित्व ही हो सकता है।

कहते हैं कि हे मेरे प्रीतम तुम्हारे बिना मैं व्याकुल हूं, मेरी आंखों में नींद नहीं आती है और मुझे भोजन-पानी भी नहीं भाता है, मैं तुम्हारे विरह से दुखी हूं। मुझे कुछ भला नहीं लगता तो सुख कैसे मिले? इसलिए सद्गुरु के आगे विनती करती हूं कि उस परम प्रीतम से मुझे मिलवाओ, जिसके मिलन से परमसुख मिलता है। उस परम प्रीतम से अब मेरा परम मिलन हो, ताकि मैं सदा-सदा सुहागन रह सकूं।

जीवन में हमने प्रेम के जो तीन रूप जाने, इनमें हमेशा सुख-दुख मिला, कभी भी पूर्ण सुख संभव नहीं हो पाया। न स्नेह में, न मैत्री में, न श्रद्धा में, उसमें सुख-दुख का मिश्रण चलता रहा। हमारे हृदय में आकांक्षा है- शुद्ध सुख की, परम सुख की। उसी परम सुख का दूसरा नाम है आनंद। आनंद, सुख और दुख दोनों से पार है।

जगत के जिस व्यक्तिवाची प्रेम को हम जानते हैं, उसमें सदा-सदा दुख ही पाया है। माता-पिता बच्चों को स्नेह करते हैं, स्नेह के साथ-साथ अपेक्षाएं रखते हैं और जब

वे अपेक्षाएं पूरी नहीं होतीं और निश्चित ही वे पूरी नहीं होतीं क्योंकि बच्चों की अपनी जिंदगी है वह अपने ढंग से जिएंगे, वह आपकी अपेक्षा पूरी करने नहीं आए हैं और तब यह जानकर आपको दुख होता है। बच्चे अपने माता-पिता को सदा खुश नहीं रख सकते, कुछ समय के लिए बच्चों का सुख मिल सकता है परंतु पूरी जिंदगी ऐसा नहीं हो सकता। माता-पिता ने अपने मन में सपने पाल रखे हैं कि बच्चे उनके सपनों को पूरा करेंगे, लेकिन बच्चों के अपने खुद के भी सपने हैं। वे बेचारे अपने सपने पूरे करेंगे कि आपके? जब अपेक्षाएं टूटेंगी तो दुख होगा।

बराबरी वालों के साथ मैत्री में भी लगातार संघर्ष चलेगा। प्रेम-घृणा बारी-बारी से दिन-रात की तरह आते-जाते रहेंगे। इस प्रकार सुख-दुख चलता रहेगा। पूर्ण सुख भी नहीं ठहर सकता, पूर्ण दुख भी नहीं ठहर सकता। अहंकार का संघर्ष चलता रहेगा। हम दूसरे को अपने ढंग से चलाने की कोशिश करते रहेंगे, दूसरा इंकार करेगा, वह अपने ढंग से आपको चलाना चाहेगा तब आपका अहंकार चोट खाएगा और आप बचने की कोशिश करते रहेंगे।

तो जहां तक दोनों परस्पर, समझौता पूर्वक एक-दूसरे को सता या दबा रहे हैं, एक-दूसरे को दुख दे रहे हैं वहां तक ठीक है, जैसे ही दबाव का यह प्रतिशत बढ़ेगा वैसे ही संबंध टूट जाएगा। हालांकि सुख भी मिलेगा, दुख भी मिलेगा पर प्रतिशत में समय-समय पर अंतर होता रहेगा।

नसरुद्दीन की पत्नी कह रही थी कि पहले आप मुझे बहुत गिफ्ट लाकर देते थे, मेरे ऊपर शेर-ओ-शायरियां लिखते थे, प्रशंसा में कविताएं बोलते थे, अब आप वैसा क्यों नहीं करते? नसरुद्दीन ने कहा कि नालायक! मछली को पकड़ने के बाद क्या कोई उसको घर में लाकर भी आटा खिलाता है? वह तो मछली फंसाने की तरकीब थी, वह गीत और कविताएं, अब खेल खत्म, अब उसका कोई मतलब ही नहीं रहा! अब तो शादी हो गई है, कानूनी बंधन, अब बीवी भाग नहीं सकती, अब किसलिए कविताएं सुनाना? अब लगातार संघर्ष चलता रहेगा। पहले जिससे सुख मिला था अब उसी से दुख भी मिलेगा क्योंकि अब आटा लगाना बंद कर दिया, अब कांटा ही कांटा बचा है।

पहले कम से कम दोनों थे, कांटा छुपा हुआ था और ऊपर से आटा लगाया हुआ था जो दिखता नहीं था, अब केवल कांटा ही बचा, शुद्ध कांटा। दुख बढ़ेगा। पर्दे गिर जाएंगे, जिनके पीछे प्रेम के नाम पर कुछ और ही छिपा था। यही कहानी श्रद्धा के साथ भी घटती है। अधिकांशतः श्रद्धा भाव में भी बड़े दुख मिलते हैं, बड़े सुख भी मिलते हैं। प्रेम में हम दूसरों से कामना रखते हैं चूंकि प्रेम में दोनों बराबर हैं तो किसी एक से अत्यंत विराट कल्पना नहीं की जा सकती है। क्योंकि जैसे हम हैं वैसा ही तो हमारा प्रेम पात्र होगा और शायद उससे भी निम्न हो।

चंदूलाल की बीवी कह रही थी कि जानते हो जी! तुमसे विवाह करने के लिए मैंने सोलह सोमवार के व्रत किए थे तब जाकर तुम्हारे जैसा पति मिला। चंदूलाल बहुत खुश

हुआ और पूछा कि अगर सोलह सोमवार का व्रत न करती तो? पत्नी ने कहा कि तब तुमसे भी गया-गुजरा मिलता, और भी घटिया पति मिलता।

अपनी दृष्टि में हमारा स्वयं का कोई सम्मान नहीं है, हम स्वयं को ही प्रेम नहीं करते, इसलिए अपने प्रेम-पात्र के प्रति भी सम्मान भाव से नहीं भर पाते हैं। जब कोई पुरुष किसी स्त्री के सौंदर्य का गुणगान करता है तब वह स्त्री भीतर ही भीतर जानती है कि उसकी बातों में बहुत कम मात्रा में सच और अधिक मात्रा में झूठ ही भरा हुआ है। उसको भलीभांति पता है कि इनमें से अधिकांश गुण मुझमें नहीं हैं लेकिन फिर भी तारीफ सुनना उसको बहुत अच्छा लग रहा है। वह जानती है कि झूठी तारीफ करने वाला भी झूठा और मूर्ख है। कोई स्त्री अपने पति को समझदार मान ही नहीं सकती क्योंकि सेल्फ रिस्पेक्ट जैसी कोई चीज किसी के पास नहीं है और इसलिए जो भी व्यक्ति मुझको सम्मान दे रहा है वह बुद्धिहीन ही होना चाहिए।

इन तीनों प्रेम के रूपों में सुख-दुख मिलता रहता है। चाहे हम किसी सद्‌गुरु से ही प्रेम करें तब भी उसमें दुख का तत्व शामिल रहेगा क्योंकि व्यक्ति के रूप में, एक मनुष्य के रूप में हर चीज की सीमा है। और हमने जो विराट सपना अपने मन में पाल रखा है, तब बार-बार हम पाएंगे कि वह पूरा नहीं हो रहा है। मनुष्य के मन का सपना ऐसा है कि परमात्मा से कम पर हम कभी राजी ही नहीं हो पाएंगे। हमारी प्रेम की प्यास विराट परमात्मा के सिवाय और कहीं तृप्त ही नहीं हो सकती है। परंतु मनुष्य रूप में किसी गुरु के साथ, वैसा संभव नहीं है, इसलिए श्रद्धा करके भी व्याकुलता बनी रहेगी। ठीक है, सामान्य प्रेम से हम बहुत ऊपर उठ गए लेकिन फिर भी वह बात नहीं बनी जो बननी चाहिए, वैसा नहीं हुआ जैसी हमारी चाहना थी।

हमारी विराट कल्पना को हम जहां-जहां पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं, वहां उसकी पूर्ति नामुमकिन है। अतः धीरे-धीरे प्रेम के इन तीनों घाटों से गुजरते हुए, हमें उस चौथे की तरफ इशारा मिलना शुरू होता है। एक बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी व्यक्ति से कितना ही गहन लगाव, कितना ही गहरा प्रेम क्यों न हो अंततः भीतर की प्यास अधूरी ही बनी रहती है। आज जो व्यक्ति है वह कल नहीं रहेगा, कोई ऐसा संयोग हो जाएगा कि बिछुड़ जाएंगे क्योंकि संयोग से ही मिले हैं। चाहे स्नेह हो, चाहे मैत्री हो, चाहे श्रद्धा हो, वह अस्थाई है। और हमारा मन चाहता है- स्थाई प्रेम! मरणधर्मा के संग भला वह कैसे संभव है? दो मरणधर्मा पात्र मिल कर भला अमर प्रेम कैसे करेंगे?

प्रेम की यह अमरता संसार में संभव नहीं है लेकिन फिर भी प्रत्येक दिल में इसकी चाहत है, हर दिल में यही चाहत है कि शाश्वत प्रेम मिल जाए। हमारे भीतर की यही चाहत, भक्ति की ओर संकेत कर रही है कि व्यक्तियों की सीमा से ऊपर उठो, संपूर्ण अस्तित्व के प्रति प्रेम में डूबो। एक दिन उस असीम के साथ प्रेम करते-करते हम भी वैसे ही असीम और विराट हो जाएंगे- आशिएनिक एक्सपीरिएंस, बूंद सागरमय... वही हमारे प्यारे सदगुरु के नाम का अर्थ है- जय ओशो, जय-जय ओशो। धन्यवाद।

बिन गुरु मुक्ति न होय

जे को गुर ते विमुखु होवै बिनु सतिगुर मुकति न पावै ।।
पावै मुकति न होर थै कोई पुछहु बिबेकीआ जाए ।।
अनेक जूनी भरमि आवै विणु सतिगुर मुकति न पावै ।।
फिरि मुकति पाए लागि चरणी सतिगुरू सबदु सुणाए ।।
कहै नानकु विचारि देखहु विणु सतिगुर मुकति न पावै ।।

जो कोई जीव गुरु से विमुख होता है वह सतगुरु के बिना कभी मुक्ति नहीं पाता। मुक्ति किसी अन्य जगह उसे नहीं मिल सकती, भले ही आप प्रतिभाशाली महात्माओं और प्रभु-प्राप्त जीवों से पूछ देखो। वह चाहे अनेक योनियों में भटकता रहे, किन्तु सतगुरु के बिना उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। जीव को यदि मुक्ति पाना है तो सतगुरु की शरण में जाकर शब्द का अभ्यास करना होगा। गुरु नानक कहते हैं कि विचार कर देख लो, सतगुरु के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती ।।

सभी मित्रों को नमस्कार। आज ये प्यारे वचन सुनो-

जे को गुर ते विमुखु होवै बिनु सतिगुर मुकति न पावै ।।

पावै मुकति न होर थै कोई पुछहु बिबेकीआ जाए ।।

नानक देव जी कहते हैं कि जो गुरु से विमुख है उसकी मुक्ति संभव नहीं है क्योंकि गुरु के सिवा अन्य कोई ऐसी जगह नहीं है जहां मुक्ति संभव है। कितने ही प्रतिभाशाली लोग मौजूद हों, बड़े-बड़े पंडित-पुरोहित, बड़े ज्ञानी महात्मा या तपस्वी क्यों न हों किंतु ये सब लोग मुक्ति में सहयोगी नहीं हो पाते। कारण? चूंकि वे स्वयं ही मुक्त नहीं हो पाए हैं।

अनेक जूनी भरमि आवै विणु सतिगुर मुकति न पावै।

अनेक-अनेक जन्मों तक, भटकने में ही समय बीतता रहेगा, सद्गुरु के बिना मुक्ति संभव नहीं हो पाती है।

फिरि मुकति पाए लागि चरणी सतिगुरू सबदु सुणाए।।

कहै नानकु विचारि देखहु विणु सतिगुर मुकति न पावै।।

कुल मिलाकर अध्यात्म की यात्रा का सार-संक्षेप इतना ही है कि सद्गुरु से मिलन होता है, हृदय में शिष्यत्व का भाव पैदा होता है और सद्गुरु की शरण जाकर ओंकार में डुबकी लग जाती है। बस इसी छोटी सी प्रक्रिया में संपूर्ण अध्यात्म घटित हो जाता है। सद्गुरु से मिलन महासौभाग्य की बात है और हमारे भीतर शिष्य भाव का उदय होना एक बहुत बड़ा चमत्कार है, क्योंकि यह हमारे वश में नहीं है। न तो पहली बात हमारे वश में है और न ही दूसरी बात, क्योंकि दोनों में ही हमारा अहंकार दीवार बनेगा। पूरी तरह रोड़ा लगाएगा। अटकाव पैदा करेगा। अहंकार शिष्य भाव को उमगने नहीं देगा।

तो गुरु का मिलना महासौभाग्य, शिष्य भाव का उमगना उससे भी बड़ा सौभाग्य और फिर यह स्थिति निर्मित हो पाना कि सद्गुरु जो बता रहे हैं कि ओंकार में डूबो, ध्यान समाधि में डूबो, उस दिशा में कुछ साधना हो पाए, यह सबसे बड़ा सौभाग्य है। कई लोग हैं जिनको पहला और दूसरा सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, लेकिन फिर भी तीसरा घटित नहीं हो पाता है। यह तीनों बातें एक साथ मिल पाना महानतम सौभाग्य की बात है।

सभी ग्रंथों में यही कहा गया है कि जीवन में सद्गुरु का मिल जाना, प्रभु की कृपा का प्रमाण है। फिर यह प्रभु की कृपा का प्रताप है कि मनुष्य का अहंकार उसे भ्रमित न करे और शिष्य भाव को उमगने दे, उसे सीखने के लिए तत्पर कर दे। यह प्रभु की करुणा ही है कि इन दोनों बातों के सहयोग से मनुष्य साधना में उत्सुक हो जाए और स्वयं की खोज में उसकी रुचि एवं प्यास पैदा हो जाए। इसी से प्रभु मिलन संभव है। प्रभु कृपा से गुरु मिलन होता है और फिर गुरु कृपा से प्रभु मिलन हो जाता है। यही अध्यात्म का सार है।

उपनिषद् परमात्मा की परिभाषा करते हुए कहते हैं- सत्-चित्-आनंद। इसे

समझाते हुए ओशो कहते हैं कि 'चित्त' को बीच में रखा गया है, एक तरफ सत्य है, दूसरी तरफ आनंद है। यदि मध्य को अर्थात् 'चित्त' को साध लो, तो शेष दोनों किनारे भी सध जाएंगे। चैतन्य सेतु है, 'ब्रिज' है, जीवन सरिता के दोनों तटों को जोड़ता है।

कुछ लोग सीधा-सीधा सत्य को साधने की कोशिश करते हैं, तो वे केवल बौद्धिक, दार्शनिक बन जाते हैं। कुछ लोग सीधे ही आनंद को साधने की कोशिश करते हैं। वास्तव में, पूरी दुनिया यही कोशिश कर रही है। जो लोग आध्यात्मिक नहीं है वह भी यदि परमात्मा को नहीं तो कम से कम आनंद को तो पाना चाहते ही हैं। परंतु सत्य और आनंद सीधा नहीं पाया जा सकता, उसके लिए चैतन्य को जानना होगा, तब परिणाम स्वरूप शेष दोनों भी आ जाएंगे। जैसे किसी तराजू के दो पलड़े हैं, मध्य का कांटा अगर सध गया तो तराजू संतुलित हो जाएगा।

लाओत्से ने विशेष रूप से जोर दिया है- 'द गोल्डन मीन', बुद्ध ने 'मज्झिम निकाय', मध्यमार्ग पर। इसलिए उपनिषद् के ऋषियों ने भी परमात्मा को परिभाषित करते समय सच्चिदानंद कहा और चित्त को बीच में रखा। यदि मध्य को, 'चैतन्य' को साध लो तो शेष दोनों किनारे अपने आप सध जाएंगे। चैतन्य की साधना में कुछ बातें अत्यंत महत्वपूर्ण हैं-

पहला, हम जितना दूसरों के संपर्क में आते हैं, अभिव्यक्ति करते हैं, बात-चीत करते हैं, हम उतना ही ज्यादा बहिर्मुखी होते जाते हैं। दूसरे की मौजूदगी में हमारा स्वयं के प्रति चैतन्य होना बहुत कठिन काम है। इसीलिए एकांत और मौन पर इतना जोर दिया जाता है। यथा संभव, व्यावहारिक रूप से पूर्ण एकांत तो संभव नहीं है, तो जितना हो सके अकेले और जितना हो सके मौन में रहना सीखें। व्यर्थ की बातें बंद कर दें क्योंकि वह बातें सिर्फ बातें ही नहीं हैं, उसमें हमारा समय जा रहा है, हमारी ऊर्जा जा रही है। और बातों का एक सिलसिला है, एक बात में से दूसरी बात और दूसरी में से तीसरी निकलती जाती है। हमने कुछ कहा, फिर सामने वाला कुछ कहता है। कुल मिलाकर हम परोन्मुख होते चले जाते हैं। अंतर्मुखता की सारी साधना, अंतर्यात्रा की भावना ही छूट जाती, भूल जाती है।

वह जो स्वयं के प्रति चैतन्य होना है वह नहीं हो पाता। दूसरे की मौजूदगी में हम दूसरे के प्रति जागरूक होते हैं। वही स्वभाविक है, वैसा होना भी चाहिए। दूसरे की मौजूदगी में बहुत मुश्किल है कि अपने प्रति चैतन्य रहा जा सके, क्योंकि हमारे सामाजिक नियम, मर्यादाएं, शिष्टाचार, शिक्षा और सभ्यता आदि ने हमें एक निश्चित ढंग से व्यवहार करना सिखाया है। समाज और व्यवहार, ये सब परिधि की बातें हैं और इसीलिए जब भी हम किसी दूसरे के संग संबंधित होते हैं, तब परिधि पर रह जाते हैं और केन्द्र से चूक जाते हैं।

जैसे आपको अपने पड़ोसी से मिलना हो तो आप अपने बगीचे की चारदीवारी पर पहुंचे, उस तरफ पड़ोसी खड़ा है अपने बगीचे में, इस तरफ आप खड़े हैं और बात-चीत

हो रही है। आपको अपने घर से बाहर आना पड़ा है। ठीक इसी प्रकार जब भी हम दूसरे से संबंधित होते हैं, हमें बिल्कुल परिधि पर आना पड़ता है। दूसरे को भी आना पड़ता है। वहीं परिधियों पर ही एक-दूसरे से मुलाकात होती है।

इस प्रकार हम अपने अंतर्तम में स्थित नहीं हो पाते हैं। इसलिए जो व्यक्ति बहुत वाचाल है, बोलने में कुशल है, आप पाएंगे कि ऐसे लोग बहुत झूठे और पाखंडी हो जाते हैं। 'सत्' से वह बहुत दूर निकल गए। चैतन्य से तो दूर निकले ही, परंतु सत्य से भी दूर निकल गए, बेईमान हो गए। इसलिए चाहे राजनेता हों, चाहे धर्मगुरु हों, चाहे अभिनेता हों या कोई भी जो अभिव्यक्तियां देने में कुशल हों, ऐसे लोग सदा अपनी परिधि पर ही रहेंगे और उनके जीवन में बहुत प्रगाढ़ झूठ देखने को मिलेगा। वे धीरे-धीरे पाखंडी हो जाएंगे। क्योंकि उनको हमेशा दूसरों के अनुसार दिखावा करना पड़ता है। वे अपने स्व-धर्म के अनुसार नहीं जी सकते।

जब हम दूसरों के सम्पर्क में आते हैं तो हमें उनका ख्याल रखते हुए, उनके अनुसार ही बातचीत करनी पड़ती है। उनकी अपेक्षाएं पूरी करनी पड़ती हैं। ऐसे में हम अपने प्रति ईमानदार नहीं हो सकते। दूसरा जो सुनना चाहता है, हमें वैसा ही बोलना होगा। इसीलिए राजनेता झूठे हो जाते हैं, धर्मगुरु पाखंडी हो जाते हैं और जो लोग भी बहुत मिलने-जुलने वाले अर्थात् सोशल या सामाजिक किस्म के प्राणी होते हैं, क्रमशः असत्यभाषी होते जाते हैं। उसका मुख्य कारण यही है कि उन्हें हमेशा अपनी पैरीफैरी पर, अपनी परिधि पर जीना होता है। वे कभी अपने केंद्र में स्थित नहीं होते हैं। अतः वे चैतन्य नहीं हो पाते, इसलिए वह सत्य में भी नहीं जी सकते और आनंदित भी नहीं रह सकते। तीनों ही चीजें संभव नहीं हैं- वस्तुतः यह संयुक्त त्रिवेणी है। एक है- सच्चिदानंद!

अपने भीतर यदि केंद्रस्थ होना है तो हमें इस विज्ञान को समझना होगा कि कैसे हम झूठे और पाखंडी हो जाते हैं? कैसे हम इतने बेहोश और बहिर्मुखी हो जाते हैं? उसका कारण है हमारे आस-पास के लोग, उनके प्रति हमारा बहुत ज्यादा रस और उत्सुकता। उनके साथ जब हम संपर्क साधेंगे तो हमें झूठा होना ही पड़ेगा। हम उनसे कुछ उम्मीद करते हैं कि वे हमारे साथ कैसा व्यवहार करें? उनको झूठा होना पड़ता है हमारे कारण, हमको झूठा होना पड़ता है उनके कारण। कुल मिलाकर हमने पूरी झूठी दुनिया बना ली है। असत्य के जगत में हम पहुंच गए। फिर असत् के साथ चैतन्य कैसे सध सकता है? इसलिए साधक को स्मरण रखना है कि यथा संभव एकांत, यथा संभव मौन में रहें। एक बार आप थोड़ा सा गौर करेंगे तो आप पाएंगे कि ८०-९० प्रतिशत हम जो बातें कर रहे हैं वे व्यर्थ ही हैं। यह बातें ऐसी हैं जिन्हें न भी करें तो कोई हर्ज नहीं है। सच पूछो तो उनको करने में ही हर्ज हो रहा था। यदि नहीं करेंगे तो बहुत ऊर्जा बचेगी और हमें झूठा नहीं होना पड़ेगा। हम अपनी आत्मसत्ता में, केंद्र में

जड़ें जमा पाएंगे और चैतन्य रह पाएंगे। यदि सतर्क, सचेत, जागरूक रह पाएंगे तो आनंदित और शांत भी रह पाएंगे। इसलिए जहां तक हो सके, बहिर्मुखता छोड़ें। और बर्हिमुखता सिर्फ इतनी ही नहीं कि किसी व्यक्ति से बात नहीं करनी है।

लोग कई प्रकार से बहिर्मुखता में उलझे हुए हैं। जब से मोबाईल आया है तब से पागलपन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। इंटरनेट के दीवाने रात को दो-तीन बजे तक फेसबुक पर बैठे रहते हैं। वे एक-दूसरे को जानते और पहचानते भी नहीं हैं पर फिर भी चैटिंग चल रही है, इसका कारण यही है कि हमें स्वयं में स्थित होना नहीं आता है। एकांत का रस पता ही नहीं है। बस किसी भी चीज में उलझे रहना है।

एक बार जापान के एक सज्जन मेरे पास आए थे। वे बहुत उदास, गुस्सैल, चिड़चिड़े और बहुत ही दुखी थे। वे सबको अपनी परेशानियां सुनाते रहते थे कि उनका अपनी प्रेमिका से झगड़ा हुआ, ऐसा हुआ, वैसा हुआ। रोज कहीं भी, कोई भी मिलता तो वही किस्से दोहराते थे। सुन-सुन कर सब थक गए थे और सबको लगने लगा कि इनकी प्रेमिका कितनी दुष्ट महिला है। एक दिन उन्होंने अलग से मुझसे मिलने का समय मांगा और सारा किस्सा कहा। मैंने एक सरल सा उपाय बताया कि आप उससे मिलकर, बातचीत करके, फैसला करके तय कर लो कि मित्रता रखनी है या नहीं? वरना इसे समाप्त करो।

उन्होंने बताया कि एक साल लंबा उनका प्रेम चला, वो बड़े खुशी के दिन थे, एक साल बहुत खुशी में बीता पर पिछले छः महीने से यह झगड़ा चल रहा है। मैंने कहा कि छः महीने बहुत होते हैं, एक बार मिल लीजिए और स्पष्ट बात करिए। वो कहने लगे कि मैं मिल कैसे सकता हूं? मैंने कहा, क्यों? जब आप दोनों का इतना झगड़ा होता है तो कैसे होता है? वह बोले, मैं कभी मिला नहीं हूं, उसे जानता नहीं हूं कि कौन है? मैंने कहा, इतने दिनों से जो इतनी दुखद कहानियां सुना रहे हो! वह बोले, वह तो इंटरनेट पर ही सबकुछ चलता है। चैटिंग चलती रहती है।

ऐसे कई उदाहरण हमारे आस पास हैं, जहां प्रेम भी चैटिंग में ही था। यह झगड़ा और दुख जो है, जिसके लिए आंसू बहा रहे हैं। वह भी सब चैटिंग पर है। दूसरे व्यक्ति की सही पहचान भी मालूम नहीं है और पता नहीं कि जो पहचान उसने इंटरनेट पर दे रखी है, वह भी सही है कि नहीं है।

कई बार ऐसा भी होता है स्त्री का नाम लिखकर कोई पुरुष ही झूठी चैटिंग कर रहा है। अभी यह भी नहीं पता कि वो व्यक्ति कौन है और है भी कि नहीं? क्या है? कहां है? मगर इनको सुख-दुख तो पूरा मिला। एक साल उन्होंने प्रेम का खूब रस लिया और छः महिने झगड़े करके बैलेंस कर रहे हैं।

किस-किस प्रकार की चीजों में लोग व्यस्त हैं? काल्पनिक चीजों से सावधान! अगर

हमें अपने भीतर के चैतन्य को साधना है, भीतर की शांति और आनंद में स्थित उस परमपद को पाना है, तो हमें इन चीजों से जागरूक होकर विमुख हो जाना होगा जो हमें बहिर्मुखी करती है। जितना जीवन जीने के लिए जरूरी है, बस उतना ही हम बहिर्मुखी हों, उससे ज्यादा नहीं। ताकि शेष समय, शेष ऊर्जा भीतर स्थित होने में सहायक हो सके।

इन दो बातों को स्मरण रखिए। ये दो सूत्र बहुत काम आएंगे, एकांत और मौन। इनके बिना बात बनती नहीं है। थोड़ा सा इसका आप ख्याल रखेंगे तो आपको इसके उपाय मिलने भी शुरू हो जाएंगे।

साधारणतः हम सोचते हैं कि ऐसा संभव नहीं है, कैसे हो पाएगा? लेकिन एक बार ख्याल आ जाए कि यह मेरे लिए बहुत उपयोगी है, फिर कुछ न कुछ रास्ता निकल आता है। आप पाएंगे कि बड़े आराम से हल मिल जाता है। याद रखना कोई आपको मजबूर नहीं कर रहा है बोलने के लिए। लोग अपनी बात आपको सुनाना चाहते हैं, आपसे सुनना नहीं चाहते हैं। आप कभी प्रयोग कर के देख लेना। चुपचाप किसी की बात सुन लेना तो वह बहुत ही प्रसन्न होंगे कि आपने उनकी पूरी बात सुनी।

वास्तव में, कोई किसी से कुछ नहीं पूछ रहा है, कोई किसी की सलाह नहीं मांग रहा है पर फिर भी सब अपना-अपना पराक्रम बताना चाह रहे हैं कि हमने ये किया, वो किया। लोग अपने किस्से सुनाते हैं कि देखो कैसे बड़े-बड़े दुख हम झेल रहे हैं। इसमें भी वे पराक्रम ही बता रहे हैं। ऐसा मत समझ लेना कि जितना दुख वे बता रहे हैं उतना सच में है, हमेशा बढ़ा-चढ़ा कर नमक-मिर्च लगा कर लोग बताते हैं। अच्छी बात भी बढ़ा-चढ़ा कर बता रहे हैं और बुरी भी। जब कोई कह रहा है कि बड़ा मजा आया तब बेचारे को शायद उतना मजा नहीं आया जितना वह बता रहा है।

और जब कोई कह रहा है कि भारी पीड़ा हुई, भयंकर कष्ट हुआ है, तो कष्ट भी दुगुना करके बता रहा है। बात को बड़ा कर के बताने का मजा अलग ही है। अब छोटी सी बात बताओ तो क्या मजा आएगा?

नसरुद्दीन अपने बच्चों को बता रहा था कि एक बार मैं जंगल गया, चार शेरों ने आक्रमण कर दिया और मैं था निहत्था, कुछ भी नहीं था मेरे पास। लेकिन मैंने घूंसे ताने और तड़ातड़ शेर को मारना शुरू कर दिया। दस मिनट तक गुत्थम गुत्था होता रहा, अंततः चारों शेर छोड़कर भाग गए। बड़ा बेटा करीब आठ साल का था, बाकी तो और छोटे-छोटे थे। बड़े बेटे ने कहा, पापा जहां तक मुझे याद है आपने साल भर पहले भी यह घटना सुनाई थी उस समय आपने दो शेर कहे थे। नसरुद्दीन ने कहा, बेटे, उस समय तुम भी तो छोटे थे। कहीं डर जाते इतनी भयानक बात सुन कर इसलिए मैंने कम कर के बताया था। अभी भी पूरी बात नहीं बतायी है मैंने। फिर साल दो साल बाद सुनाएंगे तो और बढ़ जाएगी बात।

एक बार और नसरुद्दीन बता रहा था कि जब मैं बहुत छोटा था, दस साल उमर थी मेरी और जब वो कहानी सुना रहा था तब साठ साल का था, तो पचास साल पहले की बात बता रहा था कि मैं दस साल का था। तब मैंने सौ फुट लंबे सांप को मारा। भयानक अजगर, सौ फीट लंबा अजगर, एक डंडा दिया और खतम हो गया। सुनने वालों को भरोसा नहीं आ रहा था कि सौ फुट लंबा अजगर! नसरुद्दीन अतिश्योक्ति तो नहीं कर रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा, नहीं, बिल्कुल नहीं। उस समय तो वह छः इंच का था लेकिन तब वो बच्चा था, चार दिन पहले ही तो अंडे में से निकला था! अगर वह इन पचास सालों में जिंदा रह पाता तो मैंने पता लगाया है कि अजगर प्रतिवर्ष दो फुट लंबा होता है। यदि मैंने उस दिन उसे नहीं मारा होता तो आज सौ फुट का हो गया होता। तो मैं आज के हिसाब से बता रहा हूं कि सौ फुट का अजगर मारा। उस समय तो केंचुआ जैसा ही था।

जब हम बहिर्मुखी होते हैं, तब हम धीरे-धीरे खिसक कर, कहां से कहां पहुंच जाते हैं। और अगर एक झूठ आप तीन-चार बार बोल लो फिर आपका सबकॉन्शेस माईण्ड उसको स्वीकार कर लेता है। जब आप पांचवी या छठवीं बार वही बात बताते हैं तो फिर ऐसा नहीं लगता कि आप झूठ बोल रहे हैं। तब आपको अपना कहना सच ही लगता है। किसी झूठ पकड़ने वाली मशीन पर भी टेस्ट किया जाए तो शायद सच ही निकले। दोहराव करने से हमारा अवचेतन सम्मोहित हो जाता है। शुरू में आपको लगेगा कि आप झूठ बोल रहे हैं, गप्प मार रहे हैं, थोड़ा बढ़ा-चढ़ा रहे हैं। लेकिन चार-पांच बार वही बात दोहराने से आप को भी लगने लगेगा कि यही बात ठीक है। ऐसा ही तो हुआ था!

इस बहिर्मुखता से सावधान! यथा संभव एकांत, यथा संभव मौन और आप पाएंगे कि सद्गुरु ने जो इशारा किया है, अपने भीतर डुबकी लगाने का, वह घटना अपने आप घटित होने लगी है। जब हमारी ऊर्जा बाहर जाएगी ही नहीं, हम उसमें रस ले ही नहीं रहे हैं, तो वह कहां जाएगी? तब वह स्वयं में स्थित होगी।

सच पूछो तो हम जिसको अंतर्यात्रा कहते हैं वह कोई यात्रा नहीं है। वह वास्तव में स्थित हो जाना ही है। बाहर जाना तो यात्रा है, भीतर जाना यात्रा नहीं है। अगर हम बाहर जाना बंद कर दें तो हम स्वयं में हैं ही। कुछ अन्य उपाय नहीं करना है। केवल इस छोटी सी बात से ही हम अपने भीतर, अपने सेंटर पर स्थित हो जाते हैं। सदगुरु के प्रति समर्पण भाव आत्मस्थित होने में बहुत सहयोगी है। आओ, मिलकर यह गीत गाएं-

जय ओशो हे प्यारे गुरु! वाहेगुरु श्री वाहेगुरु, महिमा क्या गुणगान करूं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु। गूंजा क्या ओंकारा, भीतर झरे उजाला, हरि सुमिरन में ध्यान धरूँ, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु। शिष्यों के तुम सहारे हो, हर क्षण मेरा संवारे हो, शुभ चरणों मे शीश धरूं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु। जय ओशो हे प्यारे गुरु!जय ओशो हे प्यारे गुरु!

सारे जग में देख लिया

रैणि सबाई जलि मुई कंत न लाइओ भाउ ।।
नानक सुखि वसनि सुहागणी जिन पिआरा पुरखु हरि राउ ।।
सभु जगु फिरि मैं देखिआ हरि इको दाता ।।
उपाए कितै न पाईऐ हरि करम बिधाता ।।
गुर सबदी हरि मनि वसै हरि सहजे जाता ।।
अंदरहु तृसना अगनि बुझी हरि अंमृत सरि नाता ।।
वडी वडिआई वडे की गुरमुखि बोलाता ।।

जिस जीव-स्त्री ने पति-प्रभु के साथ नेह नहीं किया, वह तमाम जीवन रूपी रात्रि में विरह में जलती हुई मृत्यु को प्राप्त हुई। लेकिन हे नानक, जिन जीव-स्त्रियों का सच्चा प्यार अकालपुरुष से है, वे सुखपूर्वक शयन करती हैं।। मैंने समस्त जगत छानबीन कर देख लिया है कि परमात्मा ही सब जीवों का दाता है, जीवों को कर्मों की स्थिति के अनुसार जन्म देनेवाला प्रभु किसी चतुराई द्वारा प्राप्त नहीं होता। वह प्रभु केवल गुरु के ज्ञान द्वारा हृदय में टिकता है और सहज रूप में पहचाना जा सकता है। जो मनुष्य प्रभु के नाम-अमृत के सरोवर में स्नान करता है, उसके भीतर से तृष्णा की अग्नि बुझ जाती है। यह उस महान प्रभु की ही महानता है कि वह जीव से गुरु के द्वारा अपना गुणगान कराता है।।

सभी मित्रों को नमस्कार।

आज के इस सत्र में आप सब का स्वागत। परमात्मा को पति और जीवात्मा को प्रेयसी के रूप में उपमा देते हुए कहते हैं गुरु नानक देव जी–

रैणि सबाई जलि मुई कंत न लाइओ भाउ।।

जिसने अपने उस प्रभु प्रेमी के संग प्रीति का नाता नहीं जोड़ा है, जीवात्मा रूपी स्त्री व्यर्थ ही इस जीवन अग्नि में जलती है, मरती है। **रैणि सबाई जलि मुई कंत न लाइओ भाउ।।** उसका जीवन उस रात्रि के समान है जिसमें प्रिय से मिलन नहीं हुआ है।

नानक सुखि वसनि सुहागणी जिन पिआरा पुरखु हरि राउ।।

कहते हैं नानक कि केवल उन्हीं जीवात्माओं को सुख पूर्वक जीवन वहन करने का अवसर मिलता है और आनंद मिलता है, जिनका सच्चा प्यार उस अकाल पुरुष से है। जिन्होंने शाश्वत से नाता जोड़ लिया है। क्षणभंगुर से नेह लगाकर भला सुख कैसे संभव है?

सभु जगु फिरि मैं देखिआ हरि इको दाता।।

कहते हैं, मैंने समस्त जगत में छान-बीन कर के देख लिया, सब जगह घूम-फिर कर तलाश कर लिया है– 'हरि एको दाता।' एक परमात्मा ही सब जीवात्माओं को देने वाला है। वही असली दाता है। हमारे भीतर जो चैतन्य है उसका मूल स्रोत वही है। हम उससे भिन्न और पृथक नहीं है।

उपाए कितै न पाईऐ हरि करम बिधाता।।

और हम कितने ही उपाय करें, कितनी ही चतुराई करें, चालाकी करें, उससे बात नहीं बनेगी। हमारे भीतर जो भावना है, जो विचार है, जो कर्म है उनके अनुसार ही वह विधाता मिलता है। परमात्मा सब को देने वाला है लेकिन नियमानुसार जिसके जैसे कर्म, विचार, भाव इत्यादि होंगे उसकी उसी पात्रता के अनुसार उसे मिलेगा। किसी चतुराई से नहीं, किसी होशियारी से नहीं। साधारण जिंदगी में हम संविधान को, नियम कानून को, पुलिस, कोर्ट, कचहरी को धोखा दे सकते हैं, रिश्वत दे सकते हैं।

कोई व्यक्ति मुकद्दमा जीत जाता है उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि उसका वकील ज्यादा होशियार था, ज्यादा चालाक था। कोई हार जाता है उससे यह सिद्ध नहीं होता कि वास्तव में वह अपराधी है। इतना ही पता चलता है कि इसका वकील कमजोर पड़ गया, इसके पास तर्क नहीं थे। यह ठीक से प्रमाण प्रस्तुत न कर सका।

मैंने सुना है, एक बहुत प्रसिद्ध ईमानदार जज था। उसने न्यायालय में आकर एक दिन घोषणा की कि आज मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं क्योंकि कल रात एक व्यक्ति आया और मुझे पचास हजार रुपए दे गया। तो मैंने मन ही मन सोच लिया था कि उसके पक्ष में निर्णय करना है। लेकिन सुबह नयी मुसीबत खड़ी हो गयी। विरोधी पक्ष का व्यक्ति भी आया और वह 75 हजार रुपए मुझे दे गया है। उसने भी बहुत विनती की कि मेरे पक्ष में निर्णय कर दीजिए। आप सब जानते हैं कि मैं ईमानदार आदमी हूं। तो जो सज्जन पचास हजार रूपए दे गए थे कृपया आएं और अपना पैसा ले जाएं। ताकि मैं अपना फैसला लिख सकूं।

यह है निष्ठा? आज परिभाषा बदल गयी है ईमानदार और बेईमानी की। आज जो पैसा लेकर काम पूरा कर दे वो ही ईमानदार है, जो पैसा लेकर भी काम न करे वो बेईमान है। परिभाषा बदल गयी है। साधारण जिंदगी में हम धोखा-धड़ी कर सकते हैं। क्योंकि जिनके साथ हम डील कर रहे हैं वो भी हमारे साथ धोखा-धड़ी करने वाले लोग ही हैं। लेकिन इस अस्तित्व के नियमों के साथ होशियारी नहीं हो सकती। अस्तित्व में यह बात महत्वपूर्ण है कि परमात्मा सब का साक्षी, सब का दृष्टा है। कुछ भी उससे छुपा हुआ नहीं है। अर्थात् नियम इतना मजबूत है कि उसके विपरीत कुछ हो ही नहीं सकता। जो कुछ भी होगा नियमानुसार ही होगा।

वो जो लोग मंदिर, मस्जिद, चर्च और गुरुद्वारों में मत्था टेक रहे हैं और प्रार्थनाएं कर रहे हैं वो जिंदगी के साधारण गणित को ही वहां भी लागू करने की कोशिश कर रहे हैं कि प्रभु को भी फुसला लें। लोग यहां तक कहते सुने जाते हैं कि हे भगवान अगर ऐसा-ऐसा कर दो तो फिर हम इतना प्रसाद चढ़ाएंगे। मंदिर बनवा देंगे, दान दे देंगे। ये कर देंगे, वो कर देंगे। यह वही लोग हैं जो न्यायाधीश के पास रिश्वत लेकर पहुंचते हैं। इसीलिए धार्मिक देशों में घूसखोरी कभी बंद नहीं हो सकती, हो ही नहीं सकती।

जब मैं कई जगहों पर सत्संग करने जाता हूं तो कई लोग मुझसे यह सवाल पूछते हैं कि हमारा देश इतना धार्मिक है फिर भी यहां पर इतना भष्टाचार क्यों है? भ्रष्टाचार हमारे खून में समाया है। हजारों साल से ये धार्मिक लोग परमात्मा तक को भ्रष्टाचार हेतु उकसा रहे हैं। ये बेईमान और पाखंडी लोग ईश्वर को फुसला रहे हैं कि पांच नारियल चढ़ाएंगे। बच्चे भी सीख जाते हैं, वे स्कूल जा रहे हैं परीक्षा देने और रास्ते में मंदिर में रुक जाते हैं, जिस मंदिर को आज तक उन्होंने देखा भी नहीं था, वहां वे प्रार्थना कर रहे हैं कि हे भगवान! पेपर सरल आए, इतने नंबर मिल जाएं फिर मैं ऐसा-ऐसा करूंगा। होशियार लोगों की होशियारी यही होती है कि बाद में यदि वे संयोग से पास हो भी गए तो अपना वादा भूल जाते हैं। इतनी बड़ी दुनिया में भगवान किस-किस की बात याद रखेगा?

मैंने सुना है एक बार बहुत तेज आंधी-तूफान में एक नाव डूब रही थी। नसरुद्दीन उसी नाव में था। लोग चीख पुकार रहे थे अपने-अपने भगवानों को, कोई अल्लाह को, कोई गॉड को कि बचा लो नाव और कह रहे हैं कि अगर बच गए तो यह दान करेंगे, कोई कह रहा था कि मंदिर ही बनवा दूंगा, कोई कह रहा था कि फलां शास्त्र छपवा के मुफ्त बांटूंगा। नसरुद्दीन चुपचाप बैठा था। वो अपनी दूरबीन से दृश्य देखने का मजा ले रहा था। लोग भी थोड़े हैरान थे कि इसको क्या हो गया है? तभी नसरुद्दीन जोर से चिल्लाया अरे भाईयों-बहनों चुप! किनारा पास ही नजर आ रहा है। तुम लोग कहीं औकात से ज्यादा, बड़े-बड़े वायदे मत कर देना, नहीं तो बुरे फंसोगे। नाव किनारे लगने ही वाली है। नसरुद्दीन ने कहा, एक बार पहले भी मैं ऐसी मुसीबत में फंस चुका हूं, इसलिए अनुभवी होने के कारण ही चुपचाप बैठा रहा।

एक बार ऐसे ही मेरी नाव डूब रही थी और मैंने कह दिया था कि हे परवरदिगार! मेरी जो नयी हवेली बनी है, वह बहुत कीमती है, मैं पूरी हवेली बेच दूंगा और सारे पैसे

गरीबों में दान कर दूंगा। आधे मस्जिद में दे दूंगा, आधे गरीबों में बांट दूंगा। और नसरुद्दीन ने कहा, बदकिस्मती से मेरी नाव बच गयी। मुझे इतना रोना आया कि हे प्रभु मैं लुट गया, बुरी तरह लुट गया हूं। गांव के सब लोगों ने सुन लिया था, वे भी नाव पर मौजूद थे। लेकिन मैं बहुत होशियार हूं, एल.एल.बी में बहुत साल पढ़ने की कोशिश की थी, काफी होशियारी आ ही चुकी थी, माना की पास होकर डिग्री न ले पाया, पर होशियारी जरूर सीख ली। मैंने एक चाल चली।

मैंने अगले दिन गांव के सारे लोगों को बुलाया, मस्जिद के मौलवी को बुला लिया और कहा कि आज हवेली नीलाम करनी है पर नीलामी की कुछ शर्तें हैं और जितने भी पैसे आएंगे आधे-आधे दे देंगे। आधा मस्जिद में और आधा गांव के सारे लोगों में बांट देंगे। बस एक शर्त है कि मेरी बिल्ली को इसी हवेली में रहने की आदत है तो वह इस घर को छोड़कर कहीं नहीं जाएगी।

तो जिस व्यक्ति को भी हवेली खरीदनी है उसको बिल्ली भी लेनी पड़ेगी ये शर्त है। आप लोगों को मंजूर है? सभी लोगों ने कहा कि हां मंजूर है। मौलवी ने भी कहा कि इसमें क्या परेशानी है, जो हवेली लेगा वो बिल्ली भी रख लेगा। नसरुद्दीन ने कहा ठीक, मेरी बिल्ली बहुत कीमती है आप लोग जानते हैं कि मैं इसे अपने प्राणों से भी ज्यादा प्यार करता हूं। इसकी कीमत है दस करोड़ रुपया और हवेली की कीमत है एक रुपया।

यहां से नीलामी शुरू होती है और आगे बढ़ेगी तो ठीक। तो हवेली की कीमत तो फिक्स है एक रुपया। अब बताओ बिल्ली की कीमत कितनी लगाते हो आगे? सबको पता था कि वो हवेली कम से कम पच्चीस-तीस करोड़ की लागत से बनी है। एकदम नीलामी शुरू हो गयी। हवेली तो एक रुपए की ही थी पर साथ में बिल्ली की कीमत अदा करके सौदा पक्का हो गया। अब हवेली की कीमत यानि उस एक रुपए में से मैंने आठ आना मौलवी को पकड़ाया बाकी के आठ आने गांव में सब लोगों को दे दिए। तो नसरुद्दीन ने कहा भाईयों मैं तो अपनी होशियारी से बच गया था पर पता नहीं आप लोग इतने होशियार हैं कि नहीं? इसलिए मैं दूरबीन से देख रहा हूं कि जमीन है कितनी दूर? नहीं तो बड़े-बड़े वायदे कर के बुरी तरह फंसोगे। फिर तुम पछताओगे कि हम बच क्यों गए? इससे अच्छा तो मर ही जाते।

अस्तित्व के नियमों के साथ खिलवाड़ नहीं हो सकता। झूठे हैं ये प्रार्थना करने वाले लोग, झूठे हैं ये वायदे करने वाले लोग और इसीलिए धार्मिक देशों में भ्रष्टाचार समाप्त नहीं हो सकता। वह रग-रग में समाया हुआ है, एक कंडिशनिंग हो गई है। जहां घूस देकर भगवान को मना लिया जाता है, वहां पर सरकारी अफसर की तो बात की क्या है?

उपाए कितै न पाईऐ हरि करम बिधाता।।

इस प्रकार के होशियारी पूर्ण उपायों से हम न पा सकेंगे जो हम पाना चाह रहे हैं। वहां विधान है, 'हरि करम विधाता' कर्मों का नियम है। उसके अनुसार चीजें होंगी और जब मैं कहता हूं कर्म, तो उसमें सिर्फ एक्शन या क्रिया ही नहीं आते बल्कि इंटेंशन या भाव भी शामिल हैं। कई लोग आकर कहते हैं हमारे कर्म तो बड़े अच्छे हैं फिर भी हमें ठीक

फल नहीं मिलता। मैं कहता हूं जरा गौर से देखो सिर्फ ऊपर-ऊपर का एक्शन नहीं, इंटेंशन भी देखो, क्योंकि अस्तित्व की नजर बहुत तेज है। ऊपर-ऊपर के स्थूल कर्म ही नहीं देख रहा है वो, बल्कि भीतर तुम्हारी क्या भावनाएं हैं? क्या विचार हैं? तुम वाकई में चाहते क्या हो? वह उसे भी देख रहा है।

हम पुलिस को, कानून को, कोर्ट कचहरी को धोखा दे सकते हैं। मैं बैठा-बैठा किसी की हत्या का विचार कर रहा हूं तो मुझे कोई पुलिस नहीं पकड़ सकती, मैंने अभी हत्या की नहीं है। भीतर ही भीतर मैं केवल विचार कर रहा हूं, दुर्भावना से भरा हूं और उस आदमी का गला दबा देना चाहता हूं। कल्पना में मैंने उसे गोली मार दी लेकिन इसमें मुझपर कोई एक्शन नहीं लिया जा सकता क्योंकि मैंने कोई एक्शन अभी किया ही नहीं है। केवल ख्याली पुलाव पका रहा हूं।

पर अस्तित्व की नजर बहुत सूक्ष्म है। उसे केवल एक्शन नहीं, बड़े सूक्ष्म इंटेंशन, हमारे इरादे, हमारे भाव और हमारे विचार, हमारे संकल्प भी दिखाई देते हैं और उनके ही परिणाम आते हैं। तो वहां धोखा-धड़ी नहीं हो सकती। इसलिए यह जो कर्म का विधान है इसको अच्छे से समझना। इसको केवल स्थूल कर्म तक सीमित मत रखना। दुनिया में बहुत लोग शिकायत करते मिल जाएंगे कि हमने कोई बुरा कर्म नहीं किया फिर भी हमें बुरे फल मिल रहे। गौर से सोचो, किसी तल पर तो बुराई की हुई है, इसलिए बुरे फल आ रहे हैं।

जीवन तो नियम से चल रहा है। आप यह नहीं कह सकते, हमने तो बहुत बढ़िया जाति के अंगूर के बीज बोए थे और न जाने क्या हो गया? अब उस पर कड़वे करेले लग रहे हैं। ऐसा हो सकता है क्या? जीवन एक नियम से चल रहा है। ऐसा नहीं हो सकता। हमें पहचानने में भूल हो गयी होगी, हम कुछ गलत समझे होंगे। बीज होते भी बहुत छोटे हैं। जब मैं कह रहा हूं भावना, विचार, इरादे, संकल्प इसका मतलब बीज, अत्यंत सूक्ष्म। जिन्हें बाहर से कोई नहीं जान सकता। यहां तक कि कई बार हम स्वयं भी धोखे में हो सकते हैं। लेकिन अस्तित्व के नजरों से कुछ भी नहीं बचता है।

उपाए कितै न पाईऐ हरि करम बिधाता।।

गुर सबदी हरि मनि वसै हरि सहजे जाता।।

गुरु के बताए शबद में डुबकी लगाने से, सुरति में डूबने से हरि मन में बस जाता है। 'हरि मन बसे हरि सहजे जाता' सहज रूप से ही हरि हमारे भीतर बस जाते हैं। जीवात्मा और परमात्मा का एकात्म हो जाता है। परम मिलन घटित हो जाता है। परम योग, इसीलिए आध्यात्म की विधि को योग कहा जाता है। और यह घटना कहां घटती है? 'मन बसे अपने भीतर।' अपने मन मंदिर में ही यह घटना घटती है। और सारे भेद भी समाप्त हो जाते हैं। आत्मा-परमात्मा के इस मिलन की प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण सोपान क्या है?

'गुर शबद', गुरु के शब्द दो प्रकार के हैं। एक- गुरु के मुखारविंद से कहे गए, जो वाणी में व्यक्त किया गया है, जो मौखिक उपदेश है, जो साधना की विधि समझायी गई है, वह शबद है और दूसरा- गुरु शबद का अर्थ है कि गुरु के भीतर जो ओंकार शबद गूंज रहा है। गुरू ने शिष्य को भी उस शबद के प्रति जगाया है कि अपने भीतर उसे सुनो। अतः

वह भीतर का शबद ही गुरु के द्वारा दिया गया शबद या नाम-दान है। तो 'गुरु शब्द' के दो अर्थ हुए, दोनों सार्थक हैं। वाणी में बोले गए उपदेशों से जीवन जीने का ढंग सिखाया और स्वयं के भीतर गूंज रहे अनहद नाद की तरफ भी ईशारा किया कि उसे सुनो। उस अनहद शबद को सुनकर ही वह परम घटना घटती है।

गुर सबदीं हरि मनि वसै हरि सहजे जाता।।

आत्मा-परमात्मा और गुरु इन तीनों में क्या ताल-मेल है? इसको खूब अच्छे से समझ लेना। महावीर का वचन है- आत्मा ही परमात्मा है। परम यानी द अल्टीमेट, आत्मा यानी सेल्फ। हरि, ईश्वर, प्रभु या परमात्मा उस आत्मा का ही शुद्धतम रूप है। जिसने इस परम रूप से परिचय कराया और बताया कि ओंकार की डोर पकड़ कर, अपने ही भीतर डूबकर उस परम आत्मा को पाना है, वह गुरू है। गुरु ने स्वयं जाना और यही उसने दूसरों को भी बताया। तो तीन बातें गुरु के माध्यम से हमने सीखीं। आत्म स्मरण सीखा, गुरु के प्रति श्रद्धा जागी, उसकी बातों पर भरोसा आया, तब हमने साक्षी भाव में जीना सीखा और आत्म स्मरण करते-करते हमने पाया कि आत्मा ही परमात्मा है। और वह आत्म सुमिरन ही प्रभु सुमिरन बन गया, हरि सुमिरन बन गया। तो इन तीन बातों में कोई बहुत बड़ा अंतराल नहीं है। देयर इज नो गैप।

जी, ए, पी ये तीन अक्षर याद रखना 'गैप' के- जी फॉर गुरु, ए फॉर आत्मा, पी फॉर परमात्मा। चाहे तुम आत्म स्मरण करो, चाहे गुरु स्मरण करो, चाहे हरि स्मरण करो। अंततः तुम पाओगे एक अवेयरनेस तुम्हारे भीतर प्रगाढ़ हो गयी है। किस बहाने से किया? कैसे किया? प्रथम बिंदु क्या था? इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। किसी को आत्म सुमिरन अच्छा लगता है, ठीक है, वहां से शुरू करो। जो लोग अंतर्मुखी हैं उन्हें आत्म सुमिरन अच्छा लगेगा। वे एक दिन महावीर की तरह कहेंगे आत्मा ही परमात्मा है। जो बर्हिमुखी हैं वो दो प्रकार के हो सकते हैं। बर्हिमुखी साकार वाले और बर्हिमुखी निराकार वाले। जो बर्हिमुखी साकार वाले हैं वे गुरु के प्रति सुमिरन भाव से भरेंगे। धीरे-धीरे वे पाएंगे कि 'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वरः', गुरु ही प्रभु है।

कुछ लोग हैं बर्हिमुखी किंतु निराकार के प्रति उनका रूझान ज्यादा है। तो वह भी ठीक हैं, इस सारे ब्रह्माण्ड में जो अरूप और निराकार जीवन ऊर्जा व्याप्त है उसके सुमिरन से भर जाओ। अंततः तुम पाओगे तुम एक ही बात पर पहुंचे हो। कहीं से भी चलो, तुम पाओगे कि एक लविंग एवेयरनेस या प्रेमल जागरूकता निरंतर बनी हुई है। और अंततः इन तीनों में भेद नहीं रह जाता। गुरु में और ईश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता। और स्वयं और ईश्वर में भी भेद नहीं रह जाता। तभी तो ऋषि कहते हैं, अहम् ब्रह्मास्मि।

कबीर साहब का वचन है कि जो गुरु और प्रभु में भेद मानते हैं ते नर कहिए अंध। वो लोग अंधे हैं। गुरु प्रभु में कोई भेद नहीं। हमारे रूझान की बात है, हमें क्या आसान पड़ता है? क्या सुगम लगता है? हम वहां से शुरू कर लें। अंत में मंजिल एक ही है जहां हम सब पहुंचेंगे। ध्यानी भी वहीं पहुंच जाएंगे, श्रद्धालु भी वहीं पहुंच जाएंगे और भक्त भी

वहीं पहुंच जाएंगे। ध्यानी अर्थात् जो भीतर डूबते हैं, श्रद्धालु जो गुरु चरणों में शीश नवाते हैं, भक्त जो सीधे ही निराकार प्रभु के प्रेम में डूब गए। अंततः कोई भेद नहीं रह जाएगा। यह संपूर्ण अस्तित्व एक ही है। और इसलिए यह बात ठीक है।

'गुरु शब्दी हरि मनि बसे हरि सहजे जाता।'

वह सहज प्रभु मन के भीतर ही बसा हुआ है और गुरु की कृपा से उनके बताए गए शब्द में डूबकर यह परम घटना घटती है। 'अंदरहू तृष्णा अग्नि बुझी।' शबद के साथ जुड़कर भीतर की जो तृष्णा थी, अग्नि थी वह बुझ गयी है। 'हरि अमृत सरिनाता।' भीतर के नाम रूपी अमृत के सरोवर में जैसे स्नान कर लिया हो। सिक्खों का मुख्य तीर्थस्थल हरिमंदर साहिब दरबार जहां है, उस शहर का नाम है 'अमृतसर' यानि अमृत का सरोवर। निश्चित ही बड़ा प्यारा नाम है, परंतु याद रखना कि यह अमृत सरोवर होता कहां है? यह अपने ही मन के भीतर होता है। यह कहीं बाहर नहीं है, असली तीर्थ और असली अमृतसर तो भीतर है।

अंदरहु तृसना अगनि बुझी हरि अंमृत सरि नाता।।
वडी वडिआई वडे की गुरमुखि बोलाता।।

कहते हैं उस प्रभु की महानता, उसकी महिमा, उसका महात्म्य है कि उसने जीवात्मा को गुरु से मिलाया और गुरु ने हरि का गुणगान सिखाया, ध्यान में डूबना सिखाया, हरि स्मरण सिखाया। अलग-अलग समय में भांति-भांति के लोग हुए हैं, अलग परिस्थितियां थी, ऐसे में अलग-अलग गुरूओं और संतजनों ने उस समय के अनुसार ही यथोचित शिक्षा दी। उन्होंने अपने उपदेशों और विधियों में उस समय के लोगों की मानसिकता और रूझान का भी ध्यान रखा। जैसे एक वैद्य बीमारी और मरीज दोनों को ध्यान में रखकर बेहतर औषधि देता है।

आज से ढाई हजार साल पहले बुद्ध के शिष्यों ने कहा- बुद्धम् शरणं गच्छामि, धम्मम् शरणं गच्छामि, संघम् शरणं गच्छामि। महावीर के शिष्यों ने पंच नमोकार मंत्र कहा- अरिहंते शरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि। कृष्ण बुद्ध से ढाई हजार साल पहले हुए, उस समय लोग और भी ज्यादा सरल थे, भावुक थे, इसलिए कृष्ण सीधा ही कह सकते थे- मामेकं शरणं ब्रज; मुझ एक की शरण में आओ। बुद्ध ऐसा नहीं कह सके, महावीर ऐसा नहीं कह सके। उनके जमाने में बात बदल गयी। ढाई हजार साल बीत चुके हैं। अब लोग लड़ने खड़े हो जाएंगे कि आप हो कौन शरण में लेने वाले? महावीर नहीं कह रहे हैं कि मेरी शरण में आओ। वो नहीं कहेंगे क्योंकि आज अगर वो ऐसा कहेंगे तो लोग समझेंगे कि बड़े अहंकारी हैं। अपनी शरण में बुला रहे हैं। कृष्ण से किसी ने ऐसा नहीं कहा था। समय बदल गया, परिस्थिति बदल गयी और ढाई हजार साल बीत गए हैं।

कृष्णमूर्ति का जमाना आ गया। अब यदि शिष्य स्वयं भी कहे कि आपकी शरण में आता हूं तो वे इन्कार करेंगे कि नहीं कोई जरूरत नहीं है। आज यही भाषा काम करेगी। दिस इज द रेमेडी फॉर द प्रेजेंट। आज यदि बुद्ध चुपचाप बैठे रहें और शिष्य कहते रहें बुद्धम शरणं गच्छामि तो इसी पर बवाल खड़ा हो जाएगा, अच्छा! ये स्वयं तो चुपचाप बैठे हैं, मौनं सम्मति लक्षणं। यह तो चाह ही रहे थे कि हम लोग आएं इनकी शरण में। महावीर

आंख बंद किए खड़े हैं और लोग झुके जा रहे हैं।

'ऐसो पंच नमुक्कारो... ऐसा यह पंच नामोकार है कि सारे पाप नष्ट कर देता है।

पर आज लोग कहेंगे कि ये चुपचाप खड़े क्यों हैं, बहरे हो गए हैं क्या? कुछ बोलते क्यों नहीं? आधुनिक युग में वही गुरु कार्य कर सकता है जो कहेगा कि समर्पण की जरूरत नहीं, श्रद्धा की जरूरत नहीं है। आज समय बदल गया है, मनःस्थिति बदल गयी है। आगे आने वाले ढाई हजार साल में, मैं कल्पना करता हूं कि गुरु कहेंगे अपने शिश्यों से कि शिष्यं शरणं गच्छामि। तार्किक रूप से सही भी है, यदि आप ग्राफ बनाओ तो कृष्ण कह रहे थे कि मामेकं शरणं ब्रज। बुद्ध महावीर के शिष्य कह रहे थे कि हम आपकी शरण में आते हैं। कृष्णमूर्ति कह रहे हैं नहीं कोई शरण-वरण की जरूरत नहीं, अपने भीतर डूबो।

अब अगला कदम यही होगा कि सद्गुरु ढूंढते फिरेंगे शिष्यों को और जहां कोई मिल जाए तो वह कहेंगे कि शिष्यं शरणं गच्छामि अर्थात् शब्दों के भीतर मत जाना, तुम अपने भीतर टटोलो, तुम्हें क्या उचित लगता है? तुम्हारा रूझान क्या है? जब मैं कह रहा हूं एक खास समय तो इसका मतलब ये नहीं है कि उस समय सभी लोग एक जैसे ही हैं।

एक साधारण औसत बात कह रहा हूं। कृष्ण के जमाने में भी सभी प्रकार के लोग थे। दुर्योधन भी मौजूद था वह तो नहीं गया शरण में। बुद्ध, महावीर के शरण में भी सब नहीं गए। तो प्रत्येक समय में सब प्रकार के लोग रहे हैं। लेकिन एक साधारण मानसिकता के अनुसार, 60-70 प्रतिशत लोगों के अनुसार ही, उनका बहुमत देखकर ही बात कहनी पड़ती है। आप अपने भीतर टटोलना कि आप किस प्रकार के हो? और जो आपको रूचिकर लगे वही आपके लिए ठीक है। अन्य कोई कसौटी नहीं है। आपसे ज्यादा कोई भी कसौटी नहीं है आपके लिए। तो मैंने आपके लिए सब प्रकार की बातें कहीं। जहां से भी सुमिरन सधे, साधो। अंत में आप पाओगे कि एक ही मंजिल है जहां हम सब पहुंच गए।

आओ, इस प्यारे गीत के संग आज की चर्चा का समापन करें-

महिमा क्या गुणगान करूं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु
अब चलें न, सब है ठहरा, अचल पुरूष है गहरा
मौन रहूॅं बस मौन रहूॅं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु
जीवन बनाया नर्तन, महकाया सारा उपवन।
हर क्षण आनंदमग्न जिऊं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु।।
किया भ्रांतियों का भंजन, दिखला दिया निरंजन।
शत-शत वंदन तुझे करूं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु।।
करके अहम् का खंडन, बंजर में खिलवाये सुमन।
ब्रह्म-भ्रमर गुंजन को सुनूं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु।।
जब ओशो से लगी लगन, प्रभु बन गया है प्रियतम।
सांस-सांस हरि को सिमरूं, वाहेगुरु श्री वाहेगुरु।।

गुरु से मिलकर मन ठहर गया

इहु मनूआ खिनु न टिकै बहु रंगी दह दह दिसि चलि चलि हाढे।
गुरु पूरा पाइआ वडभागी हरि मंत्रु दीआ मनु ठाढे ।।1।।
राम हम सतिगुर लाले कांढे ।।1।।रहाउ।।
हमरै मसतकि दागु दगाना हम करज गुरु बहु साढे।
परउपकारु पुंनु बहु कीआ भउ दुतरु तारि पराढे ।।2।।
जिन कउ प्रीति रिदै हरि नाही तिन कूरे गाढन गाढे।
जिउ पाणी कागदु बिनसि जात है तिउ मनमुख गरभि गलाढे ।।3।।
हम जानिआ कछू न जानह आगै जिउ हरि राखै तिउ ठाढे।
हम भूल चूक गुर किरपा धारहु जन नानक कुतरे काढे ।।4।।

(मेरा) यह मूर्ख मन, बहुत से रंग-तमाशों में (फँस कर) लेशमात्र भी नहीं टिकता, दसों दिशाओं में दौड़-दौड़कर भटकता है। (पर अब) सौभाग्यवश (मुझे) पूर्णगुरु मिल गया है, उसने प्रभु (नाम-स्मरण का) उपदेश दिया है (जिससे) मन शान्त हो गया है ।।1।। हे राम! मैं गुरु का ग़ुलाम कहलाता हूँ ।।1।।रहाउ।। पूर्णगुरु ने मेरा बहुत परोपकार किया है, मुझे उस संसार-समुद्र से पार करा दिया है जिससे पार उतरना बहुत कठिन था। गुरु के उपकार का यह बहुत कर्ज़ा एकत्रित हो गया है मैं यह कर्ज़ा उतार नहीं सकता। इसलिए गुरु का ग़ुलाम बन गया हूँ, और मेरे माथे पर (ग़ुलामी का) निशान बन गया है ।।2।। जिन मनुष्यों के हृदय में परमात्मा का प्यार नहीं होता (यदि वे बाहर लोक व्यवहार के रूप में प्रेमका कोई दिखावा करते हैं, तो) वे झूठी योजनाएँ ही बनाते हैं। जैसे पानी में कागज़ गल जाता है, वैसे स्वेच्छाचारी मनुष्य (प्रभु-प्रीति से खाली होने के कारण) योनियों के चक्र में (अपने आत्मिक जीवन से) गल जाते हैं ।।3।। (पर हम जीवों की कोई चतुराई काम नहीं कर सकती) न (अब तक) हम जीव कोई चतुराई कर सके हैं, न आगे ही कर सकेंगे। जिस हालत में परमात्मा हमें रखता है, उसी हालत में हम टिकते हैं। हे दास नानक! (उसके द्वार पर प्रार्थना ही शोभा पाती है। प्रार्थना करो और कहो) हे गुरु, हमारी ग़ल्तियों की उपेक्षा कर कृपा करो, हम आपके द्वार पर कुत्ते कहलाते हैं ।।4।।

प्यारे मित्रों नमस्कार।

इहु मनूआ खिनु न टिकै, कहते हैं यह मन एक क्षण भी कहीं नहीं टिकता है। सभी दिशाओं में यहां-वहां भागता है। बड़ा भाग्यशाली है वह जिसने गुरु को पा लिया है। हरि मंत्रु दीआ मनु ठाढ़े, गुरु ने ओंकार रूपी जो मंत्र बताया है, उसे सुनकर मन ठहर गया है, स्थिर हो गया है। राम हम सतिगुर लाले कांढ़े। हे प्रभु, हम उस गुरु पर न्यौछावर हैं, हम गुरु के गुलाम हो गए, हम उसके प्रति समर्पित हो गए हैं, हमने अपने मस्तक पर उनका निशान धारण कर लिया है। परउपकारु पुंनु बहु कीआ, भउ दुतरु तारि पराढे। कहते हैं दुनिया में लोग बहुत परोपकारी हैं, सेवा का कार्य करते हैं किन्तु भीतर क्या है? ऊपर से तो प्रेम दिखता है किन्तु भीतर हृदय में प्रीति नहीं होती और तब उनके सारे परोपकार भी व्यर्थ हो जाते हैं।

जिउ पाणी कागदु बिनसि जात है, तिउ मनमुख गरभि गलाढ़े। हम जानिआ कछू न जानह आगै जिउ हरि राखै तिउ ठाढ़े। कहते हैं हमें कुछ आता नहीं, हमें तो कुछ पता ही नहीं, हम तो अज्ञानी हैं। हम तो गुलाम हो गए हैं, अब हमारी कुछ इच्छा नहीं है। जो प्रभु की आज्ञा है, जो उसका आदेश है, हम उसके ही दास हैं, जो हम कर रहे हैं वह उसकी अनुमति से ही हो रहा है, उसमें हमारी अपनी कोई इच्छा नहीं है। हम भूल चूक गुर किरपा धारहु जन नानक कुतरे काढे। नानक कहते हैं कि हमसे कभी भूल-चूक भी हो जाती है किन्तु यह गुरु कृपा है कि गुरू उन भूलों की उपेक्षा कर देते हैं। नानक कहते हैं कि हम तो गुरू के द्वार पर बैठे कुत्ते जैसे हैं। जन नानक कुतरे काढ़े। हम तो प्रभु के द्वार के कुत्ते हैं।

कोई अहंकार नहीं बचा, विनम्रता घटित हुई है। घमण्ड नहीं, अभिमान नहीं है। जो इस प्रकार शून्य हो गया, सब भांति मिट गया, खो गया हो, सच पूछो तो वही भक्त हो पाता है। जहां तक हमारा अहंकार है, अभिमान है, हम स्वयं को कुछ समझते हैं कि मैं यह हूं कि मैं वह हूं, तब तक परमात्मा के संग एक दूरी बनी रहती है, दीवार खड़ी रहती है। वह दीवार हमारे अहंकार की दीवार है। जैसे ही यह दीवार हटती है, वहां भक्त और भगवान अलग-अलग नहीं रहते, वह एक ही हो जाते हैं। एक तो सदा-सदा से ही थे परंतु अहंकार की भ्रांति के कारण दूरी आ जाती है। यह भ्रांति कैसे पैदा होती है?

जब छोटा बच्चा पैदा होता है उसके भीतर कोई अहंकार नहीं होता। फिर उसका कुछ नाम रख दिया जाता है और उसी नाम से सब उसे पुकारते हैं, धीरे-धीरे उस नाम से उसका तादात्म्य बन जाता है कि यही मैं हूं। इसीलिए छोटे बच्चे जब बोलना शुरू करते हैं तो अक्सर वे थर्ड पर्सन या तृतीय पुरुष की भाषा में बोलते हैं। जैसे उदाहरण के लिए, यदि बच्चे का नाम मुन्ना, तो वह कहेगा कि मुन्ना गिर गया था, मुन्ने के पैर में

चोट लग गई, मुन्ना को भूख लगी है इत्यादि। तब घर के लोग उसे समझाते हैं कि ऐसा मत कहो, तुम बोलो कि मुझे भूख लगी है, कहो कि मैं गिर गया, मेरे घुटने में चोट लगी है। बच्चे को समझ में नहीं आता है कि ऐसा क्यों कह रहे हैं?

सब लोग तो मुझे कह रहे हैं मुन्ना और स्वयं मुझे अपने आप को मैं या मेरा कहना पड़ेगा। इन शब्दों का अर्थ उसको समझ में नहीं आता है क्योंकि इनका कोई यथार्थ नहीं है। लेकिन सब लोग कहते हैं कि तुम ऐसा बोलो तो फिर वह वैसा बोलना शुरू कर देता है। धीरे-धीरे इन शब्दों का बार-बार प्रयोग करते हुए एक मानसिक धारणा बन जाती है कि हम जिस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, निश्चित ही उसका वजूद भी है। हमारा मन बड़ा अदभुत है। आप कभी एक प्रयोग करना! कोई भी निरर्थक वाक्य लंबे समय तक केवल बोलते रहें, कुछ समय के बाद आप पाएंगे कि जिस शब्द में कोई अर्थ नहीं था उसने अर्थ लेना शुरू कर दिया, कुछ देर बोलने के बाद ऐसा लगता है कि सचमुच में उसका कुछ अर्थ है।

बचपन से हम भूतों की कहानियां सुनते आ रहे हैं। अधिकांश लोगों को लगता है कि यह सब यथार्थ है। सही जानकारी किसी को भी नहीं है पर इस 'भूत' शब्द को इतनी बार सुनने पर लगता है कि वजूद होना ही चाहिए। अमरीका में एक कहानी चलती है यू.एफ.ओ की उड़न तश्तरी। बचपन से सब लोगों ने उन किस्से-कहानियों को सुना, पढ़ा, कई लोगों ने बताया कि उन्होंने देखी भी है, करीब-करीब चालीस-पचास परसेंट लोगों ने अमेरिका में देखी है। अब वह बात प्रचलित है कि यू. एफ.ओ होते हैं। भांति-भांति की रहस्यमयी कहानियां, फिर फिल्मों में वह सीन आते हैं तो और पक्की धारणा हो जाती है कि उनका वजूद है। लोगों को दिखने भी लगती है। भारत में किसी को नहीं दिखती क्योंकि हमने बचपन से सुना ही नहीं है।

लंदन में सबसे ज्यादा भूतप्रेत हैं, क्योंकि वहां ऐसी बातचीत चलती रही तो वह धीरे-धीरे सच ही लगने लगी। लंदन में हर दस घरों के बाद एक भूतहा घर मिल जाएगा जिसको कोई खरीदने के लिए तैयार नहीं होता। उस घर के साथ बहुत सारी ऐसी कहानियां जोड़ दी जाती हैं कि वहां पर फलां आदमी आकर रहता था, उसके साथ ऐसा होता था, कोई मर गया, विपदायें आ पड़ीं और फिर किसी दूसरे ने खरीदा, फिर उसके परिवार में भी बहुत मुसीबतें आ पड़ी, धीरे-धीरे वह भूतहा मकान ही हो जाता है। कहानियां अदभुत काम करती हैं, सिर्फ शब्द हैं, इन्हीं शब्दों से हमारी धारणा बन जाती है। इसी प्रकार बचपन में हमने कहना शुरू किया- मैं, मेरा, मुझे। दूसरे लोगों ने हमको एक नाम से पुकारा, वह नाम भी धीरे-धीरे हममें प्रवेश कर गया और हम मानने लगे कि यही मेरा वजूद है।

यद्यपि अब हम बड़े हो गए हैं और हम जानते हैं कि वास्तव में किसी का कोई नाम नहीं है, यह तो ए बी सी डी कुछ भी हो सकता था। संयोग की बात है कि

माता-पिता ने कुछ नाम रख दिया, कुछ और भी हो सकता था। कई जगह तो दो-दो, तीन-तीन नाम होते हैं, परिवार के किसी व्यक्ति को एक नाम पसंद नहीं आया, तो रिश्तेदार ने दूसरा रख दिया। बस नाम बदल गया। एक बार स्कूल जाने पर, नियम-कानून के कारण फिर जिंदगी भर के लिए एक ही नाम तय हो जाता है।

नाम से हमारा गहरा तादात्म्य बन जाता है कि यही मैं हूं। एक तो 'मैं' झूठा क्योंकि वह भी एक धारणा है, किसी शब्द के कारण ही उत्पन्न हुई है। बार-बार नाम के दोहराव के कारण हम सम्मोहित हो गए हैं, इस नाम से हमारा गहरा जोड़ बन गया। यही अहंकार की भ्रांति है, मैं या मेरा नाम, जो कि वास्तव में है ही नहीं लेकिन हमारी धारणा के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उसका वजूद है। जो नहीं है, वह हो गया और इतना ज्यादा हो गया कि हमारा पूरा जीवन उसी पर केन्द्रित हो गया।

आज कोई आपका नाम ले के गाली दे तो आप आगबबूला हो जाएंगे, मार-काट के लिए तैयार हो जाएंगे। वास्तव में वह नाम अवास्तविक है लेकिन उसके लिए हम मरने-मारने के लिए तैयार हैं। एक झूठ सच हो गया, लगभग सच हो गया और इतना ज्यादा सच हो गया कि जो वास्तव में सच है वह फीका पड़ गया। एक जिंदा आदमी वास्तव में सच है और हम उसकी गर्दन दबाकर मारने के लिए तैयार हैं उसने केवल हमारे अहंकार को चोट पहुंचाई थी। अहंकार चूंकि है नहीं और आदमी सचमुच में है लेकिन हमारी दृष्टि में जिंदा आदमी की कीमत कम हो गई और अहंकार की ज्यादा हो गई। झूठ सच हो गया और सच झूठ हो गया।

यह जो 'मैं' की भ्रांति है यही हमारे और अस्तित्व के बीच में दीवार है और यह हमने ही बनाई है। अब कोई न कोई नाम देना भी समाज में जरूरी था वरना हम किसी को बुलाएंगे कैसे? यदि नाम नहीं होता तो नंबर देना पड़ता। मैं तो समझता हूं कि भविष्य में सभी को नाम की जगह उनका मोबाइल नंबर दे दिया जाए, उसी में सब कुछ आ गया। कौन व्यक्ति है, कहां का रहने वाला है सब फिक्स कर दिया जाए। पहले देश का कोड दो डिजिट में, फिर प्रांत का कोड दो डिजिट में, फिर शहर का कोड और फिर बाकी का आगे का नंबर, फुल एड्रेस भी उसमें आ सकता है और आगे का मकान नंबर भी उसमें जोड़ दें, पंदह-सोलह नंबर में काम हो जाएगा और उसी में उसका कंपलीट एड्रेस भी शामिल होगा। कुछ न कुछ तो करना पड़ेगा। परंतु फिर हम उससे भी जुड़ जाएंगे।

किसी ने गाली दे दी सोलह सौ पच्चीस को तो सोलह सौ पच्चीस खड़ा हो गया, तलवार निकाल ली उसने। अभी हमें हंसी आ रही है, ऐसा ही तो होता है जब किसी का नाम लेकर गाली दी जाती है। नाम में कुछ भी नहीं हैं, इसीलिए दीक्षा के समय गुरु नाम बदल देते हैं ताकि तुम्हें याद आए कि न वह नाम तुम्हारा था और न यह तुम्हारा

है, वह माता-पिता ने दिया था, यह गुरु ने दिया है, चीजें बदली जा सकती हैं। अगर वह स्थाई होता तो बदलता कैसे? उस नाम की कोई सच्चाई नहीं है, वह केवल उपयोगितावादी है। ओंकार नाम में डूबकर हम अपने झूठे नाम से मुक्ति पा सकते हैं। जब हमें पता चलता है कि वास्तविक नाम क्या है? वह ओंकार ही वास्तविक नाम है, वह ओंकार ही सत्य है- एक ओंकार सतनाम। जो हमने माना था वह झूठ था।

इहु मनूआ खिनु न टिकै बहु रंगी, दह दह दिसि चलि हाढ़े।

इस अहंकार के कारण यह मन सब जगह भागता है, यहां-वहां दसों दिशाओं में फिरता है। इस अहंकार को बचाने के लिए हमें क्या-क्या नहीं करना पड़ता? क्योंकि भीतर के झूठ को खड़ा करने के लिए बहुत सहारा चाहिए वरना सारी धारणाएं धराशायी हो जाएंगी। इसीलिए जरा सी चोट पर, जरा सी ठेस पर, हमारे अहंकार को धक्का लगता है। यदि सचमुच में उन धारणाओं का कोई वजूद होता तो हमको चिंता भी न होती। हम भी जानते हैं कि अधिकांश बातें, मान्यताओं और झूठ की प्रतिमा पर टिकी हुई हैं।

चार लोग आपको अच्छा आदमी कह रहे हैं तो आप स्वयं को अच्छा मानते हो, यथार्थ में शायद उतने अच्छे नहीं हो, उन चार लोगों के कहने से अच्छे हो इसीलिए डर भी बना रहता है कि कोई बुरा न कह दे। अगर एक आदमी भी कह दे कि आप बुरे हो, एक आदमी ने भी निंदा कर दी, आलोचना कर दी तो आप घबरा जाते हो। यदि सचमुच में ही अच्छे होते तो इस बात की क्या चिंता कि लोग क्या कहेंगे? उन्हें जो कहना है कहें, उनकी अपनी मौज है। यह चिंता इसीलिए होती है क्योंकि हमको भी पता है कि अच्छे या बुरे का यह लेबिल दूसरे लोगों की मान्यताओं पर निर्भर है।

लोग जब तक अच्छा मान रहे हैं तब तक ठीक है, वरना कुछ भी अच्छा नहीं है। इसलिए अहंकार एक भ्रांति है। कई धार्मिक लोग अपने अहंकार को नष्ट करने की कोशिश करते हैं, अब दूसरी मुसीबत खड़ी हो जाती है। संसारी लगे हैं अहंकार को पुष्ट करने में, आध्यात्मिक लोग लग गए अहंकार को नष्ट करने में। दोनों में कोई फर्क नहीं है, वही के वही नालायक हैं, जो पहले एक काम कर रहे थे, अब दूसरा करने लगे। कुछ फर्क नहीं पड़ा, अक्ल इनको अभी भी नहीं आई, अगर भ्रांति है तो भ्रांति को नष्ट कैसे करोगे? नष्ट करने के लिए भी तो कुछ होना चाहिए। जो है ही नहीं... उसको न तो पुष्ट कर सकते हैं, न ही उसको नष्ट कर सकते हैं। बस इतना जानना पर्याप्त है कि 'वह नहीं है', बात खत्म।

समझो एक आदमी कुछ हिसाब-किताब लगा रहा था, उसने जोड़े तीन और छः बारह, फिर बारह में दो का गुणा किया तो उत्तर आया अठारह और फिर उसमें पांच घटाए तो उत्तर आया छः। अब बाद में पता चला कि इसमें गलती थी, गुणा, जोड़ और

घटाना तीनों ही गलत थे तो अब क्या करोगे उनको? बस पता चल गया तो बात खत्म हो गई। ऐसा थोड़ी है कि सचमुच में तीन और छः बारह हो गए थे, कभी नहीं हुए थे। कागज पर लिखे थे केवल, तुम्हारे मन में था कि हो गया, सच में हुआ तो नहीं था।

हमारे हिसाब-किताब में भूल थी, सचमुच में कुछ नहीं हो गया था, बस ऐसी ही है अहंकार की भ्रांति। बस इसके प्रति जाग जाना पर्याप्त है और जागने का सबसे अच्छा उपाय है सच्चे नाम में डुबकी लगाना ताकि बाहर परिधि में जिन झूठे नामों पर हम उलझ गए हैं, उससे दूर खिसक जाएं। उस वास्तविक नाम की ही सत्ता है इसलिए इसको सतनाम कहते हैं, इसी से जुड़ना है। और हम जिसको 'मैं' कहते हैं, 'मेरा' कहते हैं, यह सत्य नहीं है, असत्य है, झूठ है।

तो गुरु का बस इतना ही कार्य है कि शिष्य को दिशा बता दे, उसे समझ प्रदान कर दे और इस प्रयोग में डूबने के लिए उसे प्रेरित कर दे। अंततः शिष्य को ही प्रयास करना है, गुरु तो बस इशारा करता है, संकेत करता है, समझाता है, सारा कार्य तो शिष्य को ही करना है। उस अहंकार से थोड़ा दूर खिसक कर, अपने भीतर के असली नाम में डुबकी लगाओ। गुरु पूरा पाइआ बड़भागी हरि मंत्रु दीआ मनु ठाढ़े। फिर जो मन अहंकार की दौड़ लगाता था, वह ठहर जाता है, स्थिर हो जाता है।

गोविंद अगम, अगोचर

वडा मेरा गोबिंदु अगम अगोचरु आदि निरंजनु निरंकारु जीउ।
ता की गति कहीं न जाई अमिति वडिआई
मेरा गोबिंद अलख अपार जीउ।
गोबिंद अलख अपारु अपरंपरु आपु आपणा जाणै।
किआ इह जंत विचारे कहीअहि जो तुधु आखि वखाणै।
जिस नो नदरि करहि तूं अपणी सो गुरमुखि करे वीचारु जीउ।
बडा मेरा गोबिंद अगम अगोचरु आदि निरंजनु निरंकारु जीउ ।।1।।

हे भाई! मेरा गोबिन्द सर्वोपरि है, अगम्य है और इन्द्रियों की पहुँच से परे है, वह समस्त विश्व का मूल है, उसे माया की कालिख नहीं लग सकती, उसकी कोई विशेष आकृति नहीं बताई जा सकती। यह नहीं कहा जा सकता है कि परमात्मा कैसा है, उसका बड़प्पन भी नहीं मापा जा सकता। मेरा यह गोबिन्द अव्यक्त है, अनन्त है, अपरम्पार है, अपने आप को वह जानता है, इन जीव बेचारों के क्या वश की बात है (कि ईश्वर के बारे में कुछ कहें) कोई भी नहीं है जो तेरी हस्ती का वर्णन कर समझा सके। हे प्रभु! जिस मनुष्य पर तुम कृपा-दृष्टि करते हो, वह गुरु का शरणागत हो (तुम्हारे गुणों के बारे में) चिन्तन करता है। हे भाई! मेरा गोबिन्द सर्वोपरि है, अपहुँच है ओर ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच से परे है, वही जगत् का मूल है, उसे माया की कालिख नहीं लग सकती, उसकी कोई विशेष आकृति नहीं बताई जा सकती ।।1।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

'वडा मेरा गोबिंदु अगम अगोचरु।

आदि निरंजनु निरंकारु जीउ।।'

वह परमात्मा अगम्य है, अगोचर, अदृश्य है। वही आदि है, मूल स्रोत है। वह निरंजन है, उस पर कोई लेप नहीं चढ़ता और उसका कोई आकार भी नहीं है, वह निरंकार है। ये सारी बातें, ये सारे गुण जो बताए गए हैं ये हमारी आंतरिक जीवन ऊर्जा पर भी लागू होते हैं। ऊर्जा का कोई आकार नहीं होता, ऊर्जा पर कोई लेप नहीं चढ़ता, ऊर्जा ही आदि है, मूल है। अब तो वैज्ञानिक भी सहमत हैं कि समस्त पदार्थ की उत्पत्ति ऊर्जा से हुई है। ऊर्जा मूल है यद्यपि वह अदृश्य है, फिर भी महसूस की जा सकती है। बल्कि हम सब महसूस कर ही रहे हैं।

'ता की गति कहीं न जाई अमिति वडिआई'

यह जीवन ऊर्जा जो सतत् प्रवाहमान है, फिर भी इसकी गति के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, 'अमिती'; इसकी कोई मिती अर्थात् परिभाषा नहीं है, अपरिभाष्य एवं अकथनीय है। 'मेरा गोविन्द अलख अपार जिऊ।' वह जीवन ऊर्जा अलख है और अपरम्पार है। 'गोविन्द अलख, अपरम्पार आप आपणा जाने।' इस ऊर्जा की खूबी यह है कि यह स्वयं ही स्वयं को जानती है। वैज्ञानिक जिन ऊर्जाओं की बात करते हैं वे मृत ऊर्जाएं हैं- चाहे वह विद्युत हो, गर्मी हो, प्रकाश हो या जो भी। परंतु भीतर जिस जीवन ऊर्जा को हम जानते हैं वह चैतन्य की ऊर्जा है। अर्थात् इसमें यह विषेशता है कि वह स्वयं ही स्वयं को जानती है।

चैतन्य का मतलब है जानने का गुणधर्म, द क्वालिटी एण्ड द कैपेसिटी टू नो। हम किसी वस्तु को कहते हैं मृत, जड़, क्योंकि उसमें जानने की क्षमता नहीं है। यदि जानने की क्षमता हो तो हम कहेंगे चेतन। जहां संवेदना हो, सेंसिटीविटी हो, वह चैतन्य का गुण है; जानने की क्षमता। तो भीतर की जो जीवन ऊर्जा है- 'आप आपणा जाने'। वह स्वयं ही स्वयं को जानती है। अन्य ऊर्जाओं में, अन्य शक्तियों में और हमारी जीवन शक्ति में यही फर्क है। हमारी जीवन शक्ति चैतन्य है, वह जान सकती है।

'किआ इह जंत विचारे कहीअहि जो तुधु आखि वखाणै।

जिस नो नदरि करहि तूं अपणी सो गुरमुखि करे वीचारु जीउ।

बडा मेरा गोबिंद अगम अगोचरु आदि निरंजनु निरंकारु जीउ।'

किसी जीव के बस की बात नहीं है कि वह उस परम तत्व के बारे में कुछ कहे या उसके अस्तित्व का वर्णन कर सके। जिस पर कृपा दृष्टि हो जाती है, जो गुरु का शरणागत हो जाता है, वही इस को जान पाता है। वह परमात्मा, वह जीवन ऊर्जा रूपी तत्व सर्वोपरी है, सबसे बड़ा है। यहां छोटा और बड़ा का फर्क याद रखना, सामान्य भाषा में हम जो शब्द प्रयोग करते हैं वे सापेक्ष होते हैं। 'इन रिलेशन टू समथींग', वे सभी 'रिलेटीव टर्म्स' हैं। किसी व्यक्ति को हम लंबा कहते हैं, क्योंकि उस से छोटे कई लोग हैं। किसी को मोटा कहते हैं, क्योंकि उस से दुबले कई लोग हैं, उन दुबले लोगों की तुलना में वह मोटा है। यदि वह अपने से अधिक मोटों के बीच में पहुंच जाए तो वहां वह खुद ही दुबला कहलाएगा।

जापान के सूमो पहलवान हैं। भारत के मोटे से मोटे व्यक्ति को उनके सामने खड़ा कर दें तो बिल्कुल पिद्दी और दुबले-पतले-मरियल से लगेंगे। हमारे सारे शब्द तुलनात्मक हैं। छोटा-बड़ा, दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे आदि यह सब रिलेटिव टर्म्स हैं। न कोई चीज ऊपर है, न कोई चीज नीचे है।

हम कहते हैं छिपकली ऊपर सीलिंग पर रेंग रही है, छिपकली से पूछो तो वो कहेगी कि मेरे ऊपर आदमी बैठे हुए हैं। जमीन पर लटके हुए हैं। जैसा हमको आश्चर्य होता है कि ये गिरती क्यों नहीं? ऐसे उसको भी आश्चर्य होता होगा कि आदमी टपकते क्यों नहीं। जमीन पर चल रहे हैं उल्टे-उल्टे, सिर नीचे की तरफ लटका हुआ है इनका। ये गिरते क्यों नहीं? उसके लिए हम ऊपर हैं, हमारे लिए वो ऊपर है।

और पूरी पृथ्वी गोलाकार है। भारत के ठीक विपरीत में अमेरिका है, हमारे लिए वह नीचे है। अमेरिका से पूछेंगे तो इंडिया नीचे है। अगर यहां से सीधा छेद बना दिया जाए जमीन में से तो हमें गोवा, अमेरिका लटके हुए दिखाई देंगे। उनका सिर जमीन से दूर और पैर जमीन से चिपके हुए और हमें आश्चर्य होगा कि ये लोग गिर क्यों नहीं जाते? और वही आश्चर्य उनको भी होगा, जब उसी छेद में से वो हमको देखेंगे, उनको हम लोग उल्टे लटके नजर आएंगे। कौन ऊपर है, कौन नीचे है, कौन बाएं है, कौन दाएं है, कहां पूरब, कहां पश्चिम? हम इन शब्दों का प्रयोग ऐसे करते हैं जैसे कि इनकी कोई यथार्थता है।

बड़ी आसानी से कह देते हैं कि वैस्टर्न कंट्रिज़ जैसे कि इसमें परम सच्चाई हो- 'पश्चिमी देश'। भारत के पश्चिम में यूरोप है, यूरोप के पश्चिम में अमेरिका है, अमेरिका के पश्चिम में जापान है, जापान के पश्चिम में भारत है। और गोल घूमकर फिर वहीं के वहीं आ जाएंगे। जापानियों से पूछो पश्चिमी देश तो उनका मतलब होगा भारत वगैरह। उनके लिए यह पश्चिम है। हमारे लिए जापान पश्चिम है। अगर हम पूरब से चलते चले तो हमारे लिए जापान पूरब में हैं।

जापान के पूरब में अमेरिका है, अमेरिका के पूरब में यूरोप है, यूरोप के पूरब में भारत है। हम किस तरफ से देखेंगे? लेकिन हम सामान्य भाषा में जब प्रयोग करते हैं ईस्ट और वेस्ट तो हम ऐसे कह देते हैं जैसे यह कोई निर्धारित तथ्य है। लेकिन काम चल जाता है हम जिन से बात कर रहे हैं वो भी उसका अर्थ समझ जाते हैं तो बात बन जाती है। विस्तार में कोई छान-बीन करे तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। पूरब और पश्चिम का विभाजन एक गोल गेंद में कैसे हो सकता है? कहां पर लकीर खींचोगे? यह तो असंभव है। ठीक उसी प्रकार छोटा और बड़ा रिलेटिव टर्म है, सापेक्ष है। जहां दूसरे विपरीत की भी मौजूदगी हो केवल वहां ही रिलेटिव टर्म्स का उपयोग हो सकता है।

मुल्ला नसरुद्दीन सुबह-सुबह कहीं घूमने जा रहा था। एक परिचित सज्जन मिल गए। उन्होंने पूछा, अरे बड़े दिनों बाद दिखे, क्या हाल-चाल है? इस बीच में नसरुद्दीन ने आईंस्टीन की एक किताब पढ़ ली थी रिलेटिविटी के संबंध में। नसरुद्दीन ने कहा कि भाई साहब पहले आप यह बताईए आप किस संदर्भ में मेरा हाल-चाल पूछ रहे हैं? इन विच कांटेक्स्ट? मैं इस गांव के बहुत से लोगों की तुलना में काफी अमीर हूं। और ऐसे भी लोग हैं जिनके सामने मैं बिल्कुल दीन-हीन, एकदम दरिद्र हूं। कई लोगों की तुलना में, मैं स्वस्थ हूं

और बलशाली हूं। और कई लोगों की तुलना में, मैं बिल्कुल ही कमजोर और बीमार हूं। कई लोगों की तुलना में, मैं अच्छा हूं, सुन्दर हूं और कई लोगों की तुलना में बहुत कुरूप व बदसूरत हूं। आपने तो एक अजीब सा प्रश्न पूछ लिया है कि कैसे हैं? ये तो बहुत मुश्किल सवाल है। नसरुद्दीन ने कहा, इसका उत्तर मैं ऐसे नहीं दे सकता। पहले आप स्टेंडर्ड फिक्स करो, कोई मापक, कोई कसौटी तो बनाओ। किसकी तुलना में मैं आपको जवाव दूं?

उस आदमी ने अपना माथा पकड़ लिया कि ये तो कोई इतना पेचीदा सवाल नहीं था। रोज ही सब एक दूसरे से पूछते हैं कि क्या हाल है? नसरुद्दीन ने कहा, तुमको रिलेटिविटी के बारे में पता नहीं है? तुम अज्ञानी, मूढ़ हो जो इस तरह के सवाल पूछते हो और दूसरे मूढ़ तुम्हें जवाब भी दे रहे हैं। जरा अकलमंदी की बात करो। नसरुद्दीन जो कह रहा है वह ठीक ही कह रहा है कि कई लोगों की तुलना में मेरे हाल-चाल अच्छे हैं और कई लोगों की तुलना में बहुत खराब हैं। लेकिन सामान्य भाषा में हमारा काम चल जाता है। हम इतने गहराई से कभी चिंतन-मनन नहीं करते हैं।

जब हम उस परम तत्व की बात करते हैं जो कि संपूर्ण अस्तित्व का प्रतीक है, उसका अर्थ है कि उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। जब हम कहते हैं एक्जिस्टेंस या अस्तित्व तो इसका मतलब है कि इंक्लूसिव आफ एवरीथिंग, जिसमें सब कुछ समाया हुआ है, जिस भी चीज का वजूद है, वह इस अस्तित्व में ही शामिल है। इसकी तुलना कैसे करोगे? तुलना के लिए तो दूसरा मौजूद होना चाहिए। इसलिए परमात्मा की कोई तुलना नहीं हो सकती। इसलिए छोटा या बड़ा शब्द एक प्रकार से परमात्मा के संदर्भ में अर्थहीन हो जाते हैं। उनका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता है। इसलिए कई प्रकार के शब्दों में बात कहनी पड़ती है क्योंकि एक शब्द से गलतफहमी हो जाने की संभावना है। इसलिए इतनी सारी उपमाएं- अगम, अगोचर, आदि, निरंजन, निरंकार, अमित, अलख, अपार, अपरम्पार आदि का उपयोग हुआ है। परमात्मा का कोई पार नहीं, पार तो केवल तभी संभव है जब दूसरा कोई मौजूद हो।

आपकी घर की चार दीवारी है, उस के बाहर पड़ोसी का मकान शुरू होता है। सामने सड़क है, पीछे गली है, दूसरी तरफ किसी और की जमीन है, खेत है। इन चारों सीमाओं के संदर्भ में आप कहते हैं कि बीच वाली जमीन मेरी है, ये मेरा मकान है। परंतु पटवारी नक्शा बनाएगा तो बताएगा इसके बांऐ कौन है, दाएं कौन है, आगे-पीछे क्या-क्या है? बीच का जो हिस्सा है केवल यह आपका है। जब चीजें खण्ड-खण्ड हों तब उनको आर-पार नापा जा सकता है कि कहां से कहां तक? जब अखंड अस्तित्व की बात कर रहे हैं तो कैसे नापा जा सकता है? क्या हमारे भीतर की ऊर्जा में कोई खण्ड है? कोई विभाजन है? क्या आप कह सकते हैं कि वह शरीर के भीतर कहां से शुरू हुई और कहां समाप्त हुई? नहीं, उसका मापा जाना संभव नहीं है। उसकी कोई रूप रेखा नहीं बना सकते हैं। उसको बांट नहीं सकते टुकड़ों में। उसका स्वभाव ही अखण्ड होना है। तो अखण्ड का आर-पार कैसे होगा? वह तो केवल अपरम्पार ही हो सकता है।

जो छोटा है, खण्ड है, उसका रूप तथा आकार हो सकता है। जो सम्पूर्ण है, जिसमें सब कुछ समाया है उसका रूप और आकार कैसे होगा? हो ही नहीं सकता। वह केवल अरूप

और निराकार स्वरूप में ही संभव है। फिर भी हमें भाषा के किन्हीं शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। यद्यपि उनमें से कोई भी शब्द पूरी तरह से सही नहीं है पर फिर भी काम चलाने के लिए कहना होगा। जैसे- विराट, विराट कहते ही हमें ख्याल आ जाता है कि छोटी-छोटी चीजों की तुलना में विराट। वहीं भूल हो जाती है। बड़ा कहने में भी भूल हो जाती है।

हम कुछ भी कहेंगे उसमें भूल होती ही है। हम कहें सागर जैसा, लेकिन सागर की तो सीमाएं हैं। माना बहुत दूर तक हमें नहीं दिख रही है सीमा, हमको नजर नहीं आ रहा है दूसरा किनारा लेकिन दूसरा किनारा है और नीचे काफी गहरा है। वैज्ञानिकों ने नाप-जोख कर ली है, प्रशांत महासागर पांच मील गहरा है, सबसे गहरा। कोई चीज अनंत नहीं है। हम अपनी इंद्रियों से जो भी जानेंगे वह अमित नहीं हो सकता। उसकी मिती होगी, वह सीमित होगा, उसकी परिभाषा होगी। कहीं न कहीं कोई सीमा जरूर होगी, चाहे कितनी ही दूर क्यों न हो, पर सीमा होगी।

वैज्ञानिकों ने बड़ी-बड़ी गैलैक्सियों तक की नाप-जोख कर ली है। नाप-जोख तो हो गयी। यह भी अनुमान लगा लिया कि सूरज कब जन्मा? अभी हिसाब लगा रहे हैं कि पूरा अस्तित्व कब उत्पन्न हुआ? वह भी हिसाब खोजा गया है कि लगभग 13.7 ट्रिलियन वर्ष पहले यह अस्तित्व शुरू हुआ, इसे बिग-बैंग सिद्धांत कहा गया। अतः हर चीज की सीमा है, स्पेस में भी सीमा है और समय में भी सीमा है। दोनों प्रकार से नाप-जोख हो सकती है। स्पेस में कहां से कहां तक कोई चीज फैली है और समय में कब शुरू हुई, कब खत्म होगी? यह सारे माप-जोख संभव हैं।

वास्तव में अंग्रेजी का शब्द 'मैटर', पदार्थ के लिए प्रयोग किया जाता है। यह संस्कृत की 'मात्र' धातु से बना है। मात्र यानि मात्रा। मात्रा का मतलब है- दैट विच इज़ मेज़रेबल अर्थात् जिसको नापा जा सके।

मैंने सुना है एक जहाज समंदर में डूब रहा था। लोग मर रहे थे। जहाज टूट गया था। एक आदमी डूबते-डूबते पूछने लगा कि यहां से जमीन कितनी दूर है? कैप्टन ने कहा, पांच मील। उसने कहा तब तो मैं तैर कर पहुंच जाऊंगा क्योंकि सात मील का तो मेरा पहले ही रिकार्ड है, मैं तैर लूंगा। कैप्टन ने कहा- क्षमा करें मैं नीचे की तरफ गहराई बता रहा हूं। नीचे की ओर पांच मील है जमीन।

हर चीज की माप-जोख हो सकती है। बड़ी-बड़ी माप-जोख हो सकती है। तारों की दूरियां माप ली गयी हैं। वह गणना इतनी विशाल है कि किलोमीटर या मील में प्रकट ही नहीं की जा सकती है। उसके लिए एक अलग यूनिट बनायी गई है, उसे प्रकाश-वर्ष कहते हैं, लाईट इयर यानि एक साल में प्रकाश जितना चलता है। तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकेंड की गति से, बहुत ही लंबी दूरी है वह। अब अंदाज़ लगा लो कि एक साल में कितना चलेगा? लेकिन नाप-जोख तो हो गयी है। परंतु जो अनुभव इंद्रियों के पार हैं, अर्थात् जो आलौकिक अनुभूतियां हैं, जो भीतर घटित होती हैं, उनकी नाप-जोख संभव नहीं है। भीतर के अनुभव मात्रा में नहीं बताए जा सकते। भीतर के अनुभव मैटर नहीं हैं, वे पदार्थ नहीं है।

अक्सर प्रेमिकाएं अपने प्रेमी से पूछती हैं कि बताओ मुझसे कितना प्यार करते हो? अब क्या बताए बेचारा? पांच किलो, दस किलो या दो मीटर या दस मीटर या क्या बताए?

प्रेम जो है वह मात्रात्मक नहीं है। लव इज ए क्वालिटी, नाट ए क्वांटिटी। इसी पर झगड़ा हो जाता है कि पूरा सौ टन क्यों नहीं करते? इतना कम, बस पांच किलो? नहीं, प्रेम को आप बता नहीं सकते, दिखा नहीं सकते, प्रेम की माप-तौल संभव नहीं है। प्रेम कोई वस्तुपरक तथ्य नहीं है कि हम नाप-जोख कर लें। प्रेम तो एक व्यक्तिपरक अनुभव है। मैटर या पदार्थ और आत्मा का फर्क समझ लें। पदार्थ को मापा जा सकता है परंतु जो हमारे आत्म-गुण हैं, उनकी माप संभव नहीं है। आत्म तत्व अमाप, अगोचर, अलेख, अमित और अपार है, वहां हमारे हिसाब-किताब काम न आएंगे।

एक और अद्भुत बात आपसे कहूं। अपनी उम्र के संदर्भ में हम जो जानते हैं वह अनुमान तो हम आईने में अपनी शक्ल देखकर या अपनी फोटोग्राफ देखकर या जन्म तिथि का हिसाब लगा कर लगाते हैं। यह सब तो बाहर की, शरीर के तल की गणना है किंतु भीतर तो हमें अपनी अनुभूति ऊर्जा के रूप में ही होती है। और इसीलिए एक असंगती पैदा हो जाती है। भीतर हमें लगता है कि हम वही के वही हैं, ज्यों के त्यों, हमारे भीतरी गुणों में तो कोई परिवर्तन हुआ नहीं, दस साल पहले भी ऐसे ही थे, बीस साल पहले भी ऐसे थे। अतः भीतरी जीवन ऊर्जा में कोई परिवर्तन नहीं होता है केवल बाहर से, ऊपर से शरीर का रंग रूप बदल जाता है।

दूसरे लोग जब किसी महिला को आंटी कहने लगते हैं तो उसको बड़ी परेशानी होती है। क्यों? परेशानी क्यों हो रही है? क्योंकि उसको भीतर से नहीं लगता है कि मैं बूढ़ी हो गयी हूं। दूसरों को लगने लगा क्योंकि वे उसके शरीर को देख रहे हैं, बालों का रंग अथवा डाई को पहचान रहे हैं और असली या नकली दांत देख रहे हैं। लोग शरीर के बदलाव को तो देख लेंगे। लेकिन भीतर हमें स्वयं का जो एहसास है वह तो अपनी जीवन ऊर्जा का है और उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, वो तो सदा से ज्यों कि त्यों है। इसीलिए कठिनाई पैदा हो जाती है।

मैंने सुना है कि अमेरिका में आज तक कोई महिला, प्रेसिडेंट नहीं हो सकी क्योंकि वहां शर्त है कि उम्मीदवार के लिए ३५ साल उम्र कम से कम जरूरी है। तो कौन महिला आवेदन पत्र में अपनी उम्र ३५ साल से ज्यादा लिखेगी? कोई महिला बताना ही नहीं चाहती कि वह ३५ वर्श से ज्यादा उम्र की है। इसलिए आज तक कोई महिला अमेरिका में प्रेसिडेंट नहीं बनी, शायद आगे भी न बने।

भीतर जो हमारा भाव है वह तो सदा ताजा और युवा होने का ही है। दूसरे लोग इस आंतरिक भाव को नहीं देख सकते, वे केवल बाहर से ही देखते हैं। भीतर समय की माप भी नहीं हो सकती। दो प्रकार के नाप-जोख हैं, एक तो स्पेस में और एक समय में। भीतर हम जिस चीज का एहसास कर रहे हैं, अपने होने का, ना तो वह समय की सीमा में आता है, न ही स्थान की सीमा में आता है। वह अगम, अगोचर, आदि, अमित, अलख, अपार और अपरम्पार है। 'आप आपणा जाने।'

मुझे कब गले लगाओगे?

प्रभु कीजै क्रिपा निधान हम हरिगुन गावहगे।
हउ तुमरी करउ नित आस प्रभ मोहि कब गलि लावहिगे।।।।रहाउ।।
हम बारिक मुगध इआन पिता समझावहिगे।
सुतु खिनु खिनु भूलि बिगारि जगत पित भावहिगे ।।1।।
जो हरि सुआमी तुम देहु सोई हम पावहगे।
मोहि दूजी नाही ठउर जिसु पहि हम जावहगे ।।2।।
जो हरि भावहि भगत तिना हरि भावहिगे।
जोती जोति मिलाई जोति रलि जावहगे ।।3।।
हरि आपे होइ क्रिपालु आपि लिव लावहिगे।
जनु नानकु सरनि दुआरि हरि लाज रखावहिगे ।।4।।

हे कृपा-निधान प्रभु, दया करो कि हम सदा आपके गुण गाते रह सकें। मैं नित्य तुम्हारी इसी आशा में पड़ा हूँ, मुझे कब गले लगाएँगे।।1।।रहाउ।। हम तो अनजान नासमझ बालक हैं, आप पिता हैं, आप समझाइए। पुत्र बार-बार भूल करता है, किन्तु जगत्-पिता प्रभु, (ऐसा प्रतीत होता है कि) तुम्हें वे भूलें रोचक लगती हैं ।।1।। हे स्वामी, जो तुम दोगे, हम वही पाएँगे (और संतुष्ट रहेंगे)। मेरे पास दूसरी कोई जगह नहीं, जहाँ मैं जा सकूँगा ।।2।। जो भक्त प्रभु को स्वीकार होते हैं, उन्हें ही हरि से लग्न होती है। उनकी आत्मज्योति परमात्मा की परमज्योति से मिलकर उसी में विलीन हो जाती है ।।3।। परमात्मा स्वयं ही कृपा करके जीव को अंग लगाता है, दास नानक तो उसके द्वार पर शरणार्थी है, वह अपने विरद की लाज रखेगा ।।4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

'प्रभु कीजै क्रिपा निधान हम हरिगुन गावहगे ।'

गुरु रामदास जी कहते हैं कि हे प्रभु, हे दया के भण्डार, हे अनुकंपा के निधान हम पर कृपा करो ताकि हम भी हरि गुण गा सकें।

दुनिया में दो प्रकार के लोग हैं। या तो अहंकार केंद्रित होकर जीने वाले या प्रभु केंद्रित होकर जीने वाले। अहंकार केंद्रित व्यक्ति सोचता है कि सब कुछ करने वाला मैं हूं, कर्ता-धर्ता मैं ही हूं, सब कुछ मैं ही करूंगा। ऐसा व्यक्ति हरि गुण नहीं गा सकता। सच तो यह है कि प्रभु की कृपा हो तो ही हमारे भीतर प्रीति का भाव पैदा होता है, भक्ति पैदा होती है। जो ब्रह्म का गुणगान नहीं कर रहे वो एक तरह से अहम् का गुणगान ही कर रहे हैं। सीधा-सीधा तो वे नहीं कह सकते हैं कि मैं महान हूं या मैं सर्वश्रेष्ठ हूं। वे इसी बात को दूसरे ढंग से कहते हैं।

जब हिंदुस्तान में कोई ट्रक गुजरता है और उसमें लिखा है मेरा भारत महान्। तो आप कभी ट्रक ड्राईवर से झगड़ा नहीं करते कि क्या लिख रखा है? क्योंकि उसने महान भारत के अहंकार में आपको भी समेट लिया है। आपके देश को महान कर दिया, तो कहीं न कहीं आपको भी महान कर दिया। ये हमारे परोक्ष उपाय है अहम का गुणगान करने के। जब मैं कहता हूं मेरा धर्म सर्वश्रेष्ठ, मेरे गुरु महान, उनकी बातें महान् तो घुमा-फिरा के मैं यही कह रहा हूं कि मैं भी महान हूं, जिसने ऐसा गुरु चुना। प्रभु का गुणगान तो वही कर सकता है जिसके अंदर का अहम भाव विदा हो गया हो। इसलिए यह प्रार्थना कि 'प्रभु कृपा किजे, हम हरि गुण गावेंगे।' प्रभु अपने आशीष बरसाओ ताकि हमारा कर्ता भाव मिट सके और हम हरि गुण गा सकें।

अहम के दो मुख्य रूप हैं- कर्ता भाव और ज्ञाता भाव। कर्ता भाव में मनुष्य कहेगा कि मैंने यह कार्य किया, मैंने वह कार्य किया, मैं ऐसा कर सकता हूं या मैं वैसा कर सकता हूं। ज्ञाता भाव में मनुष्य कहेगा कि मैं यह जानता हूं, मैं वो जानता हूं, मैंने इतना जान लिया है या मैं यह भी जान लूंगा। अतः कर्ता और ज्ञाता, यह दो मुख्य अहंकार है। तो यदि हरि का गुणगान हम कर सकें तो फिर से कर्ता भाव आ गया। इसलिए यह गुणगान भी हमसे ना हो सकेगा, हे कृपा निधान हम पर मेहरबानी करो। हम पर मेहर करो ताकि हम हरिगुण गा सकें।

'हउ तुमरी करउ नित आस प्रभ मोहि कब गलि लावहिगे।'

हे प्रभु, मैं निरंतर इस आशा और उम्मीद में जीता हूं कि आप मुझे कब गले लगाएंगे? आध्यात्मिक जगत में तीन सोपान है। पहला साधना, दूसरा प्रार्थना और

तीसरा द्वैत का मिटना। पहले कदम पर, साधक स्वयं अपने बलबूते पर कुछ करता है- जैसे अपने मन का शुद्धिकरण, तन का शुद्धिकरण और हृदय का शुद्धिकरण। वह स्वयं को सद्‌विचार और सद्भाव से भरता है, सत्‌ कर्मो में अपने आप को ओत-प्रोत करता है। यह साधना का कदम है और यह पहला कदम उसे स्वयं ही उठाना होगा।

साधना अर्थात्‌ अपने पात्र की सफाई। हमारे घड़े में कई छेद थे, हमारा घड़ा उल्टा रखा था उसमें कचड़ा-कूड़ा एवं गंदगी भरी हुई थी, तो यह काम हमें स्वयं ही करना पड़ेगा कि घड़े को सीधा रखें, साफ-सुथरा रखें, खाली करें और उसके छेदों को भरें। तब दूसरा कदम आता है प्रार्थना का। हम केवल आशा और उम्मीद कर सकते हैं कि वर्षा हो, आषाढ़ के मेघ घिर आएं और हमारा घड़ा भर जाए।

जो हम कर सकते थे वो हमने किया, अपनी भूमिका निभाई। यदि हमारी भूमिका के बिना ही आषाढ़ और सावन-भादो आ भी जाता तो कुछ बात न बनती क्योंकि हमारा घड़ा ही उल्टा रखा हुआ था और पहले यह अहम रूपी कचरे से भरपूर था, इसमें विकारों के छिद्र थे। यदि पानी भर भी जाता तो वह गंदा हो जाता। इसलिए पहले साधना फिर प्रार्थना। उसके बाद इंतजार या प्रतीक्षा का सोपान है।

'हउ तुमरी करउ नित आस प्रभ मोहि कब गलि लावहिगे।'

पहले हमने अपनी तरफ से चलने का पूरा प्रयास किया, लेकिन अकेले हमारे चलने से प्रभु के मंदिर तक न पहुंच पाएंगे। प्रभु भी हमारी तरफ कुछ कदम उठाएं तो बात बनेगी।

कल मैं एक चुटकुला पढ़ रहा था। कोई प्रेमिका अपने प्रेमी को एस एम एस कर रही है कि-

'कुछ कदम मैं चलूं, कुछ कदम तुम चलो।

फिर हम दोनों आटो रिक्शा कर लेंगे।।'

कुछ कदम साधक चलता है, कुछ कदम वह परम प्रियतम परमात्मा चलता है और तब मिलन हो पाता है। फिर सब स्वतः ही होने लगता है। साधना भी गयी, प्रार्थना भी गयी, प्रतीक्षा भी गयी और आ गया ऑटोरिक्शा। अद्वैत की घटना स्वतः घटित होती है।

अरब में एक बड़ी प्राचीन कहावत है कि साधक और परमात्मा का मिलन बीच मार्ग में, बीच राह में होता है। साधक खुद मंजिल तक कैसे पहुंचेगा? और जहां साधक हैं वहां तक परमात्मा नहीं आ सकता। तो दोनों के चलने से, कहीं बीच में मिलना हो जाता है। इस बात को याद रखना, कुछ लोग हैं जो प्रार्थना से ही शुरूआत करते हैं, तो

शुरूआत ही गलत हो गयी। उन्होंने अपना घड़ा साफ न किया, छिद्र बंद न किए, कचड़ा-कूड़ा बाहर न फेंका, घड़ा उल्टा ही रखा है और प्रार्थना कर रहे हैं कि हे बादल बरसो। नहीं, ऐसे बात न बनेगी। और कुछ लोग हैं जो सोचते हैं कि जब हम ही सब कुछ कर रहे हैं तो बाकी का रास्ता भी तय कर लेंगे। बादलों को हम खुद बरसा लेंगे। ये पागलपन है, उनका घड़ा अभी भी खाली नहीं हुआ है, इंकार से भरा हुआ है।

कुछ लोग जिद्दी हैं जो साधना ही करते चले जाएंगे, उनमें प्रार्थना भाव नहीं है, उन्हें प्रभु न मिलेगा। कुछ लोग हैं जो साधना नहीं करते, केवल प्रार्थना ही करते हैं उन्हें भी प्रभु न मिलेगा। ठीक शुरूआत करनी होगी, ठीक क्रम में जमाना होगा। पहले साधना फिर प्रार्थना और तब द्वैत मिटने की घटना घटेगी। फिर दोनों अद्वैत के एक ही ऑटो रिक्शा में बैठ जाएंगे।

'हम बारिक मुगध इआन पिता समझावहिगे।'

हम तो छोटे बालक की तरह हैं, मुग्ध और अज्ञानी हैं, आप पिता तुल्य हैं आप ही हमें समझाएंगे।

'सुतु खिनु खिनु भूलि बिगारि जगत पित भावहिगे।'

माना कि हम बच्चों से क्षण-क्षण भूल होती है। हम अचेत हैं, बेहाश हैं, नासमझ हैं, भूल हो सकती है। लेकिन पिता को वह भूलें भी अच्छी लगती हैं। 'जगत पित भावेंगे।' आप तो जगत के पिता हैं, आपको भी हमारी भूलें अच्छी ही लगती होंगी।

कभी महिलाओं की बात-चीत सुनें, आपस में जब वो अपने बच्चों की चर्चा करती हैं तो कैसे उनकी भूलों को बढ़ा चढ़ा कर बताती हैं। बड़े-बड़े उपद्रवी बच्चों की माताएं भी उनके गुणगान करती हैं। बड़ा रस ले लेकर बताती हैं कि नया वाहन खरीद लिया है, ऐसे चलाता है, वैसे चलाता है, सब्जी वाले को थप्पड़ मार देता है और घर आए मेहमान का तो खूब मजाक उड़ाता है, आदि-आदि। निश्चित ही यह सब बच्चे की भूलें हैं, लेकिन मां को उसमें रस आ रहा है। नानक कह रहे हैं कि आप तो जगत पिता हैं आपको भी हमारी भूल-चूक भली ही लगती होगी।

'जो हरि सुआमी तुम देहु सोई हम पावहग।'

आप हमारे मालिक हैं, स्वामी हैं, जो आप हमें देते हैं वही हम पाते हैं। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वो हमारे कर्म से नहीं बल्कि आपकी दया से मिलता है। जैसे मैंने घड़े का उदाहरण दिया। घड़े को सीधा करने का जो छोटा सा काम हमने किया, वह हमारा कर्म है किंतु इस कर्म की वजह से बारिश नहीं होती है। उसमें कोई कॉज एण्ड इफेक्ट रिलेशन या कार्य-कारण सिद्धांत काम नहीं करता है।

सुबह हो गयी, हमने दरवाजे खोले, खिड़कियां खोलीं, पर्दे खिसकाए, इसलिए सूरज नहीं उगा। सूरज तो अपने नियम से उगा है। हां, अगर हम पर्दे न खोलते, दरवाजे बंद रखते और आंखो पर पट्टी बांधकर, कंबल ओढ़कर सोए रहते तो सूरज की रोशनी होने पर भी हम अंधेरे में ही रह जाते। यह काम सूरज का नहीं है कि वो आकर आपके दरवाजे खोले और आपका कंबल खींचे। एक तरह से अच्छा ही है कि सूरज ऐसा नहीं करता वरना पूरा जगत भस्मीभूत हो जाता। अच्छा ही है कि सूरज पृथ्वी के पास नहीं पंहुचता, उसे क्या लेना-देना, तुम उठो कि न उठो।

हम कुछ भी कर लें, कितना भी यत्न कर लें, कितना भी धोखा दे लें, सूरज अपनी ही गति से, अपने ही समय पर निकलेगा। जैसे कोई अपना नाम संगीता रख ले तो जरूरी नहीं है कि उसे संगीत का पूरा ज्ञान हो। हो सकता है कि वह एक पंक्ति भी न गा सके। किसी का नाम रागिनी है, तो जरूरी नहीं कि उसे सब राग आते हों। एक महिला का नाम ऊषा है, पर वह दस बजे सोकर उठती है। ऊषा यानी सुबह, सूर्य उदय के पहले। माता-पिता ने कितनी उम्मीद से नाम रखा होगा? पर वो देवी दस बजे के पहले उठती ही नहीं हैं। सुन्दर बाई नाम की एक महिला है जो देखने में बहुत ही कुरूप है। तो कुछ भी नाम रख लेने से हम बदलेंगे नहीं। जब हमारे छोटे-छोटे कर्मों से हम खुद ही नहीं बदलते तो भला सूरज उगने जैसी महत्वपूर्ण घटना कैसे बदल सकती है। दरवाजे और खिड़की खोलने जैसे कर्म हम कर सकते हैं, परंतु सूरज का उगना, वह हम नहीं कर सकते। हम अपना नाम चाहे रविराज रख लें, चाहे सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, चाहे भानू प्रसाद परंतु फिर भी हम सूरज नहीं उगा सकते।

एक दिन मैंने किसी से पूछा कि चांद और सूरज में कौन ज्यादा महत्वपूर्ण है? कौन ज्यादा मूल्यवान है? तो एक महिला बोली कि निश्चित ही चांद। मैंने कहा क्यों? आपकी चांद सी सूरत है इसलिए? बोली नहीं! चांद रात को अंधेरे में भी रोशनी देता है और सूरज तो दिन में निकलता है जब भरपूर उजाला होता है। सूरज यदि रात को निकले तो बिजली का बिल भी कम आएगा।

नहीं, सूरज हमारे उगाने से नहीं उगता, नहीं तो हम पक्का रात को उगा लेते। अस्तित्व की जितनी भी महत्वपूर्ण घटनाएं है वे सब अपने आप घटती हैं। वे अस्तित्व की तरफ से उपहार हैं, हमारे लिए भेंट हैं। साधना के द्वारा हम स्वयं को उस भेंट के लिए तैयार कर पाते हैं कि हम उसका आनंद ले पाएं। ये हमारा चुनाव है, चाहें तो हम स्वयं को तैयार करें, चाहें तो ना करें। इस बात को खूब अच्छे से समझ लेना। योग और भक्ति को मानने वाले लोगों में सदा से विरोध रहा है, योगी कहते हैं कि योग श्रेष्ठ है और भक्त कहते हैं कि भक्ति श्रेष्ठ है। कौन सही है? कौन गलत है?

योगी मानते हैं कि हम प्रयास करेंगे तो ही योग सिद्ध होगा। भक्त मानते हैं कि हमें कुछ नहीं करना है, जो करेगा वह परमात्मा ही करेगा। दोनों की बातों में आधी-आधी सच्चाई है। आधा सच यह है कि पहले योग साधना होगा और आधा सच यह भी है कि फिर बाद में भक्ति घटित होगी। एक-एक सोपान पर कदम रखना होगा और तब हम तीसरे सोपान की ओर बढ़ सकते हैं, जहां द्वैत मिट जाता है। 'जो हरि स्वामी तुम देह सोई हम पावेंगे।' हे प्रभु जो भी महत्वपूर्ण है सब तुम्हारा दिया हुआ है। वही हम पाते हैं।

'मोहि दूजी नाही ठउर जिसु पहि हम जावहगे।'

मेरे लिए अन्य कोई ठिकाना नहीं है, कोई ठौर नहीं है जहां मैं जा सकूं। परमात्मा यानी संपूर्ण अस्तित्व, आदि और अनंत, दैट इज गॉड। प्रभु, तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ तो है ही नहीं, दूजा ठिकाना कौन सा होगा? क्योंकि जो कुछ है वह सब तुम ही हो।

'मोहि दूजी नाही ठउर जिसु पहि हम जावहगे।

जो हरि भावहि भगत तिना हरि भावहिग।।'

भगवान की ही कृपा हो तो भक्ति का भाव उत्पन्न होता है और हरि के साथ वह भाव जुड़ता है।

'जोती जोति मिलाई जोति रलि जावहगे।'

अब साधना और प्रार्थना के बाद द्वैत का मिट जाना 'ज्योति-ज्योति मिलायी।' हमारी छोटी सी ज्योति उस महाज्योति में मिल जाएगी 'जो उतरल जावेंगे।' दोनों मिलकर एक हो जाएंगे। दीपक अलग है, सूरज अलग है, किंतु क्या उनसे निकलने वाली रोशनी भी अलग-अलग है? वह प्रकाश तो एक ही है, उसमें कोई भेद-भाव नहीं है।

एक कमरे में सौ दिए जलते हों, रोशनी तो एक ही होगी। दीपक अलग-अलग हो सकते हैं पर रोशनी तो एक ही है। ठीक ऐसे ही भिन्न-भिन्न हमारी देह है, भिन्न-भिन्न हमारे मन हैं, किंतु हमारे भीतर जो जीवन ज्योति जलती है वह चेतना एक ही है। वह भीतर की ज्योति पूरे अस्तित्व की महाज्योति से संयुक्त है, जुड़ी हुई है, उसी का हिस्सा है। और जिस दिन अनुभव घटित हो जाता है, हमें पता लग जाता है कि हम अलग-थलग नहीं हैं। हम संपूर्ण अस्तित्व के हिस्से हैं, उस दिन बात बन गयी, वह तीसरी घटना घट गयी। दुई भाव समाप्त हुआ।

'जोती जोति मिलाई जोति रलि जावहगे।

'हरि आपे होइ क्रिपालु आपि लिव लावहिगे।।'

हे प्रभु आप ही करूणा करो तो ही यह बात बनेगी। तो ही आपके प्रति हमारे भीतर प्रेम और भक्ति-भाव उत्पन्न होगा।

'जनु नानकु सरनि दुआरि हरि लाज रखावहिगे।'

कहते हैं नानक, मैं तो एक सामान्य जन हूं, आपके द्वार पर आपकी शरण में आ गया हूं।

'जनु नानकु सरनि दुआरि'

हे प्रभु अब तुम ही लाज रखो, प्रतिष्ठा रखो, मेरे किए तो कुछ भी न हो सकेगा। जब कोई व्यक्ति परिपूर्णता से साधना कर लेता है तब पराभक्ति घटित होती है, उसके पहले नहीं। जब संकल्प को पूरा साध लिया, जो कर सकता था वह कर लिया तब अचानक एक दिन आकस्मिक रूप से समर्पण घटित होता है। याद रखना समर्पण हम कर नहीं सकते। अगर हम करेंगे तब तो फिर अहंकार आ गया कि देखा मैंने सबकुछ प्रभु के चरणों में अर्पित कर दिया। समर्पण तो स्वयं घटित होगा। साधना को उसकी पराकाष्ठा तक ले जाना होगा, जिस दिन यह स्पष्ट हो जाएगा कि इससे आगे मेरे करने से नहीं होगा, उस दिन तुम समर्पित हुए।

समर्पण एक महान घटना है जो स्वयं ही घटती है। हम उसको बलपूर्वक नहीं कर सकते। इसलिए जब भी कोई मुझसे पूछता है कि योग और भक्ति में कौन सा मार्ग चुनें? मैं हमेशा कहता हूं ध्यान और योग का मार्ग चुनो। कोई पूछता है संकल्प और समर्पण के रास्ते पर कौन सा चुना जाए? मैं हमेशा कहता हूं संकल्प को चुनो। क्योंकि जब तुम पूछ रहे हो कि क्या चुनें तो इसका मतलब कि तुम निर्णय लेने वाले हो। संकल्प का रास्ता चुनो। समर्पण का रास्ता नहीं चुना जा सकता। हां एक दिन वह अपने आप समर्पण बनेगा। इसलिए ध्यान और योग के द्वारा किसी ने परम मुक्ति आज तक हासिल नहीं की। ध्यान और योग करते-करते, एक दिन भक्ति-भाव पैदा हो जाता है और अंततः वह भक्ति-भाव, वह प्रेम भाव ही आगे अद्वैत में ले जाता है।

'आपि लिव लावहिगे।'

वह प्रेम प्रभु की दया से ही पैदा होता है।

बुद्ध के जीवन की कहानी आप सब को पता है। छः वर्ष घनघोर साधना की परंतु कुछ बात न बनी। साधना की पूर्ण असफलता पर, अचानक एक दिन बुद्ध ने सब छोड़ दिया। यह छोड़ना भी शिखर पर जाकर ही संभव है, ऐसे बीच में नहीं छोड़ सकते। बीच राह में साधना को छोड़ा तो मन बार बार कहता रहेगा कि हम कर सकते थे लेकिन

हमने पूरा नहीं किया। मन कहेगा कि चलो अब आगे समर्पण कर के देख लेते हैं, नहीं तो अपने बलबूते पर तो चलना ही है। यह पूर्ण समर्पण न हुआ।

बुद्ध को जब पूर्ण असफलता का अनुभव हुआ, जब लगा कि कोई गुंजाइश नहीं बची। उस दिन ही तनाव अपनी पराकाष्ठा पर पंहुचा। अब वे इससे और ज्यादा तनावग्रस्त नहीं हो सकते थे। अगर मैं आपसे कहूं कि जोर से मुट्ठी बांधे और बांधते ही जाएं, बांधते ही जाएं और जोर से, और जोर से तो एक सीमा आ जाएगी, जहां आपकी सारी ताकत खतम हो जाएगी और मुट्ठी स्वतः ही खुलना शुरू हो जाएगी। ये मुट्ठी आपने नहीं खोली, ये अपने आप खुली है।

ठीक ऐसा ही साधना के बाद प्रार्थना का उदय होता है। योग के बाद भक्ति, संकल्प के बाद समर्पण और ध्यान के बाद प्रेम घटित होता है। और अंततः वही अद्वैत में ले जाता है। तो पुनः आपसे कह दूं कि आध्यात्म जगत की तीन घटनाएं हैं- साधना, प्रार्थना और अद्वैत की घटना।

गुरु की फटकार भी मीठी

अखी काढि धरी चरणा तलि सभी धरती फिरि मत पाई।
जे पासि बहालहि ता तुझहि अराधी जे मारि कढहि भी धिआई।
जे गुरु झिड़के त मीठा लागै जे बखसे ते गुर वडिआई।
गुरुमुखि बोलहि सो थाइ पाए मनमुखि किछु थाइ न पाई ।। 26 ।।
पाला ककरु वरफ वरसै गुरसिखु गुर देखण जाई ।। 27 ।।
सभु दिनसु रैणि देखउ गुरु अपुना विचि अखी गुर पैर धराई ।। 28 ।।
अनेक उपाव करी गुरु कारणि गुर भावै सो थाइ पाई ।। 29 ।।
रैणि दिनसु गुर चरण अराधी दइआ करहु मेरे साई ।। 30 ।।
नानक का जीउ पिंडु गुरु है गुर मिलि त्रिपति अघाई ।। 31 ।।
नानक का प्रभु पूरि रहिओ है जत कत तत गोसाई ।। 32 ।।

मैं अपनी आंखें निकालकर गुरु के चरणों में भेंट कर दूंगा, समस्त पृथ्वी पर शायद कहीं गुरु मिल जाए। हे प्रभु! यदि तुम मुझे पास बिठा लो, तो तुम्हारी अराधना करता रहूं (यदि तुम मुझे धक्के देकर निकाल दो, तो भी मैं तुम्हारा ही स्मरण करूंगा। यदि गुरु किसी कारणवश प्रताड़ित करे, तो उसकी वह प्रताड़ना मुझे प्यारी लगती है। यदि गुरु मुझ पर कृपादृष्टि करता है, तो यह गुरु का उपकार है। (मेरी कोई विशेषता नहीं) ।। 25 ।। गुरु के सान्निध्य में रहनेवाले मनुष्य जो वचन बोलते हैं, गुरु उनकी पुष्टि करता है। स्वेच्छाचारी व्यक्तियों का वचन स्वीकृति नहीं होता ।। 26 ।। पाला, भंयकर शीत, बर्फ कुछ भी क्यों न पड़ता रहे, गुरु का सच्चा शिष्य गुरु का दर्शन करने के लिए अवश्य जाता है।। 27।। मैं भी दिन-रात प्रतिपल अपने गुरु का दर्शन करता रहता हूं। गुरु के चरणों को अपनी आंखों में बसाए रहता हूं ।। 28 ।। यदि मैं गुरु को प्रसन्न करने के लिए अनके यत्न भी करूं, तो वही यत्न स्वीकृत होता है जो गुरु को उपयुक्त लगता है।। 29 ।। हे पति-प्रभु! मुझ पर कृपा करो, ताकि मैं दिन-रात्रि प्रतिपल गुरु के चरणों का स्मरण करता रहूं ।। 30 ।। (गुरु) नानक की आत्मा को गुरु का आश्रय है, उसकी देह गुरु के चरणों में (समर्पित) है। गुरु से भेंट करके ही तृप्ति मिलती है।। 31 ।। (गुरु-कृपा द्वारा ही यह सूझ होती है कि) नानक का प्रभु, सृष्टि का मालिक सर्वत्र व्यापक है।।

प्यारे मित्रों, नमस्कार।

इस शबद में कहा गया है कि मैं अपनी आंखें निकालकर गुरु चरणों में भेंट कर दूंगा। समस्त पृथ्वी पर शायद मुझे कोई गुरु मिल जाए। हे प्रभु अगर तुम मुझे अपने पास बिठा लो तो मैं तुम्हारी आराधना करूंगा, स्मरण करूंगा और गुरु यदि किसी कारणवश मुझे प्रताड़ित करें तो उनकी वह प्रताड़ना मुझे बहुत प्यारी लगती है। यदि गुरु मुझ पर कृपा दृष्टि करता है तो वह गुरु का उपकार है, यह मेरी कोई विशेषता नहीं, उसका उपकार है। गुरु के सानिध्य में रहने वाले मनुष्य जो वचन बोलते हैं गुरु उनकी पुष्टि करता है, स्वेच्छाचारी व्यक्तियों का वचन स्वीकृत नहीं होता है।

चाहे भयंकर पाला या शीत ही क्यों न पड़े, गुरु का सच्चा शिष्य गुरु के दर्शन करने के लिए अवश्य जाता है। मैं भी प्रतिपल, प्रतिदिन अपने गुरु का दर्शन करता रहता हूं। मैं गुरु को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न भी करूं तो भी वही प्रयत्न स्वीकृत होते हैं जो गुरु को उपयुक्त लगते हैं। हे पति प्रभु, तुम मुझ पर कृपा करो ताकि मैं दिन-रात, प्रतिपल गुरु के चरणों का स्मरण करता रहूं। नानक की आत्मा को गुरु का आश्रय है, उनकी देह गुरु चरणों में अर्पित है, गुरु के चरणों में उन्हें तृप्ति मिलती है, गुरुकृपा द्वारा ही उन्हें यह सूझ उत्पन्न होती है कि प्रभु सृष्टि का मालिक है, सर्वव्यापक है।

सभी संतों ने सद्गुरु की इतनी प्रशंसा क्यों की है, इतना महत्व क्यों बताया है? इसके कुछ कारणों की चर्चा हम करेंगे। भिन्न-भिन्न शब्दों में, अलग-अलग उपमाओं में सभी संतों ने गुरु की महत्ता को स्वीकार किया है। मनुष्य जब धर्म की खोज करता है, उसके भीतर अध्यात्म के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो सर्वप्रथम वह अपने आसपास के लोगों की नकल करता है। बचपन से उसने जो देखा कि अन्य लोग धर्म के नाम पर क्या कर रहे हैं? मंदिर जा रहे हैं, चर्च जा रहे हैं, वहां जाकर हाथ जोड़ते हैं, प्रार्थना करते हैं, साल में दो-चार धार्मिक पर्व मना लेते हैं। अधिकांशतः धर्म के नाम पर यही सब चल रहा है।

तो जब भी हम धर्म में उत्सुक होते हैं हम भी यही करने लगते हैं क्योंकि हमने पहले भी नकल के द्वारा ही बहुत सी चीजें सीखी हैं। हमारा धर्म भी नकली होता है। जिस समाज में जो चल रहा है वहां के बच्चे बड़े होते-होते वैसा ही सीख जाते हैं और वैसा ही करने लगते हैं। कोई मुस्लिम समाज में पैदा हुआ है तो वह वहां का रवैया अपना लेगा, कोई ईसाई समाज में पैदा हुआ है तो वह वैसा हो जाएगा, कोई हिन्दू घर में पैदा हुआ है या जैन घर में पैदा हुआ है तो वह हिन्दू अथवा जैन जैसा हो जाएगा, कोई सिक्ख परिवार में जन्मा है तो वह देखता है कि सब लोग गुरुद्वारे जाते हैं और अपना माथा टेकते हैं, पांच मिनट बैठते हैं फिर अपने घर को लौट आते हैं तो वह भी वैसा ही करने लगेगा।

गुरुद्वारे में मूर्तिपूजा नहीं हो रही तो सिक्ख के मन में मूर्ति के प्रति कोई सम्मान नहीं होगा, एक हिन्दू के मन में होगा क्योंकि उसने बचपन से मूर्ति पूजा देखी है, वास्तव में यह दोनों ही नकल कर रहे हैं। बचपन से जैसा उन्होंने देखा वैसा कर रहे हैं। हम समाज के अनुसार कपड़े पहनने लगते हैं, समाज के अनुसार फैशन करने लगते हैं। अपने परिवार की खान-पान की व्यवस्था को हम स्वीकार कर लेते हैं। हमारे आसपास के तौर-तरीके ही हमारे जीवन का भी हिस्सा बन जाते हैं। हमने भाषा भी नकल करके सीखी, जिस इलाके में जो भाषा बोली जाती थी वही बच्चे भी सीख गए, सभी चीजें नकल के द्वारा सीखी गईं। हमारा धर्म, हमारा ईश्वर, हमारे क्रियाकाण्ड जिन्हें हम आध्यात्मिक कहते हैं वह भी दूसरों से सीखी हुई उधार बातें हैं। निश्चित ही अन्य चीजों में तो ठीक है, जैसे भोजन करने से शरीर का पोषण हो जाएगा किन्तु धर्म के क्षेत्र में, वैसा ही व्यवहार करने से कोई धार्मिक नहीं हो जाएगा।

फिर कुछ लोगों को यह अनुभव होना शुरू होता है कि मैं जो कर रहा हूं, जैसे हर रविवार को चर्च जाता हूं, वहां पादरी का भाषण सुन लेता हूं लेकिन इससे मेरे जीवन में कोई परिवर्तन तो हुआ नहीं है। जैसे मंदिर चला जाता हूं, मूर्ति के सामने झुकता हूं, प्रार्थना करता हूं, पंडित जी से प्रसाद लिया और वापिस चला आता हूं, यह एक रूटीन बन गई है, यांत्रिक रूटीन, न तो आत्मा का पता चल रहा, न परमात्मा का पता चल रहा है, न ही जीवन में कुछ सुख-शांति हो रही है, कुछ भी तो नहीं हो रहा है। जब किसी को यह अहसास होना शुरू हो जाता है तब वह खोजबीन शुरू करता है कि अब क्या किया जाए?

तो दूसरा जो रास्ता दिखाई देता है वह है शास्त्र अध्ययन करो, ग्रंथों की व्याख्याएं सुनो, पढ़ो, खुद पता लगाने की कोशिश करो कि क्या है सत्य? यहां दो मुख्य धाराएं हो जाती हैं- एक को हम कहें मूर्तिपूजा जो पत्थर की मूर्ति पूज रहे हैं और दूसरे वे जो कागज की पूजा कर रहे हैं। किताबों को पढ़ने वाले, चिंतन-मनन करने वाले, दार्शनिक किस्म के लोग जो सिद्धांतों में, शास्त्रों में उलझ गए हैं। धर्म के नाम पर यह दो नावें चल रही हैं, एक पत्थर की नाव और एक कागज की नाव। निश्चित ही इस भवसागर में न पत्थर की नाव चलने वाली है और न ही कागज की नाव चलने वाली है, दोनों डूबने ही वाली हैं।

लेकिन यह पता लगाते-लगाते भी सालों बीत जाते हैं, जन्मों बीत जाते हैं और शायद ही किसी विरले व्यक्ति को बामुश्किल समझ में आता है कि यह कागज की नाव तो कहीं पहुंचा ही नहीं रही है। हां, बौद्धिक खुजलाहट मिट गई, बड़े सिद्धांत पता हो गए, बड़े शास्त्र पता हो गए, कंठस्थ हो गए जिससे अब हम दूसरों को उपदेश दे सकते हैं कि फलां उपनिषद में यह लिखा है, फलां मुनि ने यह कहा था लेकिन बस बातें ही

बातें हैं, स्वयं को तो कुछ भी नहीं हुआ है। हम कितना ही उपदेश देते रहें कि उपनिषद ने कहा है- 'अहं ब्रह्मास्मि', उससे मुझे यह तो पता नहीं चला कि मैं ही ब्रह्म हूं।

चर्चा करने के लिए ठीक है, समय बिताने के लिए ठीक है लेकिन उसका कुछ भी अनुभव तो हुआ नहीं है। लेकिन यह समझ आने में भी बहुत समय बीत जाता है और कोई विरला प्रज्ञावान व्यक्ति ही इस दूसरी बात से मुक्त हो पाता है। अब इसने देख लिया कि न तो मंदिर जाना धर्म है और न ही शास्त्र, श्लोक और वेद-पुराण काम आए। कुछ समझ में ही नहीं आता है क्योंकि कई-कई शास्त्रों में कई-कई प्रकार की बातें लिखी हैं, इसमें से क्या सच मानो और क्या झूठ? यदि सच मान भी लो तो भी कुछ अनुभव तो होता नहीं है। हम वैसे के वैसे ही रह जाते हैं। कुछ लोग हैं जिनको फिर तड़प पैदा होती है कि अब और क्या किया जाए?

फिर तीसरा रास्ता दिखाई देता है कि अब कुछ साधना, कुछ तपस्या, कुछ श्रम, कुछ मेहनत करनी होगी। लोग घर को छोड़कर त्यागी हो जाते हैं, सन्यासी हो जाते हैं और जाकर गुफाओं में रहने लगते हैं, मंदिर और मठों में वास करने लगते हैं, समाज से दूर चले जाते हैं कि प्रभु की खोज शायद वहां होगी। अपने आपको कष्ट देते हैं, उपवास रखते हैं, शरीर को तकलीफ देते हैं परंतु उससे भी कुछ नहीं होता। जो जिंदगी के सामान्य सुख मिल रहे थे वे भी खो गए और कोई आनंद भी नहीं मिला। आदमी तो वही का वही है, जो घर में बैठा था वही गुफा में बैठा है फर्क तो कुछ पड़ा नहीं।

मैंने सुना है एक आदमी तीस साल तक हिमालय की गुफाओं में तपस्या करता रहा। कंदराओं में बैठे-बैठे उसको लगा कि अब मैं शांत हो गया हूं। ऐसे ही तीस साल गुजर गए। चित्त शांत है, बड़ी उपलब्धि हो गई है, अब पहले जैसी अशांति न रही, पहले भयानक क्रोधी था। उसने सोचा कि अब जाऊं संसार की तरफ, अच्छा मुहूर्त आ रहा था, कुंभ मेला लगने वाला था। उसने सोचा कि अब कुंभ के मेले में ही जाऊं, गंगा स्नान करूंगा, जरा लोगों को पता भी तो चले कि मैं कितना शांत हो गया हूं। उतरा नीचे पहाड़ से और गंगा स्नान के लिए कुंभ मेले में पहुंचा, वहां भीड़-भाड़ में किसी आदमी का पैर इसके पैर पर पड़ गया।

अचानक इसके मुंह से गंदी गालियां निकलीं, उसकी कॉलर पकड़कर धक्का मारकर जमीन पर पटका, उसकी छाती पर खड़ा हो गया और कहा कि हरामजादे जानता नहीं मैं कौन हूं? जिंदा नहीं छोड़ूंगा, किसके पैर पर तूने पैर रखा है? तीस साल का तपस्वी हूं। फिर अचानक उसे याद आया कि यह क्या हुआ, मैं तो सोचता था कि मेरा क्रोध खत्म हो गया, अहंकार खत्म हो गया, मैं शांत हो गया हूं, विनम्र हो गया हूं, यहां कुंभ के मेले में आकर तो पांच मिनट में वह तीस साल की सब तपस्या गायब हो गई। इसका मतलब बेकार में समय गंवाया, हम धोखे में रहे, वहां कोई दूसरा था ही

नहीं जिस पर नाराज हो सको तो गुस्सा आएगा कहां से?

गुस्सा होने के लिए किसी दूसरे का होना जरूरी है। जो लोग घर-परिवार छोड़कर भाग गए, दुकान और मकान छोड़कर भाग गए, वह समझ रहे हैं कि लोभ से मुक्त हो गए हैं वह गलती में हैं, वहां जंगल में धन-पैसा है ही नहीं तो लोभ होगा कैसे, वहां स्त्री है ही नहीं तो तुम्हें लगेगा कैसे कि कामवासना से मुक्त हो गए, वह तो संसार में रहकर पता चलता है। वहां जंगल में कोई तुम्हारा अपमान नहीं करता, कोई पैर पर पैर नहीं रखता तो गुस्सा कैसे आएगा? क्योंकि दूसरा है ही नहीं। उस सन्यासी ने अपनी जीवन कथा में लिखा है कि जैसे अचालक मेरी नींद टूट गई कि मैं तीस साल से सो रहा था और जाने क्या समझ रहा था और वह सब सपना ही था।

मेरे भीतर सबकुछ वैसा का वैसा ही है, आग जैसा भड़कने वाला क्रोध वैसा ही है। अचानक जैसे ही यह ख्याल आया उसने उस आदमी को वापिस उठाया, उससे क्षमा मांगी और कहा कि धन्यवाद जो तुमने मेरे पैर पर अपना पैर रखा, तुमने मेरा सही आत्मदर्शन करवा दिया। अतः जो तपस्वी हैं और त्यागी हैं, नाना प्रकार की योग साधनाएं कर रहे हैं, कई परिव्राजक हो गए हैं, कोई गंगा नदी का परिभ्रमण कर रहे हैं, भांति-भांति के कष्टों में जी रहे हैं और सोचते हैं कि स्वयं को कष्ट देकर भगवान मिल जाएगा, पर इस भूल के प्रति सचेत होते-होते भी वर्षों लग जाते हैं।

क्या भगवान कोई पागल है कि आपके कष्ट से खुश होकर आपके पास आ जाएगा? हम परमात्मा को परम माता-पिता कहते हैं। जरा सोचो कि यदि कोई मां अपने बच्चे के लिए स्वादिष्ट भोजन पकाए और बच्चा वह खाना न खाए बल्कि एक पैर पर खड़ा हो जाए और कहे कि हम तो 'खड़े श्री बाबा' हैं और हमारा उपवास है हम, नहीं खाएंगे। तो इस बच्चे का क्या करोगे? दो झापड़ लगाओगे उस नालायक को। मां बच्चे को प्रेम करती है तो वह चाहेगी कि उसे ठीक से खाना मिले।

मां उसको दो चांटे लगाएगी और जबरदस्ती खाना खिलाएगी, तब उसकी अक्ल ठिकाने आएगी। मां ऐसे हठी बच्चे से खुश नहीं होगी। बच्चा स्वस्थ हो, सुखी हो, खुश हो, आराम से रहे तो ही मां खुश हो सकेगी क्योंकि मां उससे प्रेम करती है। परमात्मा हमारी परम मां है, परमपिता है, क्या परमात्मा का दिमाग खराब है कि ऐसे हठी और त्यागियों-तपस्वियों से प्रसन्न होगा?

परमात्मा भी सोचेगा कि इन लोगों का दिमाग खराब है जो इतने सुंदर-सुंदर घर-मकान छोड़कर गुफाओं में जा रहे हैं। चिड़िया के पास घोंसला बनाने की बुद्धि है, परमात्मा ने मनुष्य को भी अपनी सुख-सुविधा का इंतजाम करने की बुद्धि दी है, लेकिन मनुष्य स्वयं को कष्ट दे रहा है। कांटों की सेज पर लेटा है। अगर मैं परमात्मा की जगह

होता तो इस व्यक्ति को वरदान देने की बजाय पागलखाने में भर्ती करवा देता। भाई! कांटों की सेज पर क्यों लेटे हो? और ठीक से खाते-पीते क्यों नहीं, भूखे मरने की क्या जरूरत है?

अगर भूखे मरने से भगवान मिलते तब तो धन्यभागी हैं वे लोग जो अकालग्रस्त क्षेत्रों में रहते हैं। प्रभु की बड़ी कृपा है उन पर, सबको भगवान मिल जाता होगा। कबीर साहब ने ऐसे लोगों पर खूब व्यंग किया है, फरीद साहब ने भी ऐसी ही बात कही है, बुल्लेशाह ने भी ठीक यही कहा है कि अगर गंगा स्नान से परमात्मा मिलता तो सभी मछलियों को, मेंढ़कों को, मगरमच्छों को भी मिल गया होता क्योंकि वे बेचारे हमेशा ही गंगा में रहते हैं, साधु-महात्मा तो कभी-कभी जाते हैं गंगा स्नान करने और पांच मिनट में बाहर भी निकल आते हैं।

बुल्लेशाह कहते हैं कि अगर जंगल जाने से ईश्वर मिलता है तो शेर, चीता वगैरह तो जंगल में ही रहते हैं, उनको मिल गया होता। यह सब बेहूदी बातें हैं, मगर यह समझ में आते-आते भी वर्षों बीत जाते हैं। पहले तो सामान्य धर्म मंदिर, मस्जिद, चर्च वाला उससे छुटकारा मुश्किल। फिर दूसरे चक्कर में किताबों और ग्रंथों के चक्कर में फंसो वह भी बड़ा चक्कर है। बड़े विचित्र-विचित्र दार्शनिक सिद्धांत हैं उसका कोई ओर-छोर हाथ में नहीं आता, फिर तो पता लगाना ही मुश्किल है कि क्या सही है और क्या गलत और इतनी जटिल बातें हैं जिनको सुलझाना कोई हंसी-खेल नहीं है। उसमें जो फंसता है वह बुरी तरह से फंस जाता है। फिर तीसरा चक्कर शुरू होता है धर्म के नाम पर त्याग-तपस्या का अपने आपको दुख देने का।

बड़ी विचित्र बात है, चले थे परमानंद की खोज में, सच्चिदानंद की खोज में और दुख से शुरू कर रहे हैं। भाई जिस काम के लिए जा रहे हो उसी से मिलता-जुलता कदम भी तो उठाओ। अगर हम महासुख सच्चिदानंद को पाने जा रहे हैं तो पहला कदम कम से कम सुखदायी तो हो। जैसे अगर हम किसी नदी की तरफ जा रहे हैं तो कम से हवा में ठंडक आनी तो शुरू होनी चाहिए। ठीक है कि नदी अभी दिख नहीं रही है लेकिन अगर हवाओं में ठंडक आ गई तो समझो कि हम ठीक दिशा में जा रहे हैं।

अगर हम किसी बगीचे की तरफ जा रहे हैं और हमने सुना है कि वहां बहुत किस्म के फूल खिले हैं तो ठीक है कि अभी बगीचा दूर है लेकिन अगर हवाओं में फूलों की महक आ गई तो कम से कम प्रमाण तो मिला कि हम ठीक दिशा में जा रहे हैं। हम सच्चिदानंद की तरफ जा रहे हैं और जिंदगी में दुख बढ़ता जा रहा है, न हवाओं में ठंड आई, न महक आई, इसका मतलब हम गलत दिशा में जा रहे हैं, हम महादुख की तरफ जा रहे हैं। यह तो दिशा ही गलत हो गई।

तो इन बेचारे त्यागी, तपस्वियों को कुछ भी नहीं मिला। संसारी के पास कम से कम कुछ तो सुख था, इनका वह भी समाप्त हो गया। लेकिन अब अपना रोना रोएं किससे? कहने में भी शर्म आती है कि हम बुद्धू बन गए और वह लोग जो इनके पैर छू रहे हैं उनसे कैसे कहें कि हमसे बेहतर तो तुम्हीं हो? लेकिन अब उनको प्रतिष्ठा मिल रही है, इज्जत मिल रही है तो छोड़ भी नहीं सकते।

जो लोग जंगल में तपस्या करने भाग गए थे, लोग उनके पैर छू रहे हैं अगर यह तपस्वी लोग फिर आकर अपनी दुकान चलाना चाहें तो लोग इनको जूते मारेंगे कि महाराज भ्रष्ट हो गए हैं। इनकी पत्नी ही इनको नहीं स्वीकारेगी, वह कहेगी कि अब तुम महात्मा ही बने रहो। इनके बच्चों को यह कहने में शर्म आएगी कि हमारे महात्मा पिता जी वापिस लौट आए हैं। सब कहेंगे कि अब एक बार त्यागी हो गए हो तो त्यागी ही बने रहो।

अगर यह सज्जन किराने की दुकान खोल लें तो गांव के लोग इनसे किराना नहीं खरीदेंगे कि यह तो भ्रष्ट आदमी है। योग भ्रष्ट हो गया है, दस साल तक सन्यासी रहा और फिर आकर संसारी हो गया, इसको जूते मारो। जो पहले फूल-माला पहना रहे थे अब वे ही जूतों की माला पहनाएंगे। इसलिए अब यह लौट के भी नहीं आ सकते, यह जाएं तो जाएं कहां? मेरी मुलाकात ऐसे सन्यासियों से होती रहती है। भिन्न-भिन्न धर्म के लोग साधु-सन्यासी और जैन मुनि हमसे मिलते रहते हैं जो कि अकेले में अपनी व्यथा कहते हैं कि पता नहीं क्या हो गया? अब हम करें तो क्या करें?

अगर इन सब साधुओं को कोई यह आश्वासन दे दे कि आप वापिस संसार में लौट आओ और पूरे सम्मान से घर गृहस्थी में रहो। यह हमारा वादा है कि तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी तो शायद अधिकांश साधु-साध्वी तुरंत ही लौट आएंगे। एकांत में उन सब की यही इच्छा है, पर दुनिया के डर से चुपचाप रहते हैं।

हिंदु, जैन, ईसाई और अन्य धर्मों में कई ऐसे उदाहरण हैं कि बीस-बीस साल से लोग बह्रमचर्य की साधना कर रहे थे और अचानक एक दिन किसी के साथ भाग गए और शादी कर ली, यह क्या चल रहा है धर्म के नाम पर? दूसरी ओर उन धर्मों के कुछ ठेकेदार इन दोनों को ढूंढने लगते हैं कि मिल जाएं तो दण्ड दें... ये ठेकेदार वही लोग हैं जो 'अहिंसा परमो धर्मः' का नारा दोहराते रहते थे। आज एकदम से हिंसा पर उतारू हो जाएंगे। अतः यदि इनको कोई पक्का आश्वासन दे दे कि आप निश्चिंत होकर लौट आओ, हम आपकी जिम्मेवारी लेते हैं, आपको कोई तकलीफ नहीं होने देंगे, आप वापिस अपनी घर-गृहस्थी को संभाल लो, तो लगभग सौ परसेंट लोग लौट आएंगे, तुरंत लौट आएंगे। क्योंकि उन सबको यह अक्ल आ गई है कि जंगल जाने से कष्ट ही कष्ट मिला है और तो कुछ मिला नहीं है जबकि गए थे आनंद की खोज में। अतः यह

तीन प्रकार के धर्म के चक्कर हैं।

बड़ी मुश्किल से कोई बुद्धिमान आदमी जागृत होता है कि यह सब मूढ़तापूर्ण है लेकिन अब सवाल उठता है कि करो तो क्या करो? वह जो भीतर प्यास है परमात्मा को पाने की, सत्य को जानने की वह तो अभी भी मौजूद है, वह तो बुझी नहीं तो अब क्या करो? तब एक बात सूझती है कि अब उन लोगों की खोज करो जो शांत हैं, जो आनंदित हैं, जिनका जीवन प्रफुल्लित है, जहां सच्चिदानंद की कुछ झलक दिखाई देती है उनको खोजो। अब ऐसे व्यक्तियों को खोजो और उनका संग-साथ करो।

किताबों से पूछ लिया बात न बनी, अब तो कोई साक्षात् उदाहरण अगर ऐसा हो जिसको देखकर लगे कि हां कुछ आलौकिक भी है दुनिया में, कुछ आनंद भी है दुनिया में, तो अब उसी से पूछो, तब गुरु की खोज शुरू होती है। अब गुरु हर गली-कूचे में तो बैठे नहीं हैं, गुरुओं के नाम पर भी भारी जंजाल है। जो लोग प्रसिद्ध हैं, उनकी प्रसिद्धि की बात भी अलग-अलग हैं और कोई जरूरी नहीं कि उनको आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान हो ही गया हो। कोई महान कथावाचक है, खूब अच्छी व्याख्या करता है वेदपुराणों की, रामायण और महाभारत के किस्से सुनाता है, ठीक है अच्छा है कि मनोरंजन करता है लोगों का, पर इससे ब्रह्मज्ञान का तो कोई संबंध नहीं है।

आज कल जो काम टीवी और फिल्म वाले कर रहे हैं, लोगों के मनोरंजन का, पुराने जमाने में यही काम कथावाचक किया करते थे। कथा सुनकर होगा क्या? आज भी ऐसे कथावाचक मौजूद हैं जो कि बड़े प्रसिद्ध हैं, लाखों की भीड़ उनके पास मौजूद रहती है, चल रही है रामलीला की कथा, हजारों साल हो गए रामायण की कथा सुनते-सुनते, कान पक गए हैं लेकिन फिर भी बैठे हैं नालायक, एक से एक नालायक।

दूसरे गुरु हैं स्वास्थ्य बेचने वाले, योगासन, प्राणायाम सिखाने वाले। अगर योग से स्वास्थ्य मिलता है तो अच्छी बात है, मैं स्वास्थ्य के पक्ष में हूं, मैं कोई दुश्मन नहीं हूं स्वास्थ्य का लेकिन स्वास्थ्य कितना भी अच्छा हो जाए, वह अध्यात्म तो नहीं हो जाएगा। अगर योग से स्वास्थ्य मिलता है तो वह अस्पताल का एक डिपार्टमेंट होना चाहिए जैसे फिजियोथेरेपी है वैसा। हम फिजियोथेरेपी को आध्यात्मिक तो नहीं कहते और फिजियोथेरेपिस्ट को हम धर्मगुरु तो नहीं कहते, डॉक्टर को हम धर्म गुरु तो नहीं कहते, डॉक्टर-डॉक्टर होता है। अगर योग से वैसा होता है तो सुंदर बात, अगर बिना दवाइयों के स्वास्थ्य हासिल हो जाए तो बहुत अच्छा, जितने भी उपाय हैं स्वास्थ्य हासिल करने के सुंदर किन्तु वह धर्म तो नहीं हो जाएगा।

तो पहले कथावाचक प्रसिद्ध हैं, दूसरे स्वास्थ्य दाता प्रसिद्ध हैं और तीसरे चमत्कारी बाबा प्रसिद्ध हैं। कितनी महिलाएं काले रंग का बैग अपने पास रखती हैं कि

कृपा होगी। अब काला बैग खोलकर जो चमत्कार होने का इंतजार कर रहे हैं, इनमें कितनी बुद्धि होगी? और जो इनसे बैग खुलवा रहे हैं उनमें कितनी प्रज्ञा होगी?

एक लड़की आई और बोली कि बाबा बार-बार मोबाइल का बैलेंस खत्म हो जाता है। बाबा ने पूछा ब्वायफ्रेंड है? लड़की ने कहा नहीं है। बाबा बोले, हर हफ्ते एक बनाओ, वह रिचार्ज करवाता रहेगा। एक मित्र रांची से आए थे बता रहे थे कि पिछले एक साल में रांची शहर में दो करोड़ रुपए के काले बैग बिके हैं। अब दुकानों में किसी और रंग का बैग मिलता ही नहीं है, दो करोड़ रुपए के काले रंग के बैग सिर्फ एक शहर में बिके हैं। लेकिन यह जो भीड़ लगी है, इस भीड़ की बचकानी बुद्धि पर तरस खाओ। यह भीड़ भय और लोभ के कारण यहां जमा हुई है और चमत्कारी बाबा उनका शोषण कर रहे हैं। लेकिन चमत्कारी बाबा की भीड़ बनी ही रहेगी। एक चमत्कारी बाबा खत्म होता है तो दो चार महीने के बाद दूसरा बाबा आ जाता है क्योंकि लोगों को जरूरत है। लोगों को बड़ी तसल्ली मिल जाती है कि बस कृपा हो जाएगी, अब तो चमत्कार होगा ही होगा, पक्का होगा। मानसिक राहत मिलती है।

जैसे कोई छोटा बच्चा भूखा होता है और अपना ही अंगूठा चूसने लगता है, निश्चित रूप से इस अंगूठे से कोई भोजन तो नहीं मिलेगा किन्तु राहत मिलती है और नींद लग जाती है। यही बहुत बड़ी बात है? तो गुरुओं के नाम पर कथावाचक, स्वास्थ्य दाता, चमत्कारी बाबा प्रसिद्ध हैं। गुरु की खोज में निकलो तो पहली मुलाकात इन पाखण्डियों से होगी, जाओगे कहां, ढूंढ़ोगे कहां? इनका पूरा काम ही असत्य पर आधारित है, चाहे नाम सत्य सांई बाबा ही क्यों न हो? अब कोई पुरुष कहे कि मैं सत्य पुरुष हूं, अब तो शक पैदा हो जाएगा कि मामला कुछ गड़बड़ है। कोई महिला सड़क पर चलती जा रही हो और कहती जा रही हो कि खबरदार मुझ पर शक किया, मैं पूर्ण नारी हूं, मैं सही मायने में स्त्री हूं।

अब तो एकदम से शक पैदा हो जाएगा कि नारी है तो फिर कहने की जरूरत क्या है? तब जरूर लगेगा कि यह मेल है? या फीमेल है? या ईमेल है? इसी तरह जब कोई अपने नाम में सत्य जोड़े तो समझ जाना कि पक्का सत्य ही नहीं होगा।

सद्‌गुरु की खोज बड़ी मुश्किल है और इसलिए सद्‌गुरु की इतनी महत्ता है। धर्म के इतने जंजाल हैं कि इनसे उबरकर कोई ही गुरु को खोज पाता है। सद्‌गुरू ऐसा व्यक्ति है जिसने स्वयं अपनी अंतरात्मा को जाना है और दूसरे को भी जो जानने में मदद करता है। यहां एक और मुश्किल है, कई बार ऐसा हो सकता है कि जिसने स्वयं को जान लिया है, परमानंद को पा लिया है, आवश्यक नहीं है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति को भी सिखाने में उत्सुक हो।

कई बार ऐसा भी होगा कि आपको बिल्कुल सही व्यक्ति मिल जाएगा लेकिन वह मौन में है तो क्या करोगे? वह अपने आनंद में मस्त है, उसको इतना भी समय नहीं है कि वह किसी को बता सके? बहुत से सद्‌गुरुओं के साथ ऐसा ही हुआ है कि जब वे शांत हो गए तो फिर इतने शांत हो गए कि उनको खोजना ही मुश्किल हो गया कि कौन हैं और कहां हैं? वह मिल भी जाएं तो कुछ बताते ही नहीं हैं।

ओशो की मुलाकात एक ऐसे ही सद्‌गुरु से हुई थी। उन्होंने 'स्वर्णिम बचपन' नामक किताब में उनका वर्णन भी किया है। उनका नाम था 'मग्गा बाबा'। वह हमेशा मौन ही रहते थे, कभी कुछ बोले ही नहीं, यहां तक कि उनका अपहरण भी हो जाता था, लोग अपनी गाड़ियों में बैठाकर उनको ले जाते थे, लेकिन वह कुछ नहीं कहते थे। वे पूछते ही नहीं थे कि कौन है, कहां ले जा रहे हैं? जबलपुर में यह प्रचलित था कि मग्गा बाबा जिस मोहल्ले में रहेंगे वहां पर सब कुछ ठीक रहेगा। वह भिखारी की तरह रहते थे क्योंकि उनके पास कुछ था ही नहीं।

एक मग था उसी से वह चाय पीते थे, उसी से वह पानी पीते थे, उसी में कोई भोजन डाल दे तो खा लेते थे। उनका नाम भी किसी को नहीं पता था। जब वह बोलते ही नहीं थे तो पता कैसे चले कि नाम क्या है? उनके मग की वजह से लोग उन्हें मग्गा बाबा कहने लगे। जब उनके पास रात में कोई नहीं होता था तब ओशो उनसे मिलने जाते थे। तब उन्होंने ओशो से एक दिन कहा कि तुम एक चीज का ख्याल रखना, जब महाआनंद घटित होता है तो फिर बोलने का मन नहीं होता, लेकिन अगर साढ़े तीन साल से ज्यादा मौन रहे तो फिर कभी न बोल पाओगे।

तो ठीक है ऐसा मौन आएगा लेकिन ऐसे घने आनंद की परिधि पर कौन आए? कौन लोगों से मिले? कौन लोगों को समझाए? अपनी संपदा मिल गई उसका मजा लें कि दूसरों के साथ सिर पकाएं? तो मग्गा बाबा ने ओशो से यह कहा था और ओशो ने यह बात उस दिन बताई, जब उन्होंने अपना साढ़े तीन साल का मौन तोड़ा। तब उन्होंने कहा कि मैं इस कारण से आज मौन तोड़ रहा हूं कि अब वह सीमा आ गई है, अब मैं इसके आगे अगर मौन रहा तो फिर कभी नहीं बोल पाऊंगा, मग्गा बाबा ने मुझे चेताया था।

मेहर बाबा करीब चालीस साल मौन रहे। कई बार उन्होंने घोषणा की कि बोलूंगा, बस वह समय आ रहा है जब मैं बोलूंगा, वह दिन आ जाता और फिर अगला समय मिल जाता, वह जिंदगी भर कभी ही नहीं बोले। परमानंद को तो उन्होंने पा लिया लेकिन ऐसे डूब गए स्वयं में कि दूसरों को बताने की स्थिति में ही नहीं हैं। इन सारे कारणों से अब आप समझ सकते हैं कि किसी सद्‌गुरु से मुलाकात, उससे मिलन कितना कठिन है, कैसे सौभाग्य की बात है और मिल जाए तो उससे हम कुछ सीख

पाएं, कुछ समझ पाएं, उसके चरणों में झुक पाएं यह भी कितना कठिन है।

यदि सद्गुरु मिल भी जाए और वह सिखाने में भी उत्सुक हो तो यह जरूरी नहीं कि जो सामने आया है उसके मन में भी सीखने की प्यास हो। जरूरी नहीं है कि सद्गुरू से उसका तालमेल बैठे, क्योंकि गुरु विद्रोही प्रकार का होगा और वह तुम्हारे मन की धारणाओं पर चोट करेगा। तुम्हें सत्य की दिशा में ले जाना है और तुम असत्य से घिरे हुए हो तो सद्गुरू चोट करेगा। इस चोट के कारण तालमेल नहीं हो पाएगा, उसकी बातें सुनकर ऐसा लगेगा कि वह हमारे सिर में डंडा मार रहा है, चोट पहुंचा रहा है, तुम जिसको सच जानते हो उसको वह झूठ कह रहा है। अब जब मैंने कहा पत्थर की नाव और कागज की नाव तो बुरा तो लगा होगा, जब मैं त्याग-तपस्या की हंसी उड़ा रहा हूं और गुरुओं का मजाक उड़ा रहा हूं तो बुरा तो लगेगा क्योंकि आपके मन में उनका आदर रहा होगा।

सद्गुरु की बात हमें अच्छी नहीं लगेगी। अब एक नई मुसीबत है, सद्गुरु मिल भी जाए तो जरूरी नहीं कि हमारे भीतर शिष्यत्व की भावना जागे। हो सकता है कि हम उससे नाराज हो जाएं, खफा हो जाएं और कभी लौटकर उसके पास न आएं। इसलिए गुरु-शिष्य का मिलन अत्यंत दूभर घटना है और बामुश्किल करोड़ों में से एक-दो के साथ ही संभव है। इसी कारण, गुरु की इतनी महिमा कही गई है। इसी वजह से शिष्य यह कह रहा है कि गुरू मुझे मारे भी, झिड़के भी, तो भी मैं जानता हूं कि वह मेरे भले के लिए ही कर रहा है, वह झिड़कियां भी मुझे स्वीकार हैं।
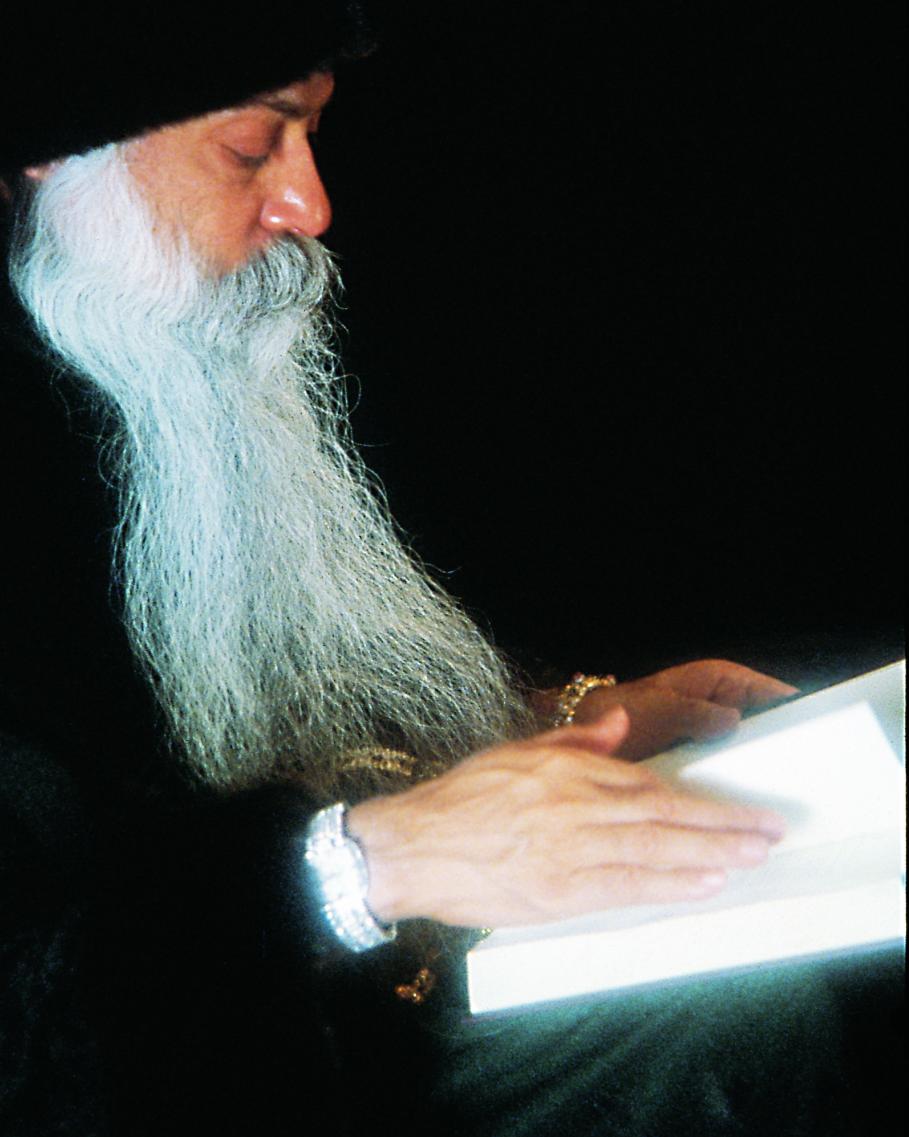
सांति पाई गुरि सतिगुरि पूरे।
सुख उपजे बाजे अनहद तूरे ।।1।।रहाउ।।
ताप पाप संताप बिनासे।
हरि सिमरत किलविख सभि नासे ।।1।।
अनंदु करहु मिलि सुंदर नारी।
गुरि नानकि मेरी पैज संवारी ।।2।।

सच्चे गुरु का आश्रय पाकर जीव को शान्ति मिलती है, सुख उपजता है और अनाहत ध्वनि होने लगती है ।।1।।रहाउ।।

सब प्रकार के कष्ट, पाप और व्यग्रता नष्ट होती है। हरि का स्मरण करने से सब मलिनताएँ दूर हो जाती हैं ।।1।।

हे सुन्दर जीवात्मा रूपी नारी! गुरु नानक कहते हैं, सतिगुरु ने मेरी लाज रख ली है। अब उससे मिलकर परम आनंद को प्राप्त करो ।।2।।

सभी मित्रों को नमस्कार।

'जांति पाई गुरि सतिगुरि पूरे।

सुख उपजे बाजे अनहद तूरे।।'

सद्गुरु का सहारा और मार्ग दर्शन पाकर मेरे जीवन में शांति आ गयी है। बड़ा सुख उपज रहा है और अनहद ध्वनि का बाजा बज रहा है।

'ताप पाप संताप बिनासे। हरि सिमरत किलविख सभि नासौ।'

सद्गुरु ने हरि सुमिरन से जोड़ा है, हरि सुमिरन में डूबकर सारी कलुशताएं धुल गईं, मलिनताएं दूर हो गईं। पाप, ताप, संताप सब मिट गए।

'अनंदु करहु मिलि सुंदर नारी। गुरि नानकि मेरी पैज संवारी।।'

जीवात्मा रूपी नारी, परमात्मा रूपी प्रेमी से मिल गई, दोनों एक हो गए और महाआनंद फलित हुआ। 'गुरु नानक मेरी पैज सवारी।' नानक कहते हैं कि सत्गुरु ने मेरी लाज रख ली है। इस शबद में बहुत ही गहरा अर्थ समाया हुआ है। 'गुरु सद्गुरु पूरे'। संसार से संबंधित विद्या सिखाने वाले को हम शिक्षक कहते हैं या गुरु कहते हैं, वे बाहर के जगत का ज्ञान सिखाते हैं, कोई भाषा सिखाता है, कोई गणित सिखाता है, कोई विज्ञान सिखाता है। माता-पिता हमारे सबसे पहले गुरु हैं जिन्होंने सभ्यता और संस्कृति सिखाई। फिर स्कूल एवं कॉलेज के गुरु या शिक्षक हैं जिनसे विद्या ग्रहण की। प्रकृति और जीवन की घटनाओं ने भी कुछ सिखाया लेकिन वह सब बाहर का विषय है।

सद्गुरु वह है जो भीतर की बात सिखा रहा है। जितनी तेजी से हम बाहर की चीजें सीखते गए उतने ही बेचैन और अशांत होते चले गए। वह ज्ञान हमारे सिर का बोझ बनता चला गया। इसलिए छोटे बच्चे जिनका ज्ञान कम है वे ज्यादा शांत हैं, प्रसन्न हैं, आनंदित हैं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती, किताबों का बोझ बढ़ता जाता उतनी ही अशांति बढ़ती चली जाती है।

वृद्ध होते-होते आदमी के पास अनुभवों का भंडार लग जाता है और उसके ज्ञान का बोझ और बढ़ जाता है। अब वह बहुत गंभीर हो जाता है। बचपन में शांति और आंनद भरपूर था, वह हम जन्मतः लेकर आए थे। बाद में हमारे ऊपर ये जो ज्ञान के आवरण चढ़ते गए, भीतर से शांति और आनंद का बहना बंद हो गया। इतनी मोटी परत जैसे कोई कपड़ों के ऊपर कई कपड़े पहने हो, वो व्यक्ति कहीं खो ही गया उसका पता ही नहीं चल पा रहा है कि वह कहां है?

जन्म से जो लेकर आए थे वह धीरे-धीरे कम से कमतर होता चला गया। लेकिन सौभाग्य की बात है कि वह मिट नहीं गया है, हमारे भीतर ही मौजूद है। ऊपर से हमने बाहरी ज्ञान का कितना ही भारी लबादा ओढ़ लिया हो, सद्गुरु का कार्य है भीतर के ज्ञान से हमारा परिचय कराना। सद्गुरू का कार्य शिक्षकों या बाहरी गुरुओं से भिन्न है। शिक्षक कहता है कि ज्ञान से भर जाओ और सद्गुरु कहता है कि थोड़ी देर के लिए ज्ञान से मुक्त हो जाओ।

संसार के लिए बाहर का ज्ञान उपयोगी है, जरूरी है, नौकरी करने के लिए,

व्यापार करने के लिए, अन्य लोगों के साथ उठने-बैठने के लिए उसकी उपयोगिता है लेकिन उसमें आनंद नहीं है। अक्सर आप देखेंगे कि जिंदगी में जिन चीजों की उपयोगिता है उनमें आनंद नहीं है, जिनमें आनंद है उनमें कोई उपयोगिता नहीं है। संसार के ज्ञान पर आधारित होने के कारण ही हमारी दृष्टि धीरे-धीरे यूटिलिटेरियन या उपयोगितावादी होती जाती है कि हर चीज का कुछ उपयोग जरूर होना चाहिए।

सद्गुरु हमें कहते हैं कि थोड़ी देर के लिए कम से कम चौबीस घंटे में से आधा घंटा ही सही, इस ज्ञान से जरा दूर हो जाओ। इस ज्ञान की जो बेसिक यूनिट है, बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक जो है, जिस से ज्ञान बना है- वह विचार है। जैसे एक मकान ईंट से बना है वैसे ही हमारे भीतर जो ज्ञान है, जो स्मृति संग्रह है, उसकी बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक विचार हैं। थोड़ी देर के लिए निर्विचार जागरुकता में डूब जाएं तो फिर से वही शांति, वही आनंद जो कि हमारे भीतर ही है, फिर से उपलब्ध हो जाती है।

'सांति पाई गुरि सतिगुरि पूरे। सुख उपजे बाजे अनहद तूरे।।'

तब वास्तविक सुख उपजता है। अनहद का बाजा बजने लगता है। उस निर्विचार शांति में, मौन में, भीतर का संगीत बज उठता है और उससे भीतर का सुख उपजता है। इस सुख के साथ ही बाहर के जो ताप, पाप, संताप थे वे हमसे दूर चले जाते हैं। भीतर अपने केंद्र में, उस सुख-शांति के केंद्र में या आनंद में स्थित होकर बाहर की परिधि के साथ एक दूरी, एक डिस्टेंस निर्मित होती है। जब स्वयं ही परिधि पर भटक रहे थे तो पाप, ताप, संताप में उलझ गए थे।

हमें पता ही नहीं था कि परिधि पर होने वाली इस उलझन के अलावा भी कुछ और संभव है। हम उसी उलझन को अपनी जिंदगी समझ रहे थे। फिर भीतर के केंद्र में स्थित होना सीखा। उस निर्विचार जागरुकता में, अनहद की ध्वनि में, शांति की स्थिति में जब हमने वहां जड़ें जमा लीं, तो परिधि पर चलने वाली उथल-पुथल से एक दूरी निर्मित हो गयी।

'ताप पाप संताप बिनासे। हरि सिमरत किलविख सभि नासै।'

सारी मलिनताएं, सब कलुशताएं बहुत दूर रह गईं। उनका प्रभाव समाप्त हो गया। दूसरी बात भी स्मरण रखना, जो व्यक्ति जितना दुखी और अशांत होता है उसके जीवन में उतना ही पाप, ताप, संताप बढ़ता चला जाता है। यह दोनों चीजें एक दूसरे को बढ़ाती हैं, एक दुष्चक्र निर्मित हो जाता है। हम जितना गलत होते जाएंगे उतने ही बेचैन और अशांत होते जाएंगे, फिर जितने अशांत होंगे उतने ही ऐसे कृत्य करेंगे जिससे दुख और बेचैनी बढ़ती है। एक दुष्चक्र बन गया। जैसे एक आदमी दुखी है। अब ये दुखी आदमी बहुत क्रोधित होगा और जितना क्रोधित होगा उतना ही ज्यादा दुख पाएगा। फिर दूसरे लोग प्रतिक्रिया करेंगे, उससे दुखी होगा। फिर ये भी प्रतिक्रिया करेगा। अब यह दुष्चक्र शुरू हो गया।

दुख से क्रोध, क्रोध से फिर दुख, दुख से और क्रोध, ज्यादा क्रोध से ग्लानि, ग्लानि से पश्चाताप और महादुख। जो व्यक्ति शांत हो गया हो, अपने केंद्र में ध्यानस्थ

हो गया हो, उसके जीवन से प्रतिक्रियाएं विदा हो जाएंगी क्योंकि पाप और ताप एक प्रकार से प्रतिक्रियाओं के ही भिन्न रूप हैं। अतः शांत व्यक्ति के जीवन से पाप और ताप नष्ट होने लगेंगे, 'किलविख सब नाशै।' सारी कलुशताएं नष्ट हो जाएंगी जो अशांति से उत्पन्न होती थीं।

भीतर परम मिलन घटित हो जाता है। जीवात्मा को स्त्री रूप में और परमात्मा को पुरुष रूप में अगर मानें तो वह परम मिलन ही भीतर घटित हुआ।

'अनंदु करहु मिलि सुंदर नारी। गुरि नानकि मेरी पैज संवारी।।'

कहते हैं नानक कि गुरु ने मेरी प्रतिष्ठा रख ली। यह प्रतिष्ठा शब्द भी बड़ा प्यारा है। जब स्वयं के भीतर स्थित हो जाते हैं तो पहली बार प्रतिष्ठित हुए। सामान्यतः इस 'प्रतिष्ठा' शब्द का प्रयोग हम 'दूसरों की नजरों में अपनी इज्जत' के संदर्भ में करते हैं। परंतु आध्यात्म में इस शब्द का उपयोग स्वयं के भीतर स्थित होने के लिए किया जाता है। वही असली प्रतिष्ठा है। वही असली पद है जिस पर हम आसीन हुए। दूसरे तो उसे देख नहीं सकते, परंतु यहां दूसरे की नजरों का सवाल ही नहीं है। यह स्वयं के भीतर की बात है। तो वास्तविक प्रतिष्ठा अपनी आत्मा में स्थित हो जाना है।

नानक कहते हैं, गुरु ने मेरी प्रतिष्ठा रख ली, मुझे बचा लिया वरना मैं बाहर की भाग-दौड़ में ही लगा रहता और अशांत जीवन जीता रहता। संसार के दुष्चक्र से बाहर निकलना कठिन है क्योंकि वह गोलाकार गति करता है और हम उसमें उलझे ही रह जाते हैं। कहीं न कहीं एक क्वांटम लीप या एक छलांग लगानी होगी। अन्य कोई उपाय ही नहीं है। लोग सोचते हैं कि धीरे-धीरे इससे बाहर निकलेंगे, पर ऐसे वो कभी नहीं निकल पाएंगे। परिधि पर गोल-गोल चाक घूम रहा है। एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी घटना निकलती ही जाती है। जब यह बात समझ में आ जाए, जब गुरु के वचन समझ में आ जाएं तब अचानक छलांग लगाकर केंद्र में आ जाओ, बस यही एक उपाय है। वहां परिधि पर जो लोग गोलाकार घूमते हुए, अपनी उलझने सुलझाने की कोशिश करेंगे वे कभी न सुलझा पाएंगे।

पिछले सौ-सवा सौ साल में मनोविज्ञान बहुत विकसित हुआ है। सुलझाने की कई कोशिशें, भांति-भांति के तरीके खोजे गए हैं लेकिन कोई भी युक्ति स्थाई रूप से काम नहीं आती है। एक मनोवैज्ञानिक भी उतना ही अशांत और बेचैन है जितने उसके मरीज हैं। कोई परिर्वतन नहीं है, यह चक्र चलता ही रहता है। चक्र में रहकर चक्र को नहीं सुलझा सकते। इसीलिए सद्‌गुरु की जरूरत पड़ती है जो हमें छलांग लगाने की युक्ति बताते हैं कि अचानक छलांग लगाओ और अपने भीतर स्थित हो जाओ।

एक बार भीतर का स्वाद आ गया, आनंद का रस आ गया फिर तो मामला बड़ा आसान हो जाता है। लेकिन पहला कदम ही सबसे कठिन है कि पहली छलांग कैसे लगे? बाद में तो बिल्कुल सरल है। बाद में तो शांति और आनंद का चुम्बकीय आकर्षण स्वयं ही भीतर खींच लेता है, बार-बार के अभ्यास से एक दिन हम भीतर प्रतिष्ठित हो जाएंगे।

पहला कदम ही कठिन है क्योंकि जन्मों-जन्मों से हमारी आदत है उस दुष्चक्र में घूमते रहने की। इसके अलावा कुछ और भी मौजूद है इसका हमें ख्याल ही नहीं आता। लेकिन एक बात से याद आ सकता है कि हम बचपन में कभी शांत थे, आनंदित थे इसका मतलब है कि तब हमने निष्चित ही कुछ जाना है और यदि जाना नहीं होता तो इसकी प्यास भी नहीं उठती? इस पर थोड़ा विमर्श करें। अगर शांति जैसी किसी चीज का पता ही नहीं होता तो फिर शांति की प्यास भी कैसे उत्पन्न होती?

कुछ तो मालूम है, कुछ तो चखा है, चाहे उसे भूल गए हैं, लेकिन कहीं एहसास है कि कभी हम आनंदित थे। वह आनंद या तो बचपन का था या गर्भावस्था का या शायद पूर्वजन्म का, परंतु इतना तो पक्का है कि हमने उसे जाना है, इसीलिए वह स्मृति पीछा करती है और आज हमारे भीतर पुनः वही प्यास है कि फिर वैसा ही हो। इसलिए निराश होने की जरूरत नहीं है। पर्याप्त प्रमाण है कि जब हमने दुनिया का ज्ञान इकट्ठा नहीं किया था, अज्ञानी थे तब आनंदित थे। तो फिर मामला सरल लगता है कि इस ज्ञान से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाएं। यही ज्ञान बंधन है।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं, अज्ञानी तो भटकते ही हैं ज्ञानी महाअंधकार में भटकते हैं। शिव सूत्र में एक वचन आता है कि 'ज्ञानं बंधः' यानि ज्ञान बंधन है। इस बात को हृदयंगम करना, ज्ञान ही बंधन है। जो-जो हमने जान लिया है उससे बंध गए हैं। हमारा ज्ञान कुंए की भांति है। उस कुंए में रहने वाला मेंढक, कुंए के बाहर के जगत का अनुमान भी नहीं कर सकता है। उसके लिए वही संसार है जितना उसका कुंआ है। इसी कुंए में वो पैदा हुआ, इसी में वो बड़ा हुआ, इसी में मर जाएगा।

हमारा सौभाग्य है कि हम लोग किसी कुंए में पैदा नहीं हुए हैं, हां, बाद में अपने अपने ज्ञान के कुंए में कूद जरूर गए हैं। संस्कृत में ज्ञान और दुख, दोनों के लिए एक ही शब्द है वो है 'विद्'। इस मूल धातु 'विद्' से ही वेद बना है, वेद यानि ज्ञान का शास्त्र, 'विद्' से ही बना है विद्वान यानि जानकार अथवा ज्ञानी पुरुष और 'विद्' से ही बना है वेदना यानि दुख और संताप। अतः ज्ञान और दुख पर्यायवाची हुए, एक ही शब्द काफी है दोनों के लिए। ये बाहर की ज्ञान की बात है।

ओशो ने अपने एक संस्मरण में सुनाया है कि किसी के घर में वे मेहमान थे, जो हाई कोर्ट के जज थे। शाम को उनकी पत्नी कहने लगी कि मेरे पति देव आपकी बात बहुत मानते हैं, आप थोड़ा समझाइए कि ये घर में भी न्यायाधीश बने रहते हैं। बच्चों से ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे वे कोई अपराधी हों। ये हमेशा जज ही बने रहते हैं। मुझ से भी ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे कोई मुकदमा चल रहा हो। यह जज साहब न्याय, कानून, विधि-विधान को भूल ही नहीं पाते हैं। चौबीस घंटे बस जज ही बने रहते हैं।

ठीक है, जब आप आफिस में हैं, नौकरी कर रहे हैं वहां पर जो कार्य करना है वहां अपने ज्ञान का उपयोग करें, पर चौबीस घंटे वैसे ही ज्ञानी न बने रहें। जब आवश्यकता नहीं है तब अपनी सहजता और स्वभाविकता में वापिस लौट आएं। यह बात हम भूल जाते हैं और इसलिए दुख में फंसते चले जाते हैं। धीरे धीरे दुख में इतना फंस जाते हैं कि भूल ही

जाते हैं कि आनंद जैसी भी कोई चीज हो सकती है। यदि कभी आनंद को खोजते भी हैं तो बाहर ही खोजते हैं।

तो प्यारे मित्रों, इस बात को स्मरण रखना, बचपन में हमने आनंद को जाना है। हम कोई नयी बात खोजने नहीं चले हैं, वह हमारा स्वभाव है। हमने जाना है, हम वापिस वहां पहुंच सकते हैं। और एक बार यह समझ लो तो फिर यात्रा कठिन नहीं है। बस, इस बाहर के ज्ञान से थोड़ा दूर निकल जाओ और विचारों से मुक्त होने की विधियों का प्रयोग करो। अगर सीधे-सीधे ज्ञान से या विचार से लड़ना चाहें तो नहीं कर पाएंगे क्योंकि परिधि पर ही अटक जाएंगे। इसलिए ज्ञान को भूल जाओ, केवल अपनी इंद्रियों की संवेदनशीलता को बढ़ाओ, अपने जीवन की ऊर्जा को वहां प्रवाहित कर दो। उदाहरण के लिए अपनी त्वचा की संवेदना पर ध्यान दो। सामान्यतः हम त्वचा के प्रति ज्यादा संवेदनशील नहीं होते हैं परंतु इसकी सेंसिटीविटी को बढ़ाने पर, हम पाएंगे कि हम निर्विचार होने लगे।

तो निर्विचार होने की विधियों का प्रयोग करना है, प्रत्यक्ष रूप से विचारों के साथ कुछ नहीं करना है। कभी श्वास के प्रति सजग हो जाएं, कभी नाद-ध्वनि के प्रति सजग हो जाएं, कभी नूर को देखने लगें, कभी त्वचा के प्रति जागरूक हो जाएं। ओषोधारा की 'आनंद समाधि' में इन विधियों का बहुत उपयोग होता है। संवेदना के प्रति जागरूक होकर, बड़ी आसानी से निर्विचार स्थिति घटित होती है, हम एक अद्भुत पुलक, शांति और आनंद से भरने लगते हैं।

साधु संग में जन्मे पावनता

साध संगति कै बासबै कलमल सभि नसना।
प्रभ सेती रंगि रतिआ ता ते गरिभ न ग्रसना ।।1।।
नामु कहत गोविंद का सूची भई रसना।
मन तन निरमल होईहै गुर का जपु जपना ।।1।।रहाउ।।
हरि रसु चाखत ध्रापिआ मनि रसु लै हसना।
बुधि प्रगास प्रगट भई उलटि कमलु बिगसना ।।2।।
सीतल सांति संतोखु होइ सभ बूझी त्रिसना।
दहदिस धावत मिटि गए निरमल थानि बसना ।।3।।
राखनहारै राखिआ भए भ्रम भसना।
नामु निधान नानक सुखी पेखि साध दरसना ।।4।।

सत्संगति में बसने वाले सभी जीवों के पाप नष्ट हो जाते हैं। वे प्रभु के रंग में लीन हो जाते हैं, इसलिए दोबारा गर्भ में प्रविष्ट नहीं होते ।।1।। परमात्मा का नाम लेने से जिह्वा पवित्र हो जाती है; गुरु के आदेशानुसार नाम-जाप से समूचा तन-मन निर्मल हो जाता है ।।1।।रहाउ।। जीव का मन हरि-रस चखने से संतुष्ट होता है और परमानन्द को प्राप्त होता है। भीतर से विवेक का आलोक जागृत होता है और हृदय-कमल माया की ओर से उलटकर विकसित हो जाता है ।।2।। मानव को संतोष और शान्ति मिलती है, तृष्णा की अग्नि बुझ जाती है, मन की दसों दिशाओं की भटकन मिट जाती है और वह निर्मल भाव से जीवन व्यतीत करता है ।।3।। संरक्षक प्रभु उसकी रक्षा करता है और उसके भ्रम और भय जल जाते हैं। गुरु नानक कहते हैं कि सन्तों के दर्शन करके तथा परमात्मा के नामामृत को पाकर मनुष्य सुखी हो जाता है ।।4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

नानक देव जी कहते हैं कि 'साध संगति कै बासबै कलमल सभि नसना'। साधु-संगत में बैठकर मेरे भीतर की सारी कलुषता नष्ट हो गई है। साधु-संग में जन्मी पावनता, पवित्रता और आंतरिक स्वच्छता से जैसे आत्मा का गंगा-स्नान हो जाता है। 'प्रभ सेती रंगि रतिआ ता ते गरिभ न ग्रसना', प्रभु के रंग में अब ऐसे डूब गया हूं कि आवागमन से मुक्ति हो गई है। नामु कहत गोविंद का सूची भई रसना। परमात्मा का नाम अर्थात् ओंकार में डूबकर मेरी जिह्वा भी पवित्र हो गई है। मन तन निरमल होई है गुर का जपु जपना। सद्गुरु ने जो जप बताया है उसको जपते-जपते मेरा तन मन निर्मल हो गया है। हरि रसु चाखत धापिआ मनि रसु लै हसना। बुधि प्रगास प्रगट भई उलटि कमलु बिगसना। परमात्मा का रस चखने से भीतर तृप्ति हो गई और बुद्धि में प्रकाश पैदा हुआ है और हृदय कमल उलटकर विकसित होने लगा है। उलटि कमलु बिगसना।

सीतल सांति संतोखु होइ सभ बूझी त्रिसना। दहदिस धावत मिटि गए निरमल थानि बसना। सारी तृष्णाएं मिट गईं और इच्छाएं समाप्त हो गई हैं, शांति, शीतलता और संतोष उत्पन्न हुआ है। दहदिस धावत मिटि गए निरमल थानि बसना। मेरा चंचल मन जो दसों दिशाओं में दौड़ता था अब वह थम गया है और भीतर के निर्मल स्थान में बस गया है। निरमल थानि बसना। राखनहारै राखिआ भए भ्रम भसना। उस प्रभु की कृपा से सारे भय और भ्रम भस्म हो गए हैं। नामु निधान नानक सुखी पेखि साध दरसना। कहते हैं कि नाम की निधि पाकर, ओंकार का ज्ञान पाकर, साधु का दर्शन पाकर यह नानक अब बहुत सुखी हैं, परम आनंद में हैं।

दो तीन बिन्दु बड़े महत्वपूर्ण हैं, ध्यान में डूबने से कैसे पाप नष्ट होते हैं इस विधि को समझना होगा। हमारे जो भी दुष्कर्म हैं, पाप हैं, हमारी जो भी कलुषताएं हैं उनकी उत्पत्ति का कारण क्या है? उनकी उत्पत्ति का कारण हैं बाहर के जगत में उत्पन्न हमारी कामनाएं और इच्छाएं, दूसरों के संग प्रतियोगिता व स्पर्धा की भावना, क्योंकि जो हम चाह रहे हैं उसे ही और सब लोग भी पाना चाह रहे हैं तो निश्चित रूप से एक संघर्ष होगा, षडयंत्र रचे जाएंगे, खींचातानी होगी, आपाधापी होगी, मार-काट होगी। चीजें सीमित हैं और उन्हें पाने वाले लोग बहुतायत में हैं, बस यहीं से पापों की शुरूआत होती है।

महत्वाकांक्षा पाप का मूल है। संक्षेप में कहें तो बहिर्गामी चित्त हमेशा गलत राह पर पहुंच जाएगा, ऐसा होना सुनिश्चित है। जो व्यक्ति अपनी अंतर्यात्रा में रस लेने लगा, जो व्यक्ति अपने भीतर के ओंकार में, आलोक में मजा लेने लगा उसकी बाहर की वासनाएं क्षीण होती जाएंगी। जितना जीवन यापन के लिए आवश्यक है, वह उतना

इंतजाम कर लेगा पर अब महत्वाकांक्षाएं समाप्त हो गईं। कामनाओं के विदा होते ही वह जो पाप की प्रवृत्ति थी वह समाप्त हुई, मन के विकार गायब हुए, कलुषताएं गईं, भीतर एक निर्मलता आई। जैसे सब साफ-सुथरा हो गया हो।

जो व्यक्ति जितना ही अपने भीतर के रस में डूबने में मग्न हो जाएगा वह उतना ही अंतरमुखी होने लगेगा। और इसलिए वो जो बहिर्गामी चित्त था जो कि गलत राह पर जाने के लिए मजबूर था, उसकी वह सारी ऊर्जा स्वयं पर लौट आई और ऐसा आत्मरमण में आनंद लेने वाला व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है। बुधि प्रगास प्रगट भई उलटि कमलु बिगसना। यह भी बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है कि हृदय कमल उलट गया। सामान्यतः जो व्यक्ति बहिर्मुखी था, संसार की तरफ उन्मुख था, माया की तरफ लगा हुआ था, वह अब अपने भीतर की तरफ जाने लगा है, वह भीतर रस लेने लगा, स्वयं के होने का मजा लेने लगा और कहते हैं कि तब शुरू हुआ उसका स्वयं का विकास-आत्मविकास। इसके पहले हम जिसको विकास कह रहे थे, वास्तव में वह विकास नहीं है इस बात को खूब गौर से समझना।

हम जिसे विकास कहते हैं वह हमारा विकास नहीं है, वह तो सामान का विकास है। एक आदमी ने बड़ा मकान बना लिया, बड़ी कार खरीद ली, घर में बहुत सारे सामान और आधुनिक उपकरण इकट्ठे कर लिए तो इसमें आदमी विकसित नहीं हुआ है। हां, उसका मकान, सामान और कार जरूर विकसित हो गए, नए उपकरण आ गए, बैंक बैलेंस विकसित हो गया लेकिन यह आदमी बड़ा नहीं हुआ है। हालांकि, बाहर के संसार को बड़ा करने की कोशिश में वह भीतर से शायद बहुत छोटा और नीचा हो गया है। इसका प्रमाण रोज अखबारों में राजनेताओं और सरकारी अफसरों के भ्रष्टाचार के किस्सों में मिलता है।

यह इतना निम्न स्तर हुआ कैसे? जब यह आदमी पद पर नहीं था, इसके पास शक्ति नहीं थी, शोहरत नहीं थी, तब यह सज्जन आदमी था तभी तो लोगों ने इसको अपना नेता चुना था, ठीक आदमी लगता था। पर जब शक्ति हाथ में आई तो कामनाओं से भरे भूखे प्यासे मन को मौका मिला और उसने झपट कर हर सही या गलत तरीके से सब लूट लेना चाहा।

बाहर से जो व्यक्ति सामान को बढ़ाने में लगा है, धन को बढ़ाने में लगा है, इज्जत और ज्ञान को बढ़ाने में लगा है, वह धोखे में है कि उसका विकास हो रहा है, बल्कि एक तरह से उसका पतन हो रहा है, विनाश हो रहा है। हां, सामान का विकास अवश्य हो रहा है। इस बात को गौर से परखना, तब आपको ख्याल में आएगा और भीतर एक प्यास पैदा होगी कि फिर मेरा विकास कैसे हो? मेरा विकास अर्थात मेरी चेतना कैसे

ज्यादा प्रगाढ़ हो? मैं ज्यादा चैतन्य कैसे बनूं? मैं ज्यादा जागरूक कैसे बनूं? ज्यादा प्रेमपूर्ण कैसे बनूं? ज्यादा करुणावान कैसे बनूं? तब ही वह मेरा विकास कहलाएगा।

बड़े-बड़े मकानों में रहने वाले लोग अक्सर बड़ी छोटी बुद्धि के होते हैं। ऊंचे मकानों में ज्यादातर नीचे किस्म के लोग रहते हैं। तभी शायद वह इतना ऊंचा मकान बना पाए। मकान तो विकसित हो गया लेकिन आदमी पतित हो गया। बढ़ते हुए सामान को देखकर ऐसा भ्रम होता है कि जैसे व्यक्ति बढ़ रहा है परंतु व्यक्ति नहीं बढ़ रहा है। अपने आप को सभ्य, सुशिक्षित और सुसंस्कृत कहने वाला व्यक्ति क्या आज वास्तव में सभ्य और सुसंस्कृत है? आज से हजारों वर्ष पहले जब आदि मानव का युग था तब भी क्रोध की भावना थी पर उनके पास क्रोध करने के लिए छुट-पुट साधन थे, किसी को पत्थर मार देते थे या डंडे से या भाले से मारते थे, बस इतनी ही उनकी क्षमता थी।

क्रोध आज भी है लेकिन अब हमारे पास परमाणु बम हैं और मिसाइले हैं। पत्थर विकसित होकर परमाणु बम बन गया है और डंडा विकसित होकर मिसाइल बन गया है। हम विकसित नहीं हुए। हम विकसित तब कहलाते जब हमारे भीतर से क्रोध विदा ही हो गया होता। हम तो वही जंगली आदिवासी, खूंखार जानवर हैं, मौका मिले नहीं कि हमारी असलियत प्रगट हो जाती है। हममें कोई फर्क नहीं पड़ा है। जब तक हमारे भीतर चेतना, प्रेमभाव, क्षमाभाव, स्वीकार भाव विकसित नहीं होगा तब तक हमारा आध्यात्मिक विकास नहीं हुआ है और यह केवल तभी संभव है जब हम बर्हिमुखी से अंतरमुखी बनें। कम से कम एक संतुलन निर्मित करें, जितने बर्हिमुखी हैं कम से कम उतने ही अंर्तमुखी भी हो जाएं।

ओशो इसे कहते हैं- झोरबा दी बुद्धा, दोनों का समन्वय। जितना आवश्यक है उतना अपने संसार को भी संभालना पर जरूरत से ज्यादा पाने की दौड़ का पागलपन छोड़ देना, अनावश्यक लक्ष्य गिरा देना क्योंकि उनकी कोई जरूरत नहीं है। अपनी सुख-सुविधा का इंतजाम कर लेना, उतना पर्याप्त है। असली बात यह है कि अपनी जीवन ऊर्जा को भीतर की तरफ मोड़ना। यदि हमारा पचास प्रतिशत समय बाहर संसार की ओर जाता है तो पचास प्रतिशत समय ही स्वयं की ओर जाना चाहिए। यह तभी संभव है जब हमें भली भांति यह बोध हो जाएगा कि बाहर की चीजों के विकास में मेरा स्वयं का विकास नहीं हो सकता, मैं तो वही का वही हूं।

तब एक बेचैनी पैदा होगी कि उम्र बढ़ती जा रही है, समय बीतता जा रहा है लेकिन मैं नहीं बढ़ पा रहा हूं। शायद मैं घट रहा हूं, शायद बचपन में ज्यादा आनंद था, ज्यादा शांति थी, ज्यादा प्रसन्नता थी, बड़े होते-होते वह कुछ भी नहीं बचा। बहुत सारे तनाव, चिंताएं और दुख आ गए। अतः विकास नहीं हुआ, बल्कि विनाश हो गया। जब

इस तथ्य को गौर से देखोगे तो चौंकोगे, बेचैन हो उठोगे। यह बेचैनी ही आत्मविकास की राह हेतु प्रेरणा बन जाएगी। तब तुम्हारी दृष्टि स्वयं पर पड़ेगी, अभी तक यह दृष्टि पूरी तरह बहिर्मुखी थी। उलटि कमल बिगसना। कहते हैं नानक कि मेरा हृदय भीतर की तरफ पलट गया है, अब असली विकास शुरू हुआ, हृदय कमल विकसित हुआ है, वही असली विकास है। और कहते हैं बुधि प्रगास प्रगट भई और तब पहली बार भीतर विवेक का प्रकाश उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा जागी, असली बुद्धिमत्ता जागी।

इसके पहले हम जिसे बुद्धि कहते थे, वास्तव में वह केवल स्मृति थी। स्कूल-कालेज में जो परीक्षा ली जाती है वह दरअसल ज्ञान की परीक्षा नहीं है, वह केवल स्मृति की परीक्षा है। हम जिसे आई.क्यू. कहते हैं उसको एम.क्यू. कहना चाहिए। कोई व्यक्ति कितना रट लेता है और वापिस उसे कितना प्रगट कर सकता है, इस तोता रटंत बात को हम बुद्धिमानी मानते हैं। स्मृति को किसी भी बैंक बैलेंस से ज्यादा मत समझना। हमारी खोपड़ी के अंदर मस्तिष्क में कुछ हिस्से हैं जहां यह स्मृति एकत्रित होती है, इसकी कोई बहुत ज्यादा कीमत मत आंक लेना। सिर्फ एक डंडा पड़ जाए सिर पर या एक्सीडेंट हो जाए या सिर में चोट लग जाए, तो सारी स्मृति गायब हो जाती है।

आपने सुना होगा कि किसी को सिर में चोट लगने से अचानक उसकी स्मृति गायब हो गई, अब उसे कुछ भी याद नहीं है। अपना नाम-पता भी भूल गया, कहां का रहने वाला है, किस जाति का है, किस गांव का है कुछ नहीं पता, सब स्मृति गायब हो गई। जो पच्चीस साल तक युनिवर्सिटी में ढेर सारी शिक्षा प्राप्त की थी वह सब गायब हो गई। मस्तिष्क में बहुत थोड़ी सी कोषिकाएं हैं जहां स्मृति मौजूद होती है अगर उन कोषिकाओं को नुकसान पहुंच गया या चोट लग गई तो सारी स्मृति गायब हो जाती है।

जैसे 2008 में अमेरिका में सैंकड़ों बैंक दीवालिया हो गए, उनमें जिन लोगों के पैसे जमा थे उनसे उन्होंने क्षमा मांग ली कि अब हमारे पास कुछ नहीं बचा है। भारी विपत्ति छा गई, बड़ा आर्थिक घाटा हुआ। जैसे बाहर के बैंक में धन जमा है वैसे ही इस मस्तिष्क रूपी स्मृति बैंक में ज्ञान जमा हैं। यह भी एक प्रकार का धन जैसा ही है कुछ खास नहीं है। यह असली बुद्धिमत्ता या इंटेलीजेंस नहीं है। विवेक, प्रज्ञा, विज़डम यह अलग ही बात है। इतने बड़े-बड़े वैज्ञानिक हैं, नोबल पुरस्कार विजेता हैं पर उनकी जीवन कथा पढ़कर देखो तो हैरान हो जाओगे।

हम इनको इतना बुद्धिमान मानते हैं और यह किस काम में संलग्न हैं। हिरोशिमा नागासाकी में जो बम गिरा था जिन्होंने गिराया और लाखों लोग कुछ सेकेण्ड में खत्म हो गए यह वही वैज्ञानिकों ने बनाए थे। यह कैसी बुद्धि है इनकी,

इनके हृदय में जरा भी प्रेम नहीं है, यह क्या बना रहे हैं, क्यों बना रहे हैं? स्टार वॉर की तैयारियां चल रही हैं, जमीन से सीधा युद्ध लड़ेंगे ही नहीं, ऊपर से सबकुछ होगा कि कोई काउंटर अटैक भी न कर सके। बायलॉजिकल वैपन्स बन के तैयार हैं जिनका पता ही नहीं चलेगा कि किसने आक्रमण किया, क्या हुआ? ऊपर से जेट विमान गुजरेंगे और हवा में कीटाणु छोड़ते जाएंगे।

कुछ दिनों के बाद अचानक बड़ी-बड़ी महामारियां पैदा हो जाएंगी और किसी को पता भी नहीं चलेगा कि यह सब कैसे हुआ, कब हो गया, किसने किया? लोग समझेंगे कि प्राकृतिक रूप से कोई बीमारी आ गई है, लाखों करोड़ों लोग मरने लगेंगे। ऐसी बीमारियों के कीटाणु तैयार किए हैं जिनका कोई इलाज ही संभव नहीं है। और इन पर करोड़ों-करोड़ों डालर हर साल खर्च होता है और नए-नए कीटाणु जेनेटिक इंजीनियरिंग के द्वारा बनाए जाते हैं, जो प्रकृति में नहीं हैं वह बनाए जाते हैं जिनकी दवा अभी खोजी ही नहीं गई है। परमाणु बम वगैरह के दिन अब गए क्योंकि उसमें पता चल जाता था कि किसने किया, अब इसमें पता ही नहीं चलेगा कि किसने किया, कैसे अचानक करोड़ों लोग मरने लगे?

यह बड़े बुद्धिमान लोगों के द्वारा किए गए षड़यंत्र हैं। क्या इनकी बुद्धि पर शक पैदा नहीं होता, क्या यह बुद्धिमान कहे जा सकते हैं? जो इस काम में लगे हैं निश्चित रूप से वे सामान्य मस्तिष्क वाले लोग नहीं हैं, बहुत विद्वान हैं, बहुत बड़े एक्सपर्ट हैं, अपने काम के विशेषज्ञ हैं। नए प्रकार के कीटाणु को जन्माना कोई हंसी-खेल तो नहीं है, इन जैविक हथियारों को बनाने में इन्होंने अपनी पूरी जिंदगी लगा दी। जिसे हम बुद्धि कहते हैं थोड़ा संदेह करना शुरू करो कि वह है क्या वास्तव में? वह केवल दूसरों का शोषण करने की, दूसरों पर शासन करने की और आक्रमण करने की तरकीबें खोजने की विधि मात्र है।

दूसरों को हराना है, खुद को जीतना है, दूसरों को नष्ट करना है स्वयं को बचाना है। हम जिसे बुद्धि कहते हैं उसका बस यही काम है। और नानक क्या कह रहे हैं? मेरे भीतर प्रकाश तब उत्पन्न हुआ जब मेरा हृदय विकसित हुआ, जब प्रेम विकसित हुआ, करुणा जागी, क्षमाभाव जागा, स्वीकार भाव उत्पन्न हुआ, सब अपने जैसे लगने लगे, अद्वैत की अनुभूति हुई, ऐसा गहन प्रेम संपूर्ण अस्तित्व के प्रति जागा, तब कहते हैं कि बुद्धि प्रकाश उत्पन्न हुआ। ऐसा व्यक्ति हिंसक नहीं हो सकता, ऐसा व्यक्ति ही विकसित मनुष्य है, जिसको हम कहते हैं सुपरमैन।

आप जानते हैं नोबल पुरस्कार जिस व्यक्ति की संपत्ति के ब्याज से मिलता है वह व्यक्ति 'अल्फ्रेड नोबल' है। इस व्यक्ति ने इतना धन कैसे कमाया? विस्फोटक सामग्री की

फैक्ट्रियों से इतना पैसा कमाया कि मरते हुए वह एक कमेटी बना गया कि हर साल उसके नाम से नोबल प्राइज बांटे जाएं। मजे की बात है कि यह नोबल प्राइज शांति पुरस्कार के रूप में भी मिलता है। जिस आदमी ने इतना रक्तपात किया, इतनी अशांति फैलाई उसके पैसे से ही शांति पुरस्कार मिलता है, अद्भुत। और लेने वालों को शर्म भी नहीं आती, वह ले भी लेते हैं। यह खून में रंगा हुआ पैसा, जिसमें करोड़ों की जानें गई हैं उससे शांति पुरस्कार बांटा जा रहा है।

यह बातें मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि तुम्हें संदेह उत्पन्न हो, तुम जिसे बुद्धि समझते हो वह वास्तव में है क्या? वह चालाकी का उपाय है, वह बेईमानी का उपाय है, वह एक षडयंत्रकारी स्मृति भंडार है, वह हमारी गरिमा और हमारी महिमा नहीं है। और इसलिए आपने देखा होगा कि जितने बुद्धिमान लोग हैं वे ही दुनिया में सर्वाधिक भ्रष्ट हो पाते हैं। क्योंकि उन्हीं के पास इतनी अक्ल है। साधारण आदमी उतना पतित नहीं हो पाता, बहुत बुद्धिमान लोग ही इतने पतित हो पाते हैं क्योंकि पतन के लिए बहुत बुद्धि चाहिए, कुशल षडयंत्रकारी दिमाग चाहिए जो लंबे समय के लिए प्लान कर सके, जो समझ सके कि सामने वाला क्या चाल चलेगा?

जैसे शतरंज के खिलाड़ी अनुमान लगाते हैं, वैसी जिसकी बुद्धि हो जो लंबी दूरी तक सोच पाए, वही इस दुनिया में जीत पाता है। यह बुद्धि वास्तविक बुद्धि नहीं है। जिस बुद्धि के संग प्रेम नहीं जुड़ा सच पूछो तो वह बुद्धि ही नहीं है, कुबुद्धि है। इसको इंटेलीजेंस कहना ठीक नहीं। नानक जिसे बुद्धि का प्रकाश कह रहे हैं उसकी बात ही अलग है। बुधि प्रगास प्रगट भई उलटि कमल बिगसना। और उसका प्रमाण क्या है, सीतल सांति संतोखु होई सभ बुझी त्रिसना। यह प्रमाण होंगे असली बुद्धि के। तृष्णा बुझ जाएगी, वासना समाप्त हो जाएगी, शीतलता आएगी, शांति आएगी, संतोष आएगा।

हम जिसे बुद्धिमान व्यक्ति कहते हैं वह बहुत ही असंतुष्ट होता है, अशांत होता है, वह शीतल नहीं होता। बहुत उष्ण होता है, बहुत आपाधापी में होता है। नानक की परिभाषा के अनुसार जो व्यक्ति संतुष्ट नहीं है, शांत नहीं है, शीतल नहीं है तुम उसे विवेकपूर्ण मत जानना। उसका हृदय अभी विकसित नहीं हुआ, वह अविकसित मनुष्य है। इस शब्द को सुनकर, समझकर हम सबके भीतर भी वह प्रेरणा जागे, हम सब भी अपने भीतर विकसित हों, उस दिशा में हम गति करें, अंतर्यात्रा में रस लें, आत्मरमण में आनंद लेना शुरू करें, अपने भीतर के ओंकार, आलोक में, चैतन्य में डुबकी लगाना सीखें। और फिर देखें कैसे हमारे भीतर भी हृदय कमल विकसित होता है। हम एक प्रेमपूर्ण, एक विवेकपूर्ण व्यक्ति बनते हैं।

संसार में जो शिक्षा पद्धति चल रही है वहां केवल प्रतियोगिता सिखाई जाती है,

दूसरों को हराना है, तुम्हें प्रथम होना है, हमेशा प्रथम आओ। अहंकार को मंडित करने के उपाय सिखाए जाते हैं। घर-परिवार, समाज, शिक्षा पद्धति, राजनेता, धर्मगुरु सब एक ही बात सिखा रहे हैं कि आगे निकलो, दूसरों को पीछे पछाड़ना है, कुछ करके दिखाओ, नाम रोशन करो, कुल की इज्जत बढ़ाओ, सब अहंकार को भड़का रहे हैं। निश्चित ही इसका अंतिम परिणाम लड़ाई, संघर्ष, बुराई और पाप ही हो सकता है। धन्यभागी हैं वे जो अंतिम होने को राजी हैं।

लाओत्से ने कहा कि मैं किसी सभा में गया तो मैं वहां जाकर बैठ गया जहां लोग जूते उतारते हैं, कभी किसी ने मुझे सभा से बाहर नहीं निकाला क्योंकि मैं पहले से ही वहां बैठा था जहां निकले हुए लोग रहते हैं। लाओत्से ने कहा कि कभी कोई मेरी बेइज्जती ही नहीं कर सका क्योंकि मैंने कभी इज्जत चाही ही नहीं और कभी कोई मुझे हरा ही नहीं सका क्योंकि कभी मेरी जीतने की इच्छा ही नहीं थी। कोई लड़ने को आया तो मैं खुद ही चारों खाने चित्त हो गया, मैंने कहा कि ठीक है तुम्हीं जीत जाओ।

जीसस क्राइस्ट ने कहा है- धन्य हैं वे जो अंतिम हैं, प्रभु का राज्य उन्हीं का है। काश! जीसस और लाओत्से की बात छोटे बच्चों को सिखाई जाए तो यह दुनिया स्वर्ग बन जाए। बचपन से ही बच्चों को घुट्टी के साथ यह जहर पिलाया जाता है कि प्रथम हो जाओ, आगे निकलो और हम उसको विकास कहते हैं। नहीं, वह उन्नति नहीं है, वह अवनति है, वह विकास नहीं, विनाश है। असली विकास तो हृदय का विकसित होना है।

स्वयं को जीतो तो शूरवीर

जाकउ हरि रंगु लागो इस जगु महि सौ कहीअत है सूरा।
आतम जिणै सगल वसि ताकै जाका सतिगुरु पूरा ।।1।।
ठाकुरु गाईऐ आतम रंगि।
सरणी पावन नाम धिआवन सहजि समावन संगि ।।1।।रहाउ।।
जन के चरन वसहि मेरे हीअरै संगि पुनीता देही।
जन की धूरि देहु किरपानिधि नानक कै सुखु एही ।।2।।

हे भाई! इस जगत् में वह मनुष्य शूरवीर कहलाता है जिसके हृदय में प्रभु–प्रेमपैदा हो जाता है। पूर्ण गुरु जिस मनुष्य का सहायक है, वह मनुष्य अपने मन को जीत लेता है और समस्त सृष्टि उसके वश में हो जाती है ।।1।।

परमात्मा को पाना हो, तो स्वयं को उसके प्रेममें रंगना होगा। उस परमात्मा की शरण में रहना और उसके नाम का स्मरण ही उसमें लीन करा सकता है ।।1।।रहाउ।।

हे कृपा के खजाने प्रभु! यदि तुम्हारे दासों के चरण मेरे हृदय मे स्थिर हो जाएँ अर्थात् मैं तुम्हारे दासों के चरणों में नेह लगाऊँ तो उनकी संगति से मेरा शरीर पवित्र हो जाए। मुझे अपने दासों के चरणों की धूलि प्रदान करो, मेरे (नानक के) लिए यही सुख है ।।2।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

असली शूरवीर व्यक्ति वह है जो प्रभु के रंग में रंग गया। जाकउ हरि रंगु लागो जगु महि सौ कहीअत है सूरा। संसार में हम शक्तिशाली उन्हें कहते हैं जिन्होंने बाहर की दुनिया में कुछ विजय प्राप्त की, कुछ जीत लिया, कुछ हासिल कर लिया, कुछ प्राप्त कर लिया। गुरुनानक देव जी की नजरों में वे लोग मूढ़ हैं, नासमझ हैं, वे उन चीजों को पाने में समय गंवाते रहे जो कभी उनकी हो ही नहीं सकतीं। जन्म के साथ न हम कुछ लेकर आए, न मृत्यु के क्षण में हम कुछ लेकर जाएंगे। जो जीवन भर आपाधापी करते रहे ऐसी चीजों को पाने की जिन्हें संग नहीं ले जाया जा सकता, उन्हें शूरवीर कैसे कहा जाए?

सिकंदर की कहानी आपने सुनी होगी जब उसकी मृत्यु हुई, उसने कहा कि मेरे हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना ताकि दुनिया वाले देख लें कि विश्वविजेता सिकंदर भी खाली हाथ जा रहा है भिखारी की तरह। यहां से कुछ ले नहीं जा सकते, उसे पाने में जीवन का समय गंवाना बुद्धूपन का लक्षण है। अक्ल ही नहीं है, असली समझदार, असली शक्तिशाली वह है जिसने अपने भीतर डुबकी लगाई, उस तत्व को जाना जो वास्तव में उसका है। जाकउ हरि रंगु लागो जगु महि सौ कहीअत है सूरा। वही शूरवीर है। चौबीसवें तीर्थंकर को कहा जाता है महावीर। यह नाम उनको दिया गया है क्योंकि उन्होंने शूरवीरता का कार्य किया। यह उनका बचपन का नाम नहीं था, बचपन का नाम था वर्धमान। वर्धमान का अर्थ है जो फैलता जाए, अपना जाल पसारता जाए।

माता-पिता ने तो नाम सोचकर रखा होगा कि हमारा बेटा बड़ा चक्रवर्ती सम्राट बनेगा, सारी दुनिया पे कब्जा कर लेगा, ऐसा कुछ सोचकर नाम रखा होगा वर्धमान कि बाहर जिसके राज्य की वृद्धि होती जाए पर महावीर ने राज्य ही छोड़ दिया, सब छोड़ दिया, अपनी सारी शक्ति भीतर निमज्जित कर ली स्वयं को जानने में और इसलिए उनका नाम महावीर पड़ा। ऐसी वीरता का काम उन्होंने किया जो सर्वाधिक कठिन है, अपने मन को जीत लेना।

आतम जिणै सगल वसि ताकै जाका सतिगुरू पूरा। नानक कहते हैं कि जिसने स्वयं को जीता। 'जिन' शब्द से ही 'जैन' धर्म बना है, 'जिन' का अर्थ है जिसने जीता। महावीर ने किसको जीता? बाहर तो किसी को नहीं जीता, भीतर ही स्वयं को जीता। आतम जिणै सगल वसि ताकै। और कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति जिसने स्वयं को जीत लिया, जिसके मन पर खुद का काबू हो गया, जिसने अपनी आत्मा को जान लिया उसका वश सारी सृष्टि पर हो जाता है।

सगल वसि ताकै, सारी सृष्टि पर। ठाकुरु गाईए आतम रंगि। उस परमात्मा को

पाना है तो उसके रंग में रंगो। अपने भीतर जो चेतना का रंग है उसमें डुबकी लगाओ। हमारे भीतर चेतना में सारी दिव्य अनुभूतियां मौजूद हैं। शरीर के माध्यम से इंद्रियों से हम जो-जो बाहर जगत में जानते हैं उन सबका सूक्ष्म अनुभव भीतर चेतना में स्वयं मौजूद है। वहां अनाहत नाद गूंज रहा है, वहां स्त्रोतहीन प्रकाश मौजूद है, ठीक इसी प्रकार वहां दिव्य स्वाद, दिव्य सुगंध, दिव्य खुमारी और दिव्य स्पर्श मौजूद है। यह सब चैतन्य के ही गुण हैं, आत्मा के रंग में रंगो। नानक कहते हैं- ठाकुरु गाईऐ आतम रंगि। सरणी पावन नाम धिआवन सहजि समावन संगि। उस पावन नाम का ध्यान करो।

उपनिषदों में सबसे छोटा उपनिषद है- आत्मपूजा उपनिषद। उसके नाम से ही स्पष्ट हो गया कि पूजने योग्य क्या है? वह स्वयं का होना, आत्मपूजा। ऋशि पहली ही पंक्ति में कहता है कि वह ओम् है और उसका स्मरण ध्यान है। इस उपनिषद में कुल १७ पंक्तियां है, वह भी बिल्कुल छोटी-छोटी। यह उसका पहला वचन है कि वह ओम है और उसका स्मरण ध्यान है। परमात्मा की परिभाषा कर दी, वह ओम है और ध्यान की भी परिभाषा कर दी कि उसका स्मरण ध्यान है। इतने छोटे से वाक्य में सबकुछ आ गया, धर्म का सारा सारसूत्र आ गया। वही गुरुनानक देव कह रहे हैं, सरणी पावन नाम धिआवन, उस पावन नाम के शरण में जाओ, उसके ध्यान में डूबो, सहजि समावन संगि। फिर धीरे-धीरे स्मरण में डूबते-डूबते परमात्मा में लीन हो जाओगे, समा जाओगे। सहजि समावन संगि।

शुरूआत में लगता है कि द्वैत है, मैं भीतर सुनने वाला हूं, ओंकार की ध्वनि को सुन रहा हूं, मैं देखने वाला हूं, भीतर प्रकाश को देख रहा हूं, डूबते-डूबते एक दिन पता चलता है कि दो नहीं हैं। वह प्रकाश, वह ओंकार, वह दिव्य सुगंध मैं ही हूं, वह मुझसे भिन्न नहीं है। उस दिन आत्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं, अलग-अलग नहीं रह जाते। सरणी पावन नाम धिआवन सहजि समावन संगि। जन के चरन वसहि मेरे हीअरै संगि पुनीता देहि।

कहते हैं, हे प्रभु तुम्हारे जो जन हैं, यह हरिजन शब्द बड़ा प्यारा है, संतों ने इसका प्रयोग किया है सद्गुरू के अर्थ में, प्रभु के लोग हरिजन हैं। जो तुम्हारे जन हैं उनके चरण का मैं दास रहूं, उनके चरण मेरे हृदय में बसे रहें। जन के चरन वसहि मेरे हीअरै संगि पुनीता देहि। उन्हीं के संगत में मेरा शरीर भी पवित्र हो जाएगा, पुनीत हो जाएगा, मेरा मन निर्मल हो जाएगा। जन की धूरि देहु किरपानिधि नानक कै सुखु एही। कहते हैं नानक कि बस मेरा सारा सुख यही है कि संत जनों की चरण रज मुझे मिलती रहे, उनके सत्संग का लाभ मिलता रहे।

दुनिया में जो लोग सीधे परमात्मा की खोज में निकलते हैं वे बड़ी मुश्किल में पड़

जाते हैं, उन्हें परमात्मा नहीं मिलता। जो गुरू की खोज में निकलते हैं वे सौभाग्यशाली हैं। गुरू तो मिल ही जाता है और गुरू के माध्यम से प्रभु भी मिल जाता है। जो सीधे प्रभु की तलाश में निकले उन्हें कुछ भी नहीं मिलता, न प्रभु मिलता, न गुरू मिलता। गुरू के माध्यम से जो चले, गुरू की शरण में जो आए, गुरू एक दिन प्रभु से मिलन करा देता है। उसका काम ही यही है। कबीर ने कहा है न- गुरू गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाय, बलिहारी गुरू आपकी जिन गोविंद दियो मिलाय।

जो अभिमानी लोग हैं, घमंड से भरे हुए हैं वे सोचते हैं कि हम खुद ही खोज लेंगे, क्यों दूसरे से पूछें? एक बड़ी हैरानी की बात है, सड़क पर आप जा रहे हैं और चौराहे पर पान की दुकान पर रुक कर पूछ लेते हैं कि स्टेशन का रास्ता कौन सा है? तब आपको शर्म नहीं आती, तब अहंकार को चोट नहीं लगती कि अरे, देखो हम पनवाड़ी से रास्ता पूछ रहे हैं, तब आप नहीं कहते कि मैं खुद ही खोज लूंगा। छोटी-छोटी चीज तो हम दूसरों से सीखते हैं, आज तक जो भी हमने सीखा किसी न किसी के सहयोग से ही सीख पाए हैं। आज हम जो भी हैं उसमें बहुत सारे लोगों का योगदान है, उन्होंने जो सिखाया उसकी वजह से आज हम वह हो पाए हैं जो हम हैं।

मनुष्य के लिए तो खुद अपने दो पैरों पर चलना भी संभव नहीं है, किसी ने सहारा दिया, अंगुली पकड़ी तब हम खड़े हो पाए। छोटी से छोटी चीज भी हम खुद नहीं सीख सकते। जब प्रभु की खोज की बारी आती है तब अचानक हमारे भीतर से एक अदभुत अहंकार आ जाता है कि नहीं, हम खुद ही ढूंढ़ लेंगे। बड़ी विचित्र बात है, छोटी-छोटी चीज हमें नहीं आती। घड़ी खराब हो जाए तो आप उसके मिस्त्री को दे आते हो कि इसको सुधार देना।

एक बार मुल्ला नसीरुद्दीन अपनी घड़ी लेकर घड़ीसाज के पास गया। घड़ी के तीन-चार टुकड़े उसकी टेबिल पर रख दिए और कहा कि इसको सुधार दीजिए। घड़ीसाज ने ऊपर से नीचे तक मुल्ला को देखा और कहा कि क्या तुमने इसे सुधारने की कोशिश की थी? मुल्ला ने कहा हां, टेबिल से गिर गई थी तो मैंने सोचा मैं ही सुधार लूं। उसने कहा कि अब इसको उठाकर कचड़े में फेंक दो, अगर तुमने सुधारने की कोशिश न की होती तो मैं सुधार सकता था, अब यह किसी मतलब की नहीं है।

आदमी का मन विचित्र है, हर चीज में टांग अड़ाना चाहता है। जिस चीज के बारे में नहीं जानता उसमें भी टांग अड़ा देता है। घड़ी सुधारना मुश्किल है, पहले सीखना पड़ेगा। कोई तुम्हारा शिक्षक होगा, वह बताएगा, सिखाएगा, तब भी शायद कई सालों में सीख पाओगे। जब हम एक छोटी सी घड़ी को नहीं सुधार सकते तो यह जो मन है यह तो अत्यंत जटिल है। घड़ी तो एक साधारण सा यंत्र है, अगर आप कोशिश

करते रहो तो साल-दो साल में सीख जाओगे, आप भी घड़ीसाज बन जाओगे कोई खास बात नहीं है लेकिन यह जो मन है यह इतना सूक्ष्म है, इतना बारीक है, इसकी चालें इतनी आड़ी तिरछी हैं कि पकड़ना ही मुश्किल है। कुछ होता है कुछ दिखाता है, कुछ कहता है कुछ करता है।

लगभग सवा सौ साल से पश्चिम के मनोवैज्ञानिक मन का अध्ययन करने में लगे हुए हैं और बड़ी मेहनत कर रहे हैं लेकिन कुछ खास हाथ में नहीं आ पाता है। पकड़ में ही नहीं आता चाहे कितना ही विश्लेषण कर लो, वह बात अंजानी ही रह जाती है। मन के बारे में कुछ पता ही नहीं चलता। अगर हम इसको अपनी बुद्धि से सुधारने लगे तो फिर तो काम हो गया, यह ऐसा बिगड़ जाएगा कि फिर गुरू भी मिल जाएं तो वह भी न सुधार पाएंगे। सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो शुरूआत से ही किसी सदगुरू से जुड़ जाते हैं, उनके लिए मामला बहुत आसान हो जाता है।

जो अपनी ही बुद्धि से चलने की कोशिश करते हैं वह ऐसी गुत्थियों में उलझ जाते हैं कि फिर उनको समझाना बड़ा कठिन, लगभग असंभव सा हो जाता है। और वह इतने सालों से जो प्रयत्न करते आए हैं वह उनके अहंकार का हिस्सा बन गया, उसको छोड़ने के लिए भी वह राजी नहीं होंगे, वह उसी को सत्य मानते हैं। सच बात उन्हें झूठ जैसी लगती है, फिर तो बहुत ही मुश्किल है, लगभग असंभव सा ही है। इसलिए नानक का यह कहना कि हे प्रभु बस इतनी कृपा करो, हे कृपानिधि, जन की धूरि देहु किरपानिधि। तुम्हारे जो जन हैं इनकी चरण धूल मिलती रहे, इनका सत्संग लाभ मिलता रहे बस इतनी तुम्हारी कृपा रहे, बाकी काम तो गुरू संभाल ही लेंगे।

इस छोटे से आध्यात्मिक सूत्र को समझना, प्रभु से अगर मांगना है तो बस एक चीज मांगना जैसे नानक कह रहे हैं कि हे प्रभु बस इतनी कृपा करो कि गुरू से भेंट करा दो। क्योंकि यह काम हम स्वयं नहीं कर पाएंगे, यह अत्यंत कठिन काम है। हम कैसे गुरू को खोजेंगे? हम तो पहचान भी नहीं सकते। अगर हममें इतनी ही बुद्धि होती कि हम सदगुरू की पहचान कर लें तो फिर बात ही क्या थी। वह बुद्धि नहीं है यही तो हमारे जीवन की भटकन है। हम स्वयं अपने आप नहीं खोज पाएंगे, यह तो प्रभु की कृपा हो तो ही ऐसा कोई संयोग बन जाए कि गुरू से जोड़ लग जाए, नेह लग जाए।

इसलिए प्रभु से अगर प्रार्थना करनी है तो बस एक ही प्रार्थना करने योग्य है कि गुरू से हमारा मिलन हो जाए, हमारे भीतर प्रेमभाव उमड़ आए, हम साधना पथ पर अपने कदम आगे बढ़ाने लगें यह ही प्रभु से मांगना। गुरू से जब जुड़ गए तो फिर परमात्मा मिल ही जाएगा। प्रभु कृपा से गुरू मिलन होता है और गुरू कृपा से प्रभु मिलन होता है। यह अध्यात्म का सूत्र है- गुरुकृपा से प्रभुमिलन और प्रभुकृपा से गुरुमिलन।

संत कबीर साहब ने बड़ी अदभुत बात कही है– कहा है कि कर्ता करे न कर सके गुरू करे सो होय। वह परमात्मा भी एक काम नहीं कर सकता। लोग कहते हैं कि वह सर्वशक्तिमान है, कबीर कहते हैं कि नहीं, मैं इस बात से राजी नहीं। परमात्मा सर्वशक्तिमान नहीं है, वह चाहे भी तो हमें सीधा-सीधा स्वयं से नहीं मिला सकता, इतनी ताकत उसमें भी नहीं है। और सबकुछ कर सकता होगा, कबीर कहते हैं पर यह काम वह नहीं कर सकता कि सीधा ही किसी मनुष्य को स्वयं से या उसकी आत्मा से मिला दे। यह संभव नहीं है। कर्ता करे न कर सके गुरू करे सो होय।

तीन लोक नौ खण्ड में गुरु से बड़ा न कोय और इसलिए कबीर कहते हैं गुरु ही सबसे बड़े हैं। क्योंकि वे ही प्रभु से मिला सकते हैं। वे ही हमें साधना का मार्ग या विधि बता सकते हैं। कबीर कहते हैं कि मैं प्रभु को सबसे ऊपर नहीं मान सकता, मैं तो गुरू को ही ऊपर मानता हूं। बड़े प्यारे अंदाज में उन्होंने अपनी बात कही है। आओ इस प्यारे शबद के संग हम भी अंतर्यात्रा की दिशा में अपने कदम उठाएं।

हम हैं प्रभु के चाकर

जा का ठाकुरु तुही प्रभ ता के वडभागा।
ओहु सुहेला सद सुखी सभु भ्रमु भउ भागा ।।1।।
हम चाकर गोबिंद के ठाकुरु मेरा भारा।
करन करावन सगल बिधि सो सतिगुरु हमारा ।।1।।रहाउ।।
दूजा नाही अउरु को ता का भउ करीए।
गुरु सेवा महलु पाईए जगु दुतरु तरीए ।।2।।
द्रिसटि तेरी सुखू पाईए मन माहि निधाना।
जा कउ तुम किरपाल भए सेवक से परवाना ।।3।।
अंम्रित रसु हरि कीरतनो को विरला पीवै।
भजहु नानक मिलै एकु नामु रिद जपि जपि जीवै ।।4।।

हे प्रभु! तुम आप ही जिस मनुष्य के रक्षक हो, वह भाग्यशाली है अथवा उसका भाग्य बलवान है, वह सदा सहज जीवन व्यतीत करता है, वह सदा सुखी रहता है, उसका हर प्रकार का भय तथा भ्रम दूर हो जाता है ।।1।। (हे भाई!) मैं उस गोबिन्द का सेवक हूँ, वह मेरा स्वामी है, जो सर्वोच्य है, समस्त तरीक़ों से सब कुछ करने वाला है और कराने वाला है। वही मेरा गुरु है। (मार्ग-प्रदर्शक है) ।।1।।रहाउ।। विश्व में परमात्मा के बराबर का दूसरा कोई नहीं है, जिसका भय माना जाए। गुरु द्वारा बतलाई सेवा करने से परमात्मा के चरणों में ठिकाना मिल जाता है और संसार-सागर से पार उतर जाते हैं, जिससे पार उतरना अत्यन्त कठिन है ।।2।।हे प्रभु! तेरी कृपा-दृष्टि से ही सुख प्राप्त होता है। तुम्हारी कृपा से मन में तुम्हारे नाम का भण्डार आ बसता है। हे प्रभु! जिन पर तुम दयालु होते हो, वे तेरे सेवक, तेरे द्वार पर सत्कृत होते हैं।।3।। हे भाई! परमात्मा की गुण-स्तुति आत्मिक जीवन देने वाला रस है, कोई विरला मनुष्य यह (अमृतरस) पान करता है। हे नानक! जिसे परमात्मा का नाम मिल जाता है, वह अपने हृदय में यह नाम सदा जपकर आत्मिक जीवन प्राप्त कर लेता है ।।4।।

सब मित्रों को नमस्कार।
'जा का ठाकुरु तुही प्रभ ता के वडभागा।
ओहु सुहेला सद सुखी सभु भ्रमु भउ भागा ।।'
गुरु साहिब कहते हैं कि प्रभु की कृपा से मेरे सारे भ्रम और भय विदा हो गए हैं।
'हम चाकर गोबिंद के ठाकुरु मेरा भारा।
करन करावन सगल बिधि सो सतिगुरु हमारा ।।
दूजा नाही अउरु को ता का भउ करीए।
गुरु सेवा महलु पाईए जगु दुतरु तरीए।।'

कहते हैं, अब और किसी का भय नहीं रह गया। मुख्य रूप से इस पद में भय की चर्चा आयी है। मैं पूरे विस्तार में नहीं जाऊंगा। कह रहे हैं- 'सदा सुखी सब भ्रम भव भागा।' केवल वही सदा सुखी हो सकता है जिसके भ्रम और भय विदा हो जाएं। इस महत्वपूर्ण बिंदु को ठीक से समझ लें। भय हमारे जीवन का बहुत मूल-भूत तत्व है, बुनियादी तत्व है। अन्य सब चीजें उस भय के केंद्र से निकलती हुई शाखाएं और उपशाखाएं हैं। यह भय जन्म के साथ ही शुरू हो जाता है।

एक छोटे बच्चे का जन्म होता है घर परिवार के लोग तो खूब खुशी मना रहे, बधाईयां दे रहे लेकिन उस बच्चे पर क्या बीत रही है? इस जन्म की पूरी घटना में एक प्रकार से वो बुरी तरह संकुचित हुआ है। गर्भ में वह सुविधा जनक था, बाहर निकलते समय उसने भारी दबाव और संघर्ष का सामना किया। बाहर आते ही उसकी आंखे खुलीं, पहली बार उसने आवाजें सुनीं, प्रकाश देखा, वो चकाचौंध हो गया। आवाज सुनकर घबराया। अभी तक वह गर्भ के भीतर बिना इंद्रियों के था, अचानक यह सब जगत का देखना, सुनना, सूंघना आदि, वह बुरी तरह घबरा जाता है, आतंकित हो जाता है। मां से उसे रक्त, पोशण और ऑक्सीजन आदि मिल रहा था, अब अचानक वह सब बंद हो गया। बच्चे के प्राण तड़प उठे, भीतर श्वास की कमी आ गई, अभी कुछ समय लगेगा तब उसकी खुद की सांस चलेगी। लेकिन यह कुछ सेकेंड बहुत ही घबराहट वाले, भयभीत करने वाले हैं। पहले वह सब भांति से सुरक्षित था। आत्मचिंता नहीं थी अब आत्मचिंता शुरू हुई। एक स्वतंत्र अस्तित्व के विकास की तरफ उसने कदम बढ़ाए।

जन्म काफी भयावह घटना है। बच्चा चीख पड़ता है, रो पड़ता है, एक अंजान जगत में आ जाता है। भविष्य क्या होगा, कैसा होगा, क्या नहीं होगा? कुछ भी उसे नहीं पता। ये लोग कौन हैं, क्या कर रहे हैं? वो घबराया हुआ है। जीवन की शुरूआत भय से हो रही है। फिर उसकी इंद्रियां खुली, धीरे-धीरे वह बर्हिमुखी हुआ, कुछ महीनों के अंदर-अंदर उसकी देखने-सुनने की क्षमता प्रगाढ़ हो जाती है। वह बाहर देखता है कि अन्य लोग हैं, अन्य बच्चे भी हैं, बड़े हैं और मैं हूं। अपने होने का एक अलग अहसास शुरू होता है परंतु भय वैसा का वैसा ही बना रहता है, इसलिए वह भयभीत दृष्टि से ही सब कुछ देखता और समझता है।

उसे क्या दिखाई देता होगा, जरा कल्पना करें। एक चीज स्पष्ट नजर आती होगी

कि दूसरे लोग बड़े शक्तिशाली हैं, मैं बिल्कुल अशक्त हूं। मैं बिल्कुल निर्बल, उठ भी नहीं सकता, चल भी नहीं सकता, कुछ कह भी नहीं सकता, कर भी नहीं सकता। सब भांति दूसरों के ऊपर निर्भर हूं। मेरा जीवन ही दूसरों के ऊपर आश्रित है। और ये लोग काफी बलशाली हैं, कुछ भी कर सकते हैं। मुझे उठा के यहां से वहां रख देते हैं, ये सामान उठा लेते हैं, सब कुछ कर लेते हैं, मैं किसी योग्य नहीं हूं।

जब उसे स्वयं के होने की स्वतंत्र सत्ता का एहसास होता है तब दूसरों के साथ तुलना की शुरूआत होती है। और यह फिलिंग बहुत गहरे में घर कर जाती है कि दूसरे लोग बलवान है, मैं शक्तिहीन हूं, असहाय, हेल्पलेस हूं। थोड़ा और बड़ा होता है, समझ विकसित होती है। दूसरा अवलोकन वह यह करता है कि अन्य लोगों के पास काफी कुछ चीजें हैं। घर में और बड़े बच्चे हैं उनके पास खेल-खिलौने हैं, भांति-भांति के कपड़े हैं, जूता-चप्पल हैं, वे सब बहुत से चीजों के मालिक हैं। मैं बिल्कुल निर्धन हूं। मुझे हर चीज मांगनी पड़ती है और बड़ी मुश्किल से मिलती है। जरूरी नहीं कि मिल ही जाए।

एकाध साल का होते-होते अहसास आता है अज्ञान का कि दूसरे लोग बोलते हैं, अपनी बात कह सकते हैं, सुन सकते हैं पर मुझे भाषा ही नहीं आती, मुझे शब्दों के अर्थ ही नहीं पता हैं। मैं बोल नहीं सकता, ईशारों से या रो-धो के अपनी बात मनवाने की कोशिश करता हूं। मेरी बात स्पष्ट रूप से समझ नहीं आती है। बाकी सब एक दूसरे को अच्छे से समझ रहे हैं। फिर एक तीसरा बोध उसे यह होता है कि मैं अज्ञानी हूं और बाकी सब लोग बड़े ज्ञानी हैं। डेढ़-दो साल का होते-होते, घर के लोगों सें और फिर स्कूल के शिक्षकों से कहीं न कहीं नकारात्मक बातें सुनाई देने लगती हैं कि तुम नालायक हो, बेवकूफ हो, उल्लू के पट्ठे हो, गधे हो, तुमसे कुछ न हो सकेगा, यू आर गुड फॉर नथिंग आदि।

अभी एक मनोवैज्ञानिक का कथन प्ढ़ रहा था मैं। उसने लिखा है, पंद्रह साल की उम्र तक आते, करीब ड़ेढ़ करोड़ बच्चों को निगेटिव कमेंट सुनने पड़ते हैं। बहुत बड़ी गिनती है। बच्चा बहुत श्रद्धालु है, उसके अंदर संदेह की शक्ति नहीं है। जो कहा जाता है वह उसे मान लेता है। हमने कहा कि यह चावल है, यह दूध है और वो मान लेता है। कोई तर्क नहीं करता कि क्यों? उल्टा क्यों नहीं करते? दूध को चावल क्यों नहीं कहते, वह कभी ऐसा नहीं पूछता है।

जैसा भी कहा जाए, उसे कहा गया ये तुम्हारे पिता हैं। उसने नहीं कहा कि पहले डी. एन.ए टेस्ट कराओ। वह मान लेता है, सब चीजें मान लेता है। बहुत श्रद्धालु है, जब उससे कहा जा रहा है कि तुम बेवकूफ हो, नालायक हो, किसी काम के नहीं हो, तब भी वह सारी बातों को ग्रहण करता जा रहा है। उसके अंदर धारणा भरती जा रही है कि मैं अच्छा नहीं हूं। खासकर जब तुलना की जाती है कि वो देखो पड़ोस की लड़की को क्लास में फर्स्ट आयी। और एक तुम हो, नालायक!

चंदूलाल अपने बेटे से यही डायलॉग बोल रहा था। वो देखो पड़ोस की लड़की को क्लास में फर्स्ट आयी है। और एक तुम नालायक! बेटे ने कहा पापा उसी को देख-देखकर कर मेरी ये दुर्गति हुई है। वो पड़ोस की लड़की को मैं देखता रहा और आप कह रहे हो कि देख पड़ोस की लड़की को। इसी काम में तो मैं लगा हुआ था कई सालों से। इसी कारण तो किताब देख ही नहीं पाता था।

जब हम तुलना करते हैं अन्य बच्चों से तो यह बात और गहरी हो जाती है कि मैं अच्छा नहीं हूं, दूसरे लोग अच्छे हैं। आइ एम नॉट गुड। तो मुख्य रूप से यह चार भावनाएं बच्चे के भीतर प्रवेश कर जाती है और इसमें बिल्कुल असहायता सी महसूस होती है कि हम कुछ कर ही नहीं सकते हैं। पहली चीज मैं अशक्त हूं, पावरलेस हूं, मैं अज्ञानी हूं, निर्बुद्धि, मैं अच्छा नहीं हूं, अर्थात् प्रेम पाने योग्य नहीं हूं। जब परिवार के लोग कहते हैं कि तुम ऐसा कर के दिखाओगे तो फिर हम ऐसा करेंगे। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मैं जैसा हूं वैसा प्रेम के योग्य नहीं हूं। मुझे कुछ विशिष्ट करना होगा तब जाकर ये लोग मुझे प्रेम करेंगे। वरना डाटेंगे, डपटेंगे, मारेंगे कि मैं ठीक नहीं हूं। आई एम नॉट राईट और मैं दीन-हीन दरिद्र हूं। अन्य लोगों के पास कितना कुछ है। ये चार भावनाएं बच्चे को घेर लेती हैं और इन सब के केंद्र में भय है। भय से ही शुरूआत हुई और बाद में धीरे धीरे यही भावनाएं और विकसित होने लगीं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चार पर्सनेलेटी होल्स बन जाते हैं- हमारे व्यक्तित्व के छिद्र। हम इतने डरे हुए होते हैं कि हम इन छिद्रों को गौर से देखना ही नहीं चाहते हैं, हम इनसे बचने की कोशिश करते हैं। यह चार भावनाएं इतना अधिक भय पैदा करती हैं कि हम पलट कर अपनी तरफ देखना भी नहीं चाहते हैं। एक उल्टी कोशिश शुरू होती है कि इन पर्सनेलेटी होल्स को हम ढांक लें, भर लें या छुपा लें। हमको पता है कि ये मौजूद हैं, पर दूसरों को पता न लग जाए, इससे एक नयी झंझट शुरू होती है कि हम इनको छुपाने में व्यस्त हो जाते हैं। इसके पहले कि दूसरों को पता चल जाए कि मैं कमजोर हूं, मैं पहले ही दो चार हाथ किसी को लगा दूं, ताकि उसको यह न लगे कि मैं कमजोर हूं।

बच्चों को देखें, कितने लड़ाई-झगड़े और मारपीट करते हैं। उन्हें खुद को पता है कि मैं निर्बल हूं, डर है कि कहीं दूसरे को न पता लग जाए इसलिए दो-चार घूंसे लगाकर दूसरों को इस भ्रम में रखो कि मैं बहुत ताकतवर हूं। बच्चे खूब पज़ेसिव भी हो जाते हैं। अलमारी भरी पड़ी है पुराने खिलौनों से पर उन्हें और नए खिलौने चाहिए। कभी मां-बाप कहें कि किसी और बच्चे को दे दो यह खिलौने तो एकदम मना कर देंगे, रोने लगेंगे। खुद भी नहीं खेलना है और दूसरे को भी नहीं देना है। ये पज़ेसिव होना है। अभी धन-दौलत पर उसकी पकड़ नहीं है, पैसे की भाषा नहीं समझता है पर जो उसके बस में है, जो उसकी समझ में आता है, वह उसका पज़ेशन करेगा। अपने माता-पिता के ऊपर पूरा पज़ेशन करना चाहेगा।

कुछ बच्चे हैं डाक टिकट इकट्ठे करते रहते हैं। डायरी में चिपकाते जा रहे हैं। कहीं से भी नए प्रकार का टिकट मिल जाए तो बड़े आल्हादित हो जाते हैं। ये एक प्रकार से संग्रह शुरू हो गया, चाहे धन का नहीं पर टिकट का ही सही। वह दूसरे बच्चों को दिखाएगा कि देखो तुम्हारे पास कितने हैं? मेरे पास तुमसे पांच ज्यादा हैं। ये ज्यादा अमीर हो गया। वो कई प्रकार से अपनी दीनता-हीनता मिटाने की कोशिश कर रहा है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन जंगल से गुजर रहा था, चार डकैतों ने घेर लिया, हमला कर दिया, छीनने लगे उसका सामान। नसरुद्दीन ऐसा लड़ा, ऐसा लड़ा जिसका कोई हिसाब नहीं। उन चारों की हालत खराब कर दी। उनके पास चाकू वगैरह थे लेकिन नसरुद्दीन ने निहत्थे ही उनकी धुनाई-पिटाई कर दी।

चारों डकैत भी आश्चर्य चकित थे, बामुश्किल उस पर काबू पाया। कोई आधा घंटा भर संघर्ष करने के बाद, आखिकार उन्होंने नसरुद्दीन को पकड़ ही लिया। उसके जेब टटोले। लग रहा था कि खूब माल होगा। आठ आने निकले। बहुत ही निराश हुए, आठ आने के पीछे इसने अपनी जान जोखिम में डाल कर, हम चारों से इतनी लड़ाई की। डाकुओं ने कहा, नसरुद्दीन! हद हो गयी, हम तो सोच रहे थे कि लाखों का माल निकलेगा। कुछ हीरा, जवाहरात होंगे, पर यह तो कुल आठ आने हैं। इसके लिए तुम इतना लड़े, शहीद होने को तैयार थे, हम चारों के प्राण ले रहे थे।

नसरुद्दीन ने कहा सवाल ये नहीं है कि मेरे प्राण जाएं या तुम्हारे प्राण जाएं, सवाल ये है कि मेरी माली हालत किसी को पता नहीं चलनी चाहिए। इसलिए लड़ रहा था। अब भेद खुल ही गया है, तो ये आठ आने रख लो, ले जाओ। अतः मर जाना है मगर किसी को बताना नहीं है।

जो आदमी बहुत अपना बल दिखाता है याद रखना वो बहुत ही निर्बल, बहुत डरपोक और कमजोर है। जो अपनी धन-दौलत की शान दिखा रहा है और भण्डार लगाए जा रहा है धन का, एक लिमिट तक तो ठीक है कि धन उपयोगी है। लेकिन लोग पागलों की तरह फिर भी कमाए जा रहे हैं, किसलिए? भीतर वो जो दीनता-हीनता से जुड़ा हुआ भय है किसी को पता न लग जाए कि मैं गरीब हूं। इतने अमीर हो जाओ, इतने अमीर हो जाओ कि कोई भी न कह सके कि तुम गरीब हो। लेकिन तुम तो जानते ही रहोगे कि तुम किस छेद को ढंक रहे हो? और मजे की बात यह है कि बाहर तुम कितने बड़े-बड़े महल और इंडस्ट्री खड़ी कर लो, कितना ही बड़ा बैंक बैलेंस इकट्ठा कर लो, भीतर का वो छेद भरता ही नहीं। उसके भरने का कोई उपाय ही नहीं है।

बाहर की चीजें भीतर के जगत में नहीं पहुंचती हैं। बाहर-भीतर का कोई मिलन हो नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार ज्ञान के मामले में होता है। कुछ लोग किताबें पढ़ते जा रहे, कंठस्थ करते जा रहे हैं। बड़े फिलासफर बन गए, दार्शनिक बन गए, शट्-दर्शन याद हो गया है। चाहे विज्ञान के क्षेत्र में, चाहे धर्म के क्षेत्र में या साहित्य के क्षेत्र में लोग प्रकाण्ड पंडित बन गए हैं। अक्सर आप ऐसे लोगों को पाएंगे कि जिन्होंने अथाह ज्ञान का भंडार एकत्रित किया है, उनके निकट जाने पर पता चलेगा कि वे बिल्कुल मूर्ख हैं। उनके ज्ञान का भण्डार केवल दिखावा है परंतु भीतर तो एक मूढ़ व्यक्ति मौजूद है।

कई बार यहां पर पी.एच.डी, डी.लिट की डिग्रियों वाले प्रोफेसर्स आ जाते हैं, एक समान्य व्यक्ति के बराबर भी उनकी बुद्धि नहीं है। शायद इसीलिए उनको जल्दी पड़ी थी कि एकदम से ग्रेजुएशन, पोस्ट ग्रेजुएशन, पीएचडी और डी.लिट हो जाएं, ताकि किसी को पता न लग जाए कि मैं मूर्ख हूं। मुझे स्वयं को तो पता ही है, लोगों को न पता चल जाए, इसलिए यही छुपाने का ढंग है। तो जो निर्बल है वो बलशाली होने की कोशिश कर रहा है, जो निर्धन है वह धनी होने की कोशिश कर रहा है, जो अज्ञानी है वह बहुत ज्ञान का भण्डार इकट्ठा कर लेगा। जो व्यक्ति अनुभव कर रहा था कि मैं अच्छा नहीं हूं वह हर प्रकार से साबित करता रहेगा कि मैं श्रेष्ठ हूं, मैं अच्छा हूं, मुझे प्रेम करो, मैं प्रेम करने के योग्य हूं। ये चार कोशिशें चलती ही रहेंगी।

तो पहली कोशिश हम करेंगे, स्वयं को सिद्ध करने की। चूंकि यह कार्य कठिन है इसलिए हम अपने से मुड़कर, दूसरों की तरफ ईशारा करेंगे, यह सरल है कि दूसरों की निंदा शुरू कर दो। वे गलत हैं। हमारी पूरी जिंदगी इसी झंझट में बीत जाएगी कि कैसे अपने व्यक्तित्व के छिद्रों को यानि अपनी कमियों को ढांकने की कोशिश करें? हजारों लोगों को गलत साबित करने का मतलब यह नहीं है कि आप सही साबित हो जाते हैं। अनेक लोगों को हम यह कह दें कि फलां व्यक्ति गलत है, वह प्रेम और सम्मान के योग्य नहीं है तो इससे हम प्रेम के योग्य नहीं बन पात हैं। पचासों आदमी मूर्ख हैं तो इसका कदापि ये मतलब नहीं है कि मैं ज्ञानवान हो गया।

तो ये जो हमारा व्यवहार है, मुख्यतः आठ प्रकार का 'घोस्ट नेचर' होता है, जिसकी चर्चा **ओशो फ्रेगरेंस** के प्रोग्राम 'ध्यान' के 'सम्यक् जाग्रति' नामक सत्र में की जाती है। ये व्यवहार उन पर्सनेलेटी होल्स को ढांकने के लिए ही होता है। मरते दम तक यही प्रयास जारी रहता है परंतु इसके बावजूद भी वह भय बना रहता है। बुनियादी रूप से भय में रत्ती भर भी अंतर नहीं होता है, क्योंकि बाहर की चीजें और भीतर का वह छेद, कभी निकट आते ही नहीं हैं। यह मूल भय बना ही रहता है और उससे भ्रांतियां बढ़ती ही जाती हैं। हम भ्रांतियों के एक मायावी संसार में चले गए। मूल भय एक है, प्राण कंपित हैं, डरे हुए हैं। इसी डर की हमने चार प्रकार के 'पर्सनेलेटी होल्स' के रूप में व्याख्या कर ली और पुनः इस भ्रांति में पड़ गए कि आठ प्रकार के 'घोस्ट नेचर' से इन छेदों को या इन कमियों को भरा जा सकता है या कम से कम ढांका जा सकता है। अंततः हम पाते हैं कि किसी भी चीज में हम सफल नहीं हो पाए। वो भय ज्यों का त्यों बरकरार है। वो पर्सनेलेटी होल्स वहीं के वहीं है।

हजार लोग भी मुझे प्रेम दें, आदर दें, सम्मान करें पर भीतर से मैं तो जानता ही रहूंगा कि मैं गलत हूं। या मैं अच्छा नहीं हूं। वो पर्सनेलेटी होल अछूते ही रह जाते हैं। लाखों लोगों में मेरा नाम फैल जाए, प्रतिष्ठा हो जाए पर भीतर मुझे तो पता ही है कि मैं ठीक नहीं हूं। फिर क्या उपाय है? एक ही उपाय है वह है आध्यात्म, एक बार हिम्मत कर के ये जो भय की अवस्था है और ये जो पर्सनेलेटी होल्स का अनुभव है, इसको गौर से देख लें। कभी हमने इन्हें गौर से देखा ही नहीं है, हम सीधे इन्हें भरने में, ढांकने में या छुपाने में लग गए। इन कमियों का सामना करने पर एक अद्भुत बात पता चलती है कि जब हम बिल्कुल निष्क्रिय होकर, शांत होकर, हिम्मत कर के कहते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाए पर मैं हर बात का सामना करूंगा, वॉट एवर इज़ द केस, आई विल फेस इट; अब इसका साक्षात्कार हो ही जाए, जो भी स्थिति हो मैं उससे बचने की या भागने की कोशिश नहीं करूंगा। मैं पूर्ण निष्क्रियता में, पूर्ण सजगता में निष्पक्ष होकर देखने को तैयार हूं। बस यहीं रूपांतरण घटित हो जाता है। तब हमें पता चलता है कि वो जिनको हम होल्स कह रहे थे वह भी हमारी भ्रांति ही थी ऐसा कुछ है नहीं। भय के भूत को गौर से देखने पर कुछ भी नहीं मिला। भीतर तो एक गहन संतोष और तृप्ति की अवस्था है। डीप कंटेंटमेंट, नथिंग इज मिसिंग, देयर इज नो होल, लेकिन यह तथ्य जानने के लिए अत्यंत शांत और सजग दशा चाहिए। तब सारी भ्रांतियां मिट जाती हैं और भय भी सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

सुनो सखियों– मेरी नींद भली

सखी नालि वसां अपुने नाह पिआरे मेर मनु तनु हरि संगि हिलिआ।
सुणि सखीए मेरी नींद भली मैं आपनड़ा पिरु मिलिआ।।
भ्रमु खोइओ सांति सहजि सुआमी परगासु भइया कउलु खिलिआ।
वरु पाइआ प्रभु अंतरजामी नानक सोहागु न टलिआ।।

हे सहेली! मैं सदा अपने पति–प्रभु के साथ रहती हूँ, मेरा मन उस हरि के साथ लग गया है, मेरा मन उस हरि के साथ एक हो गया है। हे सहेली! मुझे नींद भी प्यारी लगती है, क्योंकि स्वप्न में भी मुझे अपना प्यारा पति मिल जाता है। उस मालिक–प्रभु ने मेरी दुविधा दूर कर दी है, मेरे भीतर अब शांति बनी रहती है, मैं आत्मिक स्थिरता में टिकी रहती हूँ, मेरे भीतर उसकी ज्योति का प्रकाश हो गया है, जैसे सूर्य की किरणों से कमल पुष्प खिल पड़ता है, उसी प्रकार उसकी ज्याति के प्रकाश से मेरा हृदय प्रसन्न रहता है। हे नानक! (कह–हे सहेली! सत्संगति के प्रभाव से) मैंने अन्तर्यामी पति–प्रभु पा लिया है और (मेरे सिर का) यह सौभाग्य (सोहाग) कभी दूर होनेवाला नहीं।

सभी मित्रों को नमस्कार।

'सखी नालि वसां अपुने नाह पिआरे।

मेर मनु तनु हरि संगि हिलिआ।।

सुणि सखीए मेरी नींद भली।

मैं आपनड़ा पिरु मिलिआ।।

कहते हैं, हे सहेली! मेरा प्यारा सदा-सदा मेरे संग है। मेरे भीतर ही है। उसके साथ मेरा तन-मन लग गया है। अब मुझे नींद भी बड़ी अच्छी लगती है क्योंकि नींद में भी, स्वप्न में भी अब उससे बिछुड़ना नहीं होता।

'भ्रमु खोइओ सांति सहजि सुआमी।

परगासु भइया कउलु खिलिआ।।'

सारी भ्रांतियां टूट गई हैं, गहन शांति घटित हो गई और वह सहज स्वामी जो संग ही जन्मा है, जो मेरा ही स्वभाव है, वह सदा-सदा मेरे संग है। 'प्रगास भया, कमल खीलिया।' भीतर हृदय कमल खिल गया है, मैं प्रेम भाव से भर गयी हूं, भीतर प्रेम का प्रकाश फैला है।

'वरु पाइआ प्रभु अंतरजामी।

नानक सोहागु न टलिआ।।'

अब ऐसा प्रीतम पाया है जो कि अंतरयामी है। भीतर का परम तत्व है, वह चैतन्य है। 'नानक सुहाग न टलिया।' कहते हैं नानक कि अब मेरा सौभाग्य, मेरा सुहाग कभी नहीं मिटेगा, मेरा सुहाग कभी टलने वाला नहीं है, वह मेरा ही अंतरतम है, वह मैं ही तो हूं। दूसरे से मिलन हुआ है तो बिछुड़ना हमेशा संभव है। पर अपने ही भीतर के उस एक तत्व से मिलना, जो वास्तव में हमारा होना है, उससे बिछोह संभव नहीं है। फिर क्यों हम उसे विस्मरण कर देते हैं? यह बात थोड़ी सोचने जैसी है। वह विस्मरण इसलिए हो जाता है, क्योंकि जो सदा-सदा उपलब्ध है उस पर दृष्टि पड़नी बंद हो जाती है।

संसार की वस्तुओं पर नजर पड़ती है क्योंकि वे सदैव के लिए नहीं हैं। आज है पर कल कुछ पक्का नहीं है, इसलिए वहां हमें शीघ्रता होती है कि जो पाना है उसे जल्दी पा लो फिर पता नहीं संभव होगा कि नहीं होगा? परिस्थितियां साथ देंगी कि नहीं देंगी? भीतर का हमारा सहज स्वभाव सदा-सदा से था, है और

रहेगा। कुछ मिटने वाला नहीं, कुछ खोने वाला नहीं। चाहे हम उसे बिल्कुल भी भूल जाएं तो भी वह वहीं का वहीं रहेगा। इसलिए जो सहज व स्वभाविक है, जो सदा-सदा उपलब्ध है उससे हम विमुख हो गए और जो चीजें क्षणभंगुर हैं उनमें हमारी उत्सुकता पैदा हो गयी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय, एक बार यह खबर फैली कि लंदन की टावर पर हिटलर बम गिराने वाला है। यह जानकारी मिलते ही लंदनवासियों की भारी भीड़ उमड़ पड़ी, लंदन टावर देखने के लिए। उस भीड़ को नियंत्रित करना इतना मुश्किल हो गया कि बम तो जब गिरेगा तब गिरेगा, कहीं इस भीड़ की वजह से ही टावर न टूट जाए। इतना वजन और अंग्रेज़ लोग ऐसे भी बड़े शिष्टाचारी होते हैं, हर जगह 'क्यू' लगाते हैं लेकिन उस समय भूल गए 'क्यू' लगाना। बिल्कुल हिंदुस्तानियों की तरह हो गए, सब टूट पड़े, वहां व्यवस्था करना मुश्किल हो गई, लोगों को हटाना मुश्किल हो गया। वहां कुछ विदेशी थे, उन्होंने कहा कि आप सब तो लंदन के ही रहने वाले हो, आपने तो देखा ही होगा, हमने कभी नहीं देखा है, पहले हमें जाने दो।

यहां के लोग सोचते रहते थे कि हम यहीं के तो रहने वाले हैं कभी भी देख लेंगे। दूर-दूर से सारी दुनिया से लोग देखने आते थे परंतु लंदन के लोगों ने ही नहीं देखा था। उनको लगता रहा कि कभी भी देख लेंगे, यहीं तो है। ऐसा ही होता है, उस जगह के लोग वह स्थान कभी नहीं देख पाते परंतु दूर-दूर से जो लोग घूमने आते हैं, वे सोचते हैं पता नहीं फिर आना संभव हो या नहीं? अब आए हैं तो यह जगह देखकर ही चलते हैं।

दूर वाले सब कुछ देखकर चले जाएंगे। हफ्ते भर में वो सब देख लेंगे पर जो वहां के निवासी हैं वे अपनी पूरी जिंदगी भर में नहीं देख पाएंगे। पर्यटक सात दिन में सब कुछ घूम लेगा और वहीं का रहने वाला व्यक्ति ७० साल में भी नहीं देख पाएगा। उसको लगता है कभी भी देख लेंगे जल्दी क्या है? उसकी नजर कहीं और, किसी दूर की चीज़ पर पड़ रही है। वो कहीं और घूमने जाएगा।

ऐसा हमारा चित्त है। जो उपलब्ध है, जो मौजूद है, धीरे-धीरे हम उसके प्रति बिल्कुल अंधे हो जाते हैं जैसे कि वो है ही नहीं। जो मौजूद नहीं है उसे पाने की हमें जल्दी रहती है कि पहले इसे जान लें, पहले इसे भोग लें, इसको पहचान लें, क्योंकि इसका भरोसा नहीं है। जो चीज भरोसे पर है उस पर हम नजर ही नहीं डालते। साधक को अपनी यह चित्त वृत्ति बदलनी होगी, बिल्कुल पलटनी होगी और इसलिए

ध्यान साधना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है कि हम वर्तमान के प्रति सजग हों। जो है, जो हम हैं उसके प्रति हम सजग हों। थोड़ी देर के लिए संसार को भूल जाएं, अपने पर आ जाएं। खूब अच्छे से इस बात को समझ लेना। बस छोटा सा सूत्र है कि संसार में हम कैसे उलझ गए? क्षणभंगुर में जिज्ञासा की वजह से उलझ गए। और ध्यान में हम कैसे डूबेंगे? शाश्वत में उत्सुक होंगे तो ध्यान में डूबेंगे।

कई लोग कहते हैं कि चित्त बड़ा चंचल है, भीतर डूबने नहीं देता, अंतर्यात्रा नहीं करने देता, उसका कारण यही है कि जब तक हमें क्षणभंगुर में रस है तब तक हम बाहर-बाहर भागेंगे। हमें लगेगा कि समय बीता जा रहा है, जल्दी करो, कल हो न हो। भीतर का क्या है? अभी नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, परसों नहीं तो अगले बरस, नहीं तो अगले जन्म में। भीतर कुछ घटने वाला नहीं, कुछ खोने वाला नहीं, कुछ मिटने वाला नहीं है। इस वृत्ति को खूब अच्छे से समझ लेना फिर पलटना बिल्कुल आसान होगा।

हम संसार में कैसे उलझे, पहले वह समझ लें तब कैसे हम स्वयं में डूब सकते हैं वह अपने आप समझ में आ जाएगा। शाश्वत में रस लेना शुरू करें। जो था, है, और रहेगा उसकी तरफ हमारी चेतना प्रवाहित हो तो हम तुरंत स्वयं पर आ जाएंगे। फिर उससे कोई बिछोह संभव नहीं है। ओषोधारा में, समाधि की विधियों में, अलग-अलग आयामों में जो साधक को ले जाया जाता है, वह भी भीतर की तरफ मुड़ने के लिए सहायक है। जो सदा-सदा है वहां ध्यान लाओ।

ओंकार की ध्वनि सदा गूंज रही है, इसमें न कमी होती है न बढ़ोत्तरी होती है, यह सदा-सदा से है और आगे भी सदा-सदा रहेगी। जो व्यक्ति इसमें रस लेने लगा निश्चित ही उसमें रूपांतरण होने लगेगा। जितने लोग ध्यान समाधि करने आते हैं उसमें से केवल पचास प्रतिशत ही सुरति समाधि करने आते हैं बाकी के पचास प्रतिशत को ये महत्वपूर्ण नहीं लगता कि जो आवाज सदा ही गूंज रही है उस पर क्यों ध्यान देना? उन्हें अभी बाहर की ध्वनियों में रस है।

कोई फिल्मी प्रोग्राम हो रहा हो तो पहले हम उसे जाकर देखेंगे क्योंकि वो हमेशा तो नहीं रहेगा। वो खो जाएगा। वो आज ही है पता नहीं फिर कभी होगा कि नहीं होगा, ऐसा मौका मिलेगा कि नहीं मिलेगा। ओंकार सुनकर क्या करना है? वो तो अपने भीतर ही है कभी भी सुन लेंगे। बाद में सुन लेंगे। पचास प्रतिशत लोग ध्यान समाधि करने के बाद, नाद को जानने के बाद भी, भीतर की ओर यात्रा करने

के इच्छुक नहीं होते हैं।

पर जो साधक भीतर जाने का साहस करते हैं, वे नाद व आलोक को जानकर उसमें स्थिर होने लगेंगे। उन्होंने अपनी मन की वृत्ति को पलटा। वे उसमें रस लेने लगे जो हमारे भीतर ही मौजूद है। सदा-सदा है, सदा-सदा रहेगा। इस वृत्ति के पलटते ही हम ध्यानस्थ होना सीख गए, आत्मरमण करना सीख गए। चेतना के समस्त दिव्य गुण हमें भीतर की ओर ले चलने के लिए ही हैं।

एक और छोटी सी बात कहना चाहूंगा। बहुत लोग साधना की शुरूआत दुख की वजह से, चिंता की वजह से, तनाव के वजह से, कोई समस्या सुलझाने के लिए, किसी भय से छुटकारा पाने के लिए या किसी निगेटिव कारण से करते हैं। उनका पहला कदम ही गलत है। कुछ लोग किसी प्रकार के मनोरोग से पीड़ित हैं वे उससे छुटकारा चाहते हैं। कोई बहुत क्रोधी है, खुद परेशान है, दूसरे भी उससे परेशान हो चुके हैं। इसी प्रकार सबकी कोई न कोई तकलीफ है। इन तकलीफों से छूटने के लिए साधना की शुरूआत करते हैं।

साधना में प्रगति उन्हीं की हो सकती है जो स्वयं के प्रति प्रेम पूर्ण है, शांत है, सुखी चित्तवाले हैं, पॉजिटिव दृश्टिकोण वाले हैं, प्रसन्न रहते हैं, खुशमिजाज हैं ऐसे व्यक्ति जब अपने भीतर के दिव्य गुणों में डूबते हैं, उनका डूबना बहुत आनंददायी होता है। क्योंकि प्रसन्न होना उन्हें आता ही है। उनका स्वभाव पहले से ही प्रेमल है। यही प्रसन्नता भीतर आत्मगुणों के तरफ मुड़ जाएगी। जो व्यक्ति अशांत है, क्रोधी है, बेचैन है, चिंताग्रस्त है, भयभीत है, वो इन सभी नकारात्मक वृत्तियों के संग भीतर जाएगा। ऐसे में उसकी डुबकी भीतर नहीं लगेगी, वो कितनी ही कोशिश करता रहे वो परेशान ही रहेगा। थोड़े दिन बाद साधना करना छोड़ देगा। उसे लगेगा कि उसके बस की बात नहीं है। क्यों समय बर्बाद करना?

जो लोग पहले से खुश हैं, शांत हैं, प्रफुल्लित हैं, प्रेमपूर्ण हैं, अहोभाव में जीते हैं, जीवन के प्रति जिनके भीतर धन्यवाद है, ऐसे लोग साधना में खूब अच्छी प्रगति कर सकते हैं। लेकिन अक्सर उल्टा ही होता है। मैं जगह-जगह जाता हूं सत्संग लेने और बहुत से नये लोगों से मुलाकात होती है। उन्हें मैं ध्यान के लिए आमंत्रित करता हूं तब वो कहते हैं कि ध्यान का क्या करना? हम तो वैसे ही खुश हैं।

मैं कहता हूं यही तो असली बात है। तुम्हें ही तो असली जरूरत है, ध्यान

तुम्हारे ही लिए है। अधिकांश लोग समझते हैं कि मेडिटेशन कोई मेडिसिन की तरह है, कि रोगियों के लिए, परेशानों के लिए, किसी को नींद नहीं आ रही है तो ध्यान करो, भजन करो। ये कोई दवा नहीं है। ये तो जगाने वाला तत्व है। जो आदमी कह रहा है कि हम तो वैसे ही खुश हैं, आनंदित हैं, हमें क्या करना ध्यान करके? इसको समझाना बड़ा मुश्किल है परंतु यही है वह व्यक्ति जिसको ध्यान बहुत अच्छा लगेगा। इसकी बहुत तीव्र गति होगी और यह आने के लिए तैयार नहीं है।

जो क्रोधी, तनाव ग्रस्त और चिंतित है, वो आने के लिए तैयार है पर उसे ज्यादा कुछ होने वाला नहीं है। मंदिरों, मस्जिदों, दरगाहों और फकीरों की कब्रों पर हमेषा मनोरोगियों और याचकों की भीड़ लगी रहती है। दुखी, परेशान और त्रस्त लोग वहां भरे हुए हैं। दुखों और षिकायतों की वजह से मंदिर, मंदिर नहीं रह जाता है। ऐसे लोगों को कुछ लाभ नहीं होने वाला है, उनकी मनोदषा विकृत है। उनको कुछ फायदा नहीं होगा।

इसी विकृत भीड़ की वजह से कोई समझदार आदमी मंदिर जाने से कतराता है। यह एक विचित्र दुर्घटना धर्म के साथ सदा-सदा घटती रही है। छोटी से छोटी चीज में हम प्रवेष परीक्षा लेते हैं। के.जी. स्कूल में भर्ती होने के लिए परीक्षा होती है। कोई संगीत सीखने किसी गुरु के पास जाए तो पहले वह स्वर परीक्षण करता है। कोई पेंटिंग की कला सीखने जाए तो पहले परीक्षा ली जाएगी कि तुम क्या कर सकते हो? रंगो और सौंदर्य के संदर्भ में तुम्हें सूझ-बूझ है या नहीं? किसी भी क्षेत्र में हम जाना चाहें तो प्रवेश परीक्षा पहले है। और आध्यात्म में धर्म स्थलों पर सारी भीड़ उन लोगों की है जो प्रवेश के पात्र ही नहीं है, जिनको प्रवेश मिल ही नहीं सकता, असंभव है। जो अपने इस जीवन में सुख न खोज पाए, भांति-भांति से दुखी हो रहे हैं, इनके भीतर कैसे अहोभाव पैदा होगा? जिस व्यक्ति के भीतर साधारण प्रेम भी नहीं हो पाया, कैसे उम्मीद करेंगे कि उसके भीतर करूणा और भक्ति भाव होगा? वह तो पराकाश्ठा है। जिनके भीतर थोड़ी भी समझ नहीं है, कैसे उम्मीद करेंगे कि उनमें प्रज्ञा और विवेक का जन्म हो?

यह एक बड़ी दुर्घटना है कि समझदार, शांत, सुखी आदमी धर्म की ओर आने से कतराता है। जिसका प्रवेश हो सकता था, जो बड़ी ऊंचाई से भर सकता था वो आता ही नहीं है। और वे लोग चले आते हैं जिनकी कोई क्षमता नहीं है। साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि धर्म सब के लिए है। ये बड़ी विचित्र सी धारणा लोगों के मन

में बैठी है कि धर्म सब के लिए है। हम जानते हैं कि कविता सब के लिए नहीं है, हम जानते हैं कि संगीत सब के लिए नहीं है, हम जानते हैं कि साइंस सब के लिए नहीं है, हम जानते हैं कि साहित्य भी सब के लिए नहीं है। पर धर्म सब के लिए है। जब छोटी-छोटी चीजें भी सब के लिए संभव नहीं हैं तो जो सर्वश्रेष्ठ बात है वो कैसे सब के लिए हो जाएगी? कुछ लोगों को ही इस आयाम में गति मिलती है।

हम जानते हैं कि गणित सब के लिए नहीं है। दस पंद्रह प्रतिशत लोग ही गणित की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे। हर कोई कविता लिखने लगे, शायरी लिखने लगे तो कोई सुनने वाला न मिलेगा। थोड़े दिनों में बंद करना पड़ेगा, न कहीं छपेगी, न कोई सुनेगा, न कुछ समझ में आएगा। पांच-सात प्रतिशत लोग ही काव्य में जा सकते हैं, पांच-सात प्रतिशत लोग संगीत में जा सकते हैं। लगभग वही प्रतिशत हर चीज में जाने का है। और भी कम प्रतिशत में लोग नर्तक बन सकते हैं, उससे भी कम प्रतिशत में लोग साइंटिस्ट बन सकते हैं। धर्म के बारे में पता नहीं कैसे यह भ्रांति फैल गयी है कि धर्म सब के लिए है। मेरी दृष्टि में तो धर्म और भी कम लोगों के लिए है। उसकी बिल्कुल बुनियादी शर्ते हैं। डीप अंडरस्टेंडिंग हो, सेंसटिविटी हो, लव्हिंगनेस हो, काइंडनेस हो, कंपेशन का भाव हो। पीसफुल पॉजिटीव एटिट्यूड हो, ग्रेटीट्यूड का भाव हो, ये न्यूनतम शर्तें हैं। इन सब गुणों के साथ हम बहुत ऊंची उड़ान भर सकेंगे।

आप सब लोग सौभाग्यशाली हैं कि ध्यान समाधि से यात्रा करते-करते सहज समाधि तक आ गए हैं। जिन्हें अपने भीतर कुछ रस आ रहा है, वे ही आगे चल पाते हैं नहीं तो बीच-बीच में लोग छूट जाते हैं। जब उनको लगता है कि कुछ रस नहीं आ रहा, कुछ मजा नहीं आ रहा, यह हमारे लिए नहीं है, तो वो चूकते जाते हैं। तो लग-भग दस में से एक व्यक्ति ही सहज समाधि तक आ पाता है। जिसको आत्म रमण की कला आ गयी, जिसको अपने भीतर डुबकी लगाने में मजा आ रहा है।

नानक के बारे में ओशो कहते हैं कि नानक ने कोई योग नहीं किया, कोई ध्यान नहीं साधा, सिर्फ गीत गाते रहे, बड़ी मस्ती से भरे रहे, प्रेम से भरे गीत गाते-गाते ही उन्होंने परमात्मा को पा लिया। न उन्हें प्राणायाम के बारे में पता है, न योग अभ्यास के बारे में पता है, न आसनों के बारे में पता है, न उन्होंने वेद-किताब पढ़े। न कोई वाद-विवाद में रूचि है। बस अपने जीवन को उन्होंने खूब-खूब मजे से

जिया। सब के प्रति प्रेम और स्वयं के प्रति भी प्रेम था। गाने बैठे तो बस गाने में मगन हो गए। धुन उतरती जा रही है, शब्द बनते जा रहे हैं, ये भी चिंता नहीं है कि कोई सुन रहा है या नहीं, बस वही सुन रहे हैं और परमात्मा सुन रहा है। गाते, गाते, गाते... परमात्ममय हो गए। कितने प्यारे उनके वचन-

'सखी नालि वसां अपुने नाह पिआरे मेर मनु तनु हरि संगि हिलिआ।
सुणि सखीए मेरी नींद भली मैं आपनड़ा पिरु मिलिआ।।
भ्रमु खोइओ सांति सहजि सुआमी परगासु भइया कउलु खिलिआ।
वरु पाइआ प्रभु अंतरजामी नानक सोहागु न टलिआ।।

ये अंतर्यामी शब्द को भी समझ लें। कई लोग इसकी गलत व्याख्या करते हैं। कभी-कभी कोई आ जाता है मेरे पास कि स्वामी जी आप तो अंतर्यामी हैं, बताईए मेरे मन में क्या प्रश्न है? बा-मुश्किल मैंने अपने मन के प्रश्नों से छुटकारा पाया है, अब इनके मन के प्रश्न क्यों पढ़ूं? यही गोरख धंधा करने को रह गया है क्या कि किसकी खोपड़ी में क्या प्रश्न चल रहा है? अंतर्यामी का मतलब ये नहीं है कि दूसरे के दिमाग में क्या चल रहा है इसका पता लगा लो, या दीवार के पीछे क्या है वो पता लगा लो, या फलाने देश में फलां शहर के फलां मकान नंबर में क्या हो रहा है? जासूसी निगाहें फैला दो। अंतर्यामी का सीधा-सीधा मतलब है अंतर यानी भीतर। यानि अर्थात् जानने वाला। हमारे भीतर जो जानने वाला तत्व है, जो कांशेसनेस है, जो चैतन्य है, वही है प्रभु अंतर्यामी। हमारे भीतर जो जानने का गुण है, अवेयरनेस का गुण है, वही है प्रभु। 'वर पाया प्रभु अंतरजामि।' केवल यही शाष्वत है जो कभी नहीं टलेगा। 'नानक सुहाग न टलिया।'

हरि दर्शन की घनी प्यास

सगल मनोरथ पाईअहि मीता।
चरन कमल सिउ लाईऐ चीता ।।1 ।।
हउ बलिहारी जो प्रभु धिआवत।
जलनि बुझै हरि हरि गुन गावत ।।1 ।।रहाउ।।
सफल जनमु होवत वडभागी।
साध संगि रामहि लिव लागी ।।2 ।।
मति पति धनु सुख सहज अनंदा।
इक निमख न विसरहु परमानंदा ।।3 ।।
हरि दरसन की मनि पिआस घनेरी।
भनति नानक सरणि प्रभ तेरी ।।4 ।।

हे मित्र! परमात्मा के चरण-कमल मे मन लगाने से सब प्रकार के मनोरथ पूरे हो जाते है ।।1।। मैं उन सब पर बलिहारी हूँ, जो प्रभु की आराधना करते हैं। हरि के गुण गाने से उनकी मानसिक अशान्ति दूर हो जाती है ।।1।।रहाउ।।

उस जीव का जन्म सफल हो जाता है। वह सौभाग्यशाली है, जो गुरु की संगति में परमात्मा के साथ लगन लगा लेता है ।।2।। श्रेष्ठ बुद्धि, सम्मान तथा धन आदि सब कुछ सहज में ही प्राप्त होता है, जब परमात्मा को क्षण भर के लिए भी जीव मन से नहीं भुलाता है।।3।। मेरे मन में हरि-दर्शन की तीखी पिपासा है, इसलिए गुरु नानक कहते हैं कि वे परमात्मा की ही एक शरण ग्रहण करते हैं।।4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

'सगल मनोरथ पाईअहि मीता।

चरन कमल सिउ लाईऐ चीता।।'

जिसने हरि के चरण कमलों में ध्यान लगाया, अपने चित्त को लगाया।

हे मित्र! उसके सारे मनोरथ पूरे हो जाते हैं।

'हउ बलिहारी जो प्रभु धिआवत।

जलनि बुझै हरि हरि गुन गावत।।'

उनकी बलिहारी जाता हूं जो प्रभु का ध्यान करते हैं। जो भीतर हरि के गुणों में, दिव्य अनुभवों में डूब जाते हैं, उनकी सारी जलन, समस्त तृष्णा और कामना बुझ जाती है। वे परम आनंद को प्राप्त होते हैं।

'सफल जनमु होवत वड़भागी।'

ऐसे लोग सौभाग्यशाली हैं जिनका जन्म सफल हो गया।

'साध संगि रामहि लिव लागी।'

साधुओं के सत्संग में उठते-बैठते जिनकी प्रीति परमात्मा से लग गयी।

'मति पति धनु सुख सहज अनंदा।

इक निमख न विसरहु परमानंदाा।।'

ऐसे लोगों को श्रेष्ठ बुद्धि, आत्म सम्मान, भीतर की संपदा, सहज सुख और आनंद घटित होता है और फिर क्षण भर भी उनका आनंद नहीं बिछुड़ता है।

' हरि दरसन की मनि पिआस घनेरी।

भनति नानक सरणि प्रभ तेरी।।'

कहते हैं नानक कि हे प्रभु बस तुम्हारे दर्शन की ही प्यास लगी रहती है। तुम्हारी ही शरण आया हुआ हूं। तुम्हारे ही द्वार पर खड़ा रहता हूं। थोड़ा बात को समझना, कैसे भीतर की जलन बुझती है?

विज्ञापनों का एक फार्मूला है, वही इस संसार का भी फार्मूला है। वे कहते हैं कि यह चीज प्राप्त करो तब सुखी होओगे। अप्रत्यक्ष ढंग से वे कह रहे हैं कि तुम जैसे हो वैसे सुखी नहीं हो सकते। जब तक हमारा ये सामान नहीं खरीदोगे, तब तक खुश नहीं हो सकते। आध्यात्म का फार्मूला इससे ठीक विपरीत है कि खुशी हमारे भीतर ही है, बाहर की किसी परिस्थिति पर निर्भर नहीं है। सिर्फ हम भीतर दृष्टि ले जाएं और वह पहले से ही मौजूद है।

जलन किस बात की? कामनाएं हमें जलाती हैं, दग्ध करती हैं, परेशान करती हैं, हम ईर्श्या में जलते-भुनते हैं क्योंकि हमारी नजर बाहर लगी है। कुछ पाना है, कुछ होना है, कहीं पहुंचना है... जब तक मन में इस तरह की कामनाएं हैं, हम लगातार तकलीफ में ही रहेंगे। हमको लगेगा कि ऐसा हो जाना चाहिए, ये मिल जाए, वो हो जाए, वहां पहुंच जाऊं, ये कर लूं, वो कर लूं फिर मैं खुश रहूंगा। इससे खुशी आगे के लिए टल जाती है, हम खुशी का इंतजाम ही करते रहते हैं पर खुश हो नहीं पाते हैं। अभी कैसे खुश हो सकते हैं? अभी तो मकान छोटा है, कार सस्ती है, अभी इतना और हो जाए फिर बाद में हम बहुत प्रसन्न होंगे।

वो बाद वाला समय कभी आता ही नहीं है। मौत पहले आ जाती है और खुशी का दिन आता ही नहीं है। इतना लंबा समय गुजार देते हैं फिर भी इस बात का होश नहीं आता कि हम कुछ गलती कर रहे हैं, कुछ भूल-चूक हो रही है। जिसको भी खुश होना है उसको अभी ही होना पड़ता है, खुशी को पोस्टपोन नहीं करना पड़ता। आज, अभी, यहीं, तुरंत, एक क्षण भी बाकी है अगर जिंदगी का तो इस क्षण में ही हम खुश हो सकते हैं।

विज्ञापन दाताओं के फार्मूले के प्रति सतर्क रहना। हमें खुश होने के लिए किसी बाहरी चीज की जरूरत नहीं है। हां, बाहर से दुख आते हैं और बाहर से दुख मिटाने का इंतजाम हो सकता है। बाहर से शांति और आनंद नहीं आ सकते। बाहर से तकलीफ आती है, बीमारी आती है, बाहर से कोई कीटाणु प्रवेश कर गया, तब निश्चित रूप से इसका इलाज भी बाहर से ही करना पड़ेगा। ये कष्ट निवारण भी बाहर की चिकित्सा से होगा।

यदि गर्मी के दिन हैं, गर्मी से कष्ट हो रहा है, ये बाहर की चीज है। आपने ए.सी. या पंखा लगा लिया, ये भी बाहर की चीज है। इससे गर्मी कम हो जाएगी, कष्ट मिट जाएगा। पर कोई सोचे कि पंखा लगाने से कोई शांति मिल जाएगी तो गलती में है, शांति नहीं मिलेगी। गर्मी वाला कष्ट खत्म हो जाएगा। भूख लगी है, भोजन कर लेंगे, प्यास लगी है पानी पी लेंगे। भूख मिट जाएगी, प्यास मिट जाएगी थोड़ी देर के लिए। इससे कोई शांति घटित होने वाली नहीं है कि भरे पेट कोई शांति मिल जाएगी, ऐसा नहीं है। अगर हम अशांत हैं, अशांत ही रहेंगे।

तो बाहर जगत में से कष्ट आता है और इस कष्ट का उपाय भी बाहर ही कर सकते हैं। इस कष्ट से मुक्ति पा सकते हैं। परंतु शांति, आनंद, प्रेम, जागरूकता, संवेदनशीलता, करूणा, धन्यवाद और अहोभाव आदि सब आंतरिक चीजें हैं। इनको बाहर से पाने का कोई इंतजाम नहीं हो सकता है। जिस व्यक्ति को यह समझ

में आ जाता है।

'हउ बलिहारी जो प्रभु धिआवत।'

फिर वह प्रभु के ध्यान में डूबता है अपने अंतर्तम में, दिव्य गुणों में रमण करता है।

'जलनि बुझै हरि हरि गुन गावत।'

उसकी सारी कामना समाप्त हुई। बाहर जगत में वह सारे आवश्यक कर्म करेगा। भूख-प्यास लगती है, भोजन पानी के लिए धन कमाना होगा, कुछ व्यापार नौकरी करना होगा, वह सब करेगा। लेकिन मन में यह भाव नहीं रह जाएगा कि धन कमाने से शांति मिल जाएगी, कि धन कमाने से आनंद आ जाएगा, कि धनी होकर मैं प्रेम पूर्ण हो जाऊंगा, कि धनी होकर मैं समझदार हो जाऊंगा।

वह जान जाएगा कि भीतर की चीज भीतर है, उसे भीतर ही तलाशना होगा। बाहर की चीजें हैं, उपयोगी हैं। उनका बाहर इंतजाम करना होगा। और ये हमारी भ्रांति टूट जाए कि बाहर की चीजों से भीतर की चीज खरीदी जा सकती है कि मैं धनी हो जाऊंगा या बहुत अकलमंद हो जाऊंगा, तो आनंदित भी हो जाऊंगा। नहीं, ऐसा नहीं होगा। अक्सर तो उल्टा ही होता है। धनी होते-होते जो थोड़ी सी शांति और थोड़ी सी अक्ल थी वो भी समाप्त हो जाएगी। बड़ा मुश्किल है कि धनी आदमी और शांत रह पाए। पच्चीस झंझटें हैं, बहुत व्यस्त है।

एक बार एक सज्जन आए थे कि रात को उनको नींद नहीं आती है। बहुत परेशान थे, कह रहे थे कि कई दवाई ले चुके, कई डॉक्टरों को दिखा चुके, सारी पैथियों को हरा चुके। अब तो किसी भी दवाई या इंजेक्शन से उन्हे नींद नहीं आती है। मैंने पूछा, आपके मन में क्या चिंता रहती है? बोले चिंता! घर में जगह-जगह ब्लैक मनी छुपायी हुई है, तो हमेशा खटका लगा रहता है कि कब आए छापा मारने वाले? बस यही लगता रहता है कि इन्कम टेक्स डिपार्टमेंट के लोग आ रहे हैं। सड़क से कोई गाड़ी निकलती है, कोई हार्न बजती है, तो वो उठ कर बैठ जाते हैं कि आ गए! इतनी ब्लैक मनी उनके पास है।

मुझसे पूछने लगे कि उपाय बताईये? मैंने कहा कि इन्कम टेक्स अदा कर दो, और सो जाओ चैन से, कौन मना करता है? बोले नहीं, इतनी मेहनत से पैसा कमाया है, सरकार तो तीस परसेंट, चालीस परसेंट ले लेगी। और एक बार देना शुरू कर दिया तो हर बार देना पड़ेगा। ये सिलसिला ही शुरू नहीं करना है। मैंने कहा तो फिर ठीक है, अनिद्रा में रहो। ये तो धनी होने का पुरस्कार है- नींद का उड़ जाना।

अमेरिका में तो मानते हैं कि अगर ४५ साल तक हार्टअटैक नहीं हुआ तो वो आदमी सफल आदमी ही नहीं है। इतनी उम्र में चिंता, ब्लडप्रेशर आदि तो हो ही जाना चाहिए कि हार्टअटैक हो। तब यह प्रमाण है कि वो आदमी सफल है। कामना जहां है वहां जलन होगी, फिकर होगी, चिंता होगी। जो व्यक्ति समझदार हो गया वो अपनी सूझबूझ से छानबीन कर लेगा कि बाहर से क्या होता है? और भीतर से क्या संभव है? फिर जो चीज जहां है उसको वहीं खोजेगा। जो काम बाहर से हो सकते हैं उन्हें वो बाहर से करेगा। जो संपदा भीतर की है उसे वह भीतर ही खोजेगा। उसका यह द्वन्द समाप्त हो जाएगा।

'सफल जनमु होवत वडभागी।

साध संगि रामहि लिव लागी'

कहते हैं श्रेष्ठ मति, सुमति पैदा हो जाती है। अपनी बुद्धि को जब हम किसी सूक्ष्म बात के प्रति सचेत करते हैं तो इस बुद्धिमत्ता में और भी पैनी धार आ जाती है। अगर यह स्थूल चीजों के संग लगी रहे तो हमारी बुद्धि मोटी हो जाती है। जैसे ओंकार श्रवण अत्यंत सूक्ष्म ध्वनि है, इससे ज्यादा सूक्ष्म और कोई आवाज नहीं हो सकती। जब हमने अपने चित्त को इसमें लगाया, हम इतनी सूक्ष्म चीज के प्रति सचेत हुए, और सचेत होने के साथ ही हमारी इंटेलिजेंस ग्रो करने लगी, हमारी प्रज्ञा बढ़ने लगी। स्थूल चीजों के प्रति सचेत होने के लिए बहुत होश नहीं चाहिए।

आप नींद में सो रहे हैं, कोई आपका नाम लेकर पुकारे तो भी आप उठ कर बैठ जाएंगे। ऊपर से ऐसा लग रहा था सोये हैं, बेहोश पड़े हैं, मच्छर काट रहा था आपको उसका भी पता न चला, पर जब आपका नाम लेकर पुकारा तब आप तुरंत उठ कर बैठ गए, जोर की आवाज हुई तो बैठ गए।

एक शराबी सड़क के किनारे पड़ा है उसको कुछ भी नहीं पता कि चोट लग गयी है या बदबू आ रही है, मेंढक उसके ऊपर उछल रहे हैं, पर इसको कुछ भी पता नहीं है। मक्खियां नाक में घुस रही हैं, अगर वहां हम जोर से बैंड बाजा बजाएं तो वह नाराज होगा कि क्यों मुझे डिस्टर्ब कर रहे हो? इसका मतलब है कि बैंड बाजे की आवाज इतनी स्थूल है कि यह जो मंद बुद्धि, लगभग बेहोश व्यक्ति पड़ा है इसको भी सुनाई दे गयी। बैंड बाजे की आवाज सुनने के लिए प्रगाढ़ होश नहीं चाहिए। शराब के नशे में भी सुनाई दे जाएगी।

अब इसी कंट्रास्ट में समझें कि ओंकार की ध्वनि सुनने के लिए बहुत ही प्रगाढ़ चैतन्य चाहिए, होश चाहिए, निखरी हुई चेतना चाहिए। थोड़ी सी भी बेहोशी होगी तो ओंकार श्रवण बंद हो जाएगा। इसलिए जो व्यक्ति भीतर के किसी भी दिव्य गुण

में डूब रहा है, चाहे वह ध्वनि है या प्रकाश या सुगंध या कुछ भी, वह भीतर के सूक्ष्म जगत से जुड़ जाएगा। भीतर के अनुभव इतने सूक्ष्म हैं, महीन हैं कि उनके साथ हम जितना समय बिताएंगे, हमारी बुद्धिमत्ता भी उतनी ही पैनी और महीन होती जाएगी। इसलिए सुमति उत्पन्न होती है और सहज स्वभाविक आनंद मिलता है। बाहर से जब कोई खुशी मिलती है याद रखना वो अस्थाई है, किसी कारण से है, और वो कारण सदा नहीं रह सकता है। बाहर की खुशी से जो उत्तेजना प्राप्त होती है वह थकाने और तोड़ने वाले होती है।

यदि हम वर्षा का मजा ले रहे थे, कितनी देर और ले सकते हैं? हम जितना मजा लेंगे, उतने ही थके-मांदे हो जाएंगे। शाम को पता चलेगा कि पूरा बदन दुख रहा है। वह मजा मुफ्त में नहीं मिला है। हमने उसकी कीमत चुकायी है। जोर-जोर से मस्ती में गाना गा रहे थे, कई लोगों के गले बैठ जाएंगे। किसी भी प्रकार की उत्तेजना वाला जो सुख है वह ज्यादा देर नहीं रह सकता। जो उत्तेजना होगी, उसके बाद थकान पैदा होगी क्योंकि हमारी ऊर्जा उसमें नष्ट हो गयी।

जो आंतरिक खुशी है वह उत्तेजना रहित है। वहां उथल-पुथल नहीं है, शांत चेतना है। इसलिए उसका विपरीत नहीं है। ऐसा नहीं है कि भीतर शांत, आनंदित होकर थक जाएंगे कि अरे बहुत आनंदित हो गए, अब विश्राम करना पड़ेगा। नहीं वो जो आनंद आया वो विश्राम में ही आया है। हमने कुछ किया नहीं है वो आनंद भीतर मौजूद ही था। उसमें हम सतत् रह सकते हैं। वो हमारा सहज स्वभाव है। वो बाहर से जो सुख मिलेगा वो हमारा सहज स्वभाव नहीं है।

यदि भोजन करने में कोई व्यक्ति मजा ले रहा है, एक लिमिट है उसकी। गुलाब जामुन खा रहा है, एक, दो... यद्यपि न उसमें गुलाब है, न उसमें जामुन है। पता नहीं किसने नाम रखा है गुलाब जामुन? धोखा दे रहे हैं। पर यदि चार-पांच खा लो तो पेट दर्द करने लगेगा। दस-पंद्रह खा लें तो थोड़ी देर बाद अस्पताल ले जाना पड़ेगा। मुसीबतें शुरू हो जाएगी।

तो जिसको हम बाहरी सुख कहते हैं अगर आप खूब गौर से, अच्छे से विश्लेषण करें तो आप पाएंगे वो कम मात्रा में दुख है। ऐसा तो कभी सोचा नहीं होगा। जब एक रसगुल्ला खाने से हम कह रहे हैं बड़ा सुख हुआ, बड़ा स्वादिष्ट है तो फिर चार किलो रसगुल्ला खाने से अगर सुख है तो बहुत गुना हो जाना चाहिए था। एक-एक किलो में सौ-सौ रसगुल्ले आ गए, चार किलो में चार सौ। तो एक रसगुल्ले में जितना सुख मिला, चार किलो में उसे चार सौ गुना ज्यादा मिलना था। लेकिन ऐसा नहीं है। चार सौ में हमारी परेशानी खड़ी हो जाएगी।

अगर एक घंटे नहाने में सुख मिला है तो दस घंटा नहाने में दस गुना मिलना चाहिए, सीधा-सीधा गणित है। पर दस घंटा नहा लिया तो निश्चित है कि निमोनिया-विमोनिया हो जाएगा और अस्पताल में दस-पंद्रह दिन भर्ती रहना पड़ेगा। इसका मतलब एक घंटे में जो मिल रहा था वो दस घंटे का ही दसवां हिस्सा है। दुख का दसवां हिस्सा, वो छोटा हिस्सा है इसलिए हमको समझ में नहीं आ रहा था। इसलिए हम समझ रहे थे कि सुख है।

तो इस बात को खूब अच्छे से समझना। बाहर की दुनिया में जो भी सुख है वो दुख की कम मात्रा है। कोई युवक-युवती प्रेम में पड़े हैं और बड़े सुखी महसूस करते हैं यदा-कदा कालेज के बिल्डिंग के पीछे पांच मिनट को मिल गए और सोचते हैं काश! हम हमेशा ही संग साथ रहें, विवाह कर लें तो कितना सुख होगा? जब पांच मिनट में इतना हो रहा है, चौबीस घंटे में कितना होगा? बस यहीं गणित गलत हो गया। शादी करने के बाद एक दूसरे का सिर फोड़ रहे होंगे।

अगर इनका गणित सही था, तो जब पांच मिनट में इतना सुख मिल रहा था, एक घंटे में बारह गुना मिलना था। दस घंटे में 120 गुना मिलना था। बहुत ज्यादा मिलना था, पर वो सब बाद में दुख हो गया। इसका मतलब जो पांच मिनट में मिल रहा था वो दुख का छोटा हिस्सा था। वो हमारी सहज शक्ति के अंदर था उतना हम सह गए। अतः बाहर का सुख, दुख का ही छोटा हिस्सा है, अंश है।

आपने कभी सेक्रिन खायी होगी तो आपको पता होगा, यदि उसे ऐसे ही चख लो तो बहुत कड़वी लगती है। जो लोग डायबीटिक हैं वे जानते होंगे कि सेक्रिन बिल्कुल कड़वी लगती है क्योंकि वो शक्कर से दो सौ गुणा ज्यादा मीठी है। अब यह हमारी सोच के बाहर है कि शक्कर से दो सौ गुणा ज्यादा मीठी है तो फिर कड़वी क्यों लग रही है? उसको डायल्यूट करना पड़ता है। एक गिलास शर्बत में या दूध में या चाय में एक छोटी सी गोली डाल दो तो वो दो सौ गुणा जब डायल्यूट हो जाएगी तब जाकर उसमें मिठास का पता चलेगा। अब हम जिसको मिठास कह रहे हैं वो कड़वेपन का दो सौ अंश है, छोटा सा अंश है। बहुत कम कड़वी है। उसको हम मीठी कहते हैं। ये सेक्रिन का उदाहरण हमेशा याद रखना, बाहर के सुख-दुख के बारे में।

जिसको हम सुख कहते हैं वो बहुत ज्यादा हो जाए, सौ-दो सौ गुणा ज्यादा हो जाए तो दुख है। भीतर जो भी जाना जाता है वह शांत चैतन्य से जाना जाता है इसलिए सहज आनंद बन जाता है। उसमें कोई उत्तेजना नहीं है। उत्तेजना और चेतना ये दो चीजें एक दूसरे के विपरीत अनुपात में चलती हैं, जितनी उत्तेजना बढ़ेगी उतनी ही चेतना की कम जरूरत पड़ेगी। जैसे मैंने कहा था कि शराब पीकर आदमी बेहोश पड़ा है

तब अगर बैंड बाजा बजाएंगे तो भी वह उठ कर बैठ जाएगा। दो चार गालियां देगा आपको कि क्यों परेशान कर रहे हो? इसका मतलब जब इतनी स्थूल उत्तेजना है, जब इतनी जोर-जोर की आवाज है, इसमें चेतना की कोई जरूरत नहीं है।

जितनी उत्तेजना कम होती जाएगी उतनी ही प्रगाढ़ चेतना चाहिए नहीं तो उसका पता ही नहीं चलेगा और सर्वाधिक सूक्ष्म, उत्तेजना रहित जो अनुभव है वो आंतरिक अनुभव ही है, बाहर का तो कोई भी अनुभव हो चाहे स्वाद का, चाहे सुगंध का, चाहे स्पर्श का या कुछ भी हो, उसमें उत्तेजना रहेगी ही। कम या ज्यादा हो सकती है। मिर्ची में बहुत ज्यादा होगी और भिण्डी में थोड़ी कम होगी। लेकिन उत्तेजना तो है ही। केवल आंतरिक अनुभूतियों में उत्तेजना नहीं है और इसलिए वहां चेतना अपने शिखर पर पहुंचती है जहां कुछ भी नहीं हो रहा है, नथिंग इज़ हैप्पनिंग एन स्टिल यू आर अवेयर, अवेयर आफ नथिंग, कुछ नहीं के प्रति होश, शून्य के प्रति होश और वहां हम पाते हैं- भीतर का खजाना।

'मति पति धनु सुख सहज अनंदा।

इक निमख न विसरहु परमानंदा ।।'

धन्य-धन्य हमारे भाग्य

धनि धनि हमारे भाग घरि आइआ पिरु मेरा।
सोहे बंक दुआर सगला बनु हरा।।
हर हरा सुआमी सुखहगामी अनद मंगल रसु घणा।
नवल नवतन नाहु बाला कवन रसना गुन भणा।।
मेरी सेज सोही देखि मोही, सगल सहसा दुखु हरा।
नानकु पइअंपै मेरी आसपूरी मिले सुआमी अपरंपरा।।

हमारे धन्य भाग्य हैं कि मेरा प्रभु-पति आज मेरे घर आया है। मेरा घर-आंगन सुशोभित हो रहा है, सारी वनस्पति मेरे लिए हरिया गयी है। उल्लासदायी सुखों का सागर मेरा स्वामी आया है, चतुर्दिक् आनंद और मंगलवादन बज रहे है और प्रेम रस बरस रहा है। मेरा नवेला, सुन्दर और सुकुमार पति मेरे पास है, उसके गुणों का कथन करने वाली जुबान मेरे पास नहीं है। वह मेरी सेज पर सुशोभित है। उसे देखकर मेरी समस्त शंकाएँ और दुःख दूर हो गये हैं। (गुरु नानक कहते हैं कि) मेरी सब इच्छाओं की पूर्ति हो गयी है और मुझे अपरम्पार स्वामी प्राप्त हो गये हैं।।

सभी मित्रों को नमस्कार।

'धनि धनि हमारे भाग घरि आइआ पिरु मेरा।'

कहते हैं मैं सौभाग्यशाली हूं, मेरे भाग्य खुल गए, मेरे घर के भीतर ही, इस देह के भीतर ही मैंने उस परम प्रीतम को पाया। जिसको मंदिर-मस्जिद, तीर्थों में ढूंढ़ते फिरते थे, वह स्वयं के भीतर ही मौजूद था। धनि धनि हमारे भाग घरि आइआ पिरु मेरा। मेरे स्वयं के भीतर अपने ही घर में वह था और हम सारे नगर में ढूंढ़ते फिर रहे थे। सोहे बंक दुआर सगला बनु हरा।

कहते हैं, अब मेरा घर आंगन सुशोभित हो रहा है, सारे पेड़-पौधे जैसे हरे हो गए हैं, बसंत आ गया है, सबकुछ हरा-भरा हो गया है, जीवंत हो उठा है। हरा हरा सुआमी सुखहगामी अनद मंगल रसु घणा। कहते हैं अब उमंग और उल्लास से जीवन ओत-प्रोत हो गया, सब कुछ मंगल नजर आ रहा है, रसपूर्ण नजर आ रहा है। नवल नवतन नाहु बाला कवन रसना गुन भणा। कहते हैं वह मेरा प्यारा प्रीतम नवेला, सुंदर, सुकुमार है और अब सदा-सदा मेरे संग है।

यह आंतरिक चेतना, हमारी आंतरिक ऊर्जा बिल्कुल निर्लेप है, इसको कुछ भी छूता नहीं है। समय भी इसे नहीं छूता और इसलिए यह सदा-सदा नितनूतन है। सनातन भी है और नितनूतन भी है। शरीर की आयु है पर भीतर की उस जीवन ऊर्जा की कोई आयु नहीं है, इसलिए यह कहना बिल्कुल ठीक है कि नवल नवतन नाहु बाला कवन रसना गुन भणा। वह मेरा प्यारा प्रीतम नितनूतन नया और नवेला है। वह कभी पुराना होता ही नहीं। बाहर के जगत में इन्द्रियों से हमें जो भी दिखाई देता है वह उत्पन्न हो रहा है, विकसित हो रहा है और धीरे धीरे समाप्त हो जाता है।

यदि एक भवन निर्मित किया, चाहे वह कितना ही मजबूत क्यों न हो, वह एक दिन पुराना हो जाएगा। ऊपर से देखने पर वह वैसे का वैसा ही लग रहा है लेकिन भीतर से चीजें खराब होती जा रही हैं, क्षण-क्षण खराब हो रही हैं। एक दिन यह भवन धराशायी हो जाएगा। हम उसके नष्ट होने को एक घटना की भांति समझते हैं, हम कहेंगे कि इतने बजकर इतने मिनट में वो भवन गिर गया। लेकिन वस्तुतः क्षण-प्रतिक्षण वह पुराना होता जा रहा था, अंततः एक दिन ऐसा क्षण आया कि फिर वह भवन खड़ा न रह सका।

ये एक इवेंट नहीं है, यह एक प्रोसेस है। एक घटना नहीं, एक प्रक्रिया है जो लगातार चल रही है। इसका मतलब समय का प्रभाव प्रतिक्षण हर चीज पर पड़ रहा है। चाहे वो बड़े-बड़े चांद-सूरज हों, कि पूरी गैलेक्सी हो, समय से सब प्रभावित हैं। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि सूरज दस अरब साल पहले बना था, पृथ्वी चार अरब साल पहले टूटकर अलग हुई थी, कुछ अरब साल बाद यह सब गायब हो जाएंगे,

कहीं ब्लैक होल में समा जाएंगे, विलीन हो जाएंगे। माना कि लंबी उम्र है लेकिन उम्र तो है, समय की छाप छूट रही है। लाल किला कितना ही मजबूत हो और मिस्र के पिरामिड कितने ही मजबूत चट्टानों से मिलकर बने हों, एक दिन ता गिरेंगे।

माना कि बड़े-बड़े पहाड़ों की उम्र कई-कई लाख साल है लेकिन वे भी घिसते जाते हैं। भारत में विंध्याचल पर्वत है उसकी ऊंचाई हर साल कम होती जा रही है। वृद्ध पर्वत है, जैसे उसकी कमर झुक गई हो। हिमालय पर्वत नया है, अभी युवा है हर साल कुछ सेंटीमीटर ऊंचा हो जाता है, अभी बढ़ रहा है। माना कि लाखों साल हो गए उसको लेकिन अभी भी बढ़ रहा है। फिर एक शिखर तक पहुंचकर ढलना शुरू होगा। हर चीज की उम्र है। केवल वह अदृश्य और आलौकिक चेतनता, जिसको इंद्रियों द्वारा नहीं देखा जा सकता है, वह समय के पार है। हमारी जो अंतर्सत्ता है वह समय के पार है। इसलिए उसको कहा जा सकता है नितनूतन, सदा नई नवेली।

हम चाहते हैं कि बाहर भी सब नया ही हो जाए। क्योंकि भीतर हम वैसे हैं, इसलिए वैसा ही कुछ बाहर करना चाहते हैं, जो संभव नहीं है। हम कोशिश करते हैं कि पुराने मकान को नया पेंट कर दें तो नया लगने लगा लेकिन बस नया लग ही रहा है, है तो वह पुराना ही। ऐसे ही किसी के बाल सफेद हो जाते हैं तो वह डाई करवा लेता है तो काले दिखने लगे लेकिन भीतर से तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ, जो उम्र हो चुकी है, जो अवस्था हो चुकी वो तो हो ही चुकी है। ऊपर से दूसरों को तो धोखा दे सकते हो लेकिन स्वयं को कैसे धोखा दोगे?

एक बार एक बुढ़िया की मृत्यु हो गई कार एक्सीडेंट में। जब वह ऊपर पहुंची तो उसके कर्मों का हिसाब-किताब देखा गया, तब पता चला कि ये गलती से मर गई है, इसकी मृत्यु अभी लिखी नहीं थी। भगवान ने उससे कहा कि तुम वापिस जाओ, अभी तो तुम्हारी चालीस साल उम्र और है, ये भूलचूक से कुछ गड़बड़ हो गया है। वापिस उसको धरती पर भेजा दिया गया। वो तो बहुत प्रसन्न हुई क्योंकि चालीस साल अभी उसको और जिंदा रहना था।

वह सीधे ब्यूटी पार्लर पहुंची, वहां उसने न जाने क्या-क्या करवाया, पूरा कायाकल्प करवा लिया, वो बाहर निकली और फिर से एक्सीडेंट हो गया और एक कार उसके ऊपर चढ़ गई और वह मर गई और दोबारा ऊपर पहुंची। भगवान उसको देखकर चौंके और वो भी चौंकी, उसने कहा कि ये क्या हुआ? आपने तो कहा था कि चालीस साल अभी बाकी हैं, और मैं चार घंटे बाद ही लौट आई। भगवान ने कहा कि अच्छा तुम वही हो, मैं भी नहीं पहचान पाया था। ब्यूटीपार्लर वालों ने ऐसा रंग-रूप कर दिया था कि धोखा हो गया। मरना किसी और को था और बेचारी वही फिर से मर गई।

हम क्यों चाहते हैं कि बाहर चीजें थिर हो जाएं, हर व्यक्ति की यह कामना क्यों

हैं? हम भलीभांति जानते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता फिर भी ये कामना है। क्योंकि वास्तव में भीतर हम स्थिर हैं। सच पूछो तो संसार में हम जो-जो कामनाएं करते हैं उसका मूल स्रोत हमारी चेतना के समस्त गुण हैं। जैसे हम चाहते हैं कि बाहर फैलाव हो, छोटा घर है तो और बड़ा हो, कोई राजा है तो वह सोचता है कि उसके राज्य की सीमाएं और फैलें और विराट हों। हर चीज में चाहते हैं कि जहां हैं उससे और ज्यादा हो जाएं। सामान्य भाषा में हम जिसको लोभ कहते हैं, लालच कहते हैं, फैलाव की वृत्ति कहते हैं, आखिर ये है तो क्यों है? सारे धर्मगुरु और महात्मा इसके खिलाफ समझाते रहते हैं लेकिन उनके उपदेशों का कोई असर ही नहीं होता है। वह वृत्ति हमारे भीतर इसलिए है क्योंकि हमारी चेतना वास्तव में एक्सपेंडिंग कांशेसनेस यानि विस्तृत चेतन तत्व है।

इसी एक्सपेंडिंग कांशेसनेस को, जो सदा विस्तीर्ण होती जा रही है, फैलती जा रही है, उपनिषदों ने ब्रह्म कहा है। अब तो वैज्ञानिकों ने भी हिसाब लगा लिया है कि यह अस्तित्व स्थिर नहीं है, एक्सपेंडिंग यूनिवर्स, बहुत तीव्र गति से फैलता जा रहा है। पूरे अस्तित्व का स्वभाव है फैलना और भीतर हमारी चेतना का स्वभाव भी है फैलना। तो वह जो विराट, असीम होने की आंतरिक अनुभूति है, उसको हम बाहर के जगत में भी लागू करने की कोशिश करते हैं, वहां संभव नहीं हो सकता है। कोई कितना बड़ा सम्राट हो जाए, चाहे कोई सिकंदर ही हो जाए लेकिन राज्य की सीमा तो फिर भी रहेगी, असीम तो नहीं हो सकता।

यदि पूरी पृथ्वी पर ही कोई कब्जा जमा ले तो भी क्या होगा? पृथ्वी की भी तो एक सीमा है। कोई पूरी पृथ्वी का मालिक हो जाए तब उसको पता चलेगा कि अरे, सौरमंडल में बहुत सारे ग्रह हैं, उन पर मेरा कब्जा नहीं है। यह दायरा बड़ा करने की आकांक्षा आती कहां से है? ये हमारी चेतना का ही गुणधर्म है।

गलती कहां हो रही है, जो चीज चेतना के तल पर सही है हम उसको बाहर पदार्थ के तल पर भी लागू करने की कोशिश कर रहे हैं। और इसलिए जीवन में हम कुछ भी करते रहें, हमेशा तनाव से घिरे रहते हैं। सिकंदर भी विषादग्रस्त होता है, हिटलर भी विषादग्रस्त होता है अंततः आत्महत्या ही कर लेता है। यहां बाहर कोई तृप्ति संभव ही नहीं।

अलबर्ट आइंस्टीन जैसा अदभुत मनीषी, अदभुत गणितज्ञ, अदभुत वैज्ञानिक वो भी कहता है कि अगर अगला जन्म मिला, फिर मैं भौतिकविद् नहीं बनूंगा, मैं किसी छोटे-मोटे गांव में प्लंबर बनना पसंद करूंगा, अब दुबारा इस चक्कर में नहीं पड़ना। अतः जीवन में तृप्ति नहीं है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर जिन्होंने छः हजार गीत, कितने नाटक, कितने उपन्यास,

कितनी कहानियां लिखीं, एक नए ही प्रकार का संगीत- रवीन्द्र संगीत बनाया, वे कितने अदभुत थे हर क्षेत्र में, नोबेल प्राइज विनर थे। जब वो मरणासन्न थे तो किसी मित्र ने पूछा कि आप तो तृप्त होकर विदा हो रहे हैं क्योंकि आज तक जिसको सबसे बड़ा कवि कहा जाता है अंग्रेजी का उसने केवल दो हजार गीत लिखे हैं, आपकी तुलना में वो कुछ भी नहीं हैं। आपने तो छः हजार गीत लिखे हैं जो संगीतबद्ध किए जा सकते हैं, क्या आप तृप्त होकर विदा हो रहे हैं? रवीन्द्र नाथ की आंखों में आंसू आ गए, उन्होंने कहा कि नहीं, अभी तो मैंने लिखना शुरू ही किया था। ये तो ऐसा ही हुआ कि अभी मैं साज बिठा ही रहा था, तबला ठोंक ही रहा था कि आगे संगीत बजाऊंगा, अभी असली संगीत तो शुरू ही नहीं हुआ। अभी तो बस भूमिका बन रही थी, तैयारी चल रही थी, अभी तो गीत लिखना सीख रहा था, अभी-अभी तो थोड़ी-बहुत कला आई थी।

क्या कारण है। चाहे साहित्य के क्षेत्र में, चाहे संगीत के क्षेत्र में, चाहे विज्ञान के क्षेत्र में, चाहे धन-संपत्ति के क्षेत्र में, चाहे राज्य-साम्राज्य के क्षेत्र में, किसी भी क्षेत्र में हम कुछ भी कर लें, वह दूसरों को बड़ा लगता होगा, पर हमको छोटा क्यों लगता है?

दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है,
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।

जो-जो मिल गया वह मिट्टी क्यों हो जाता है? क्योंकि हमारी जो अंतस चेतना है वह तो असीम होना चाहती है और बाहर जो भी होगा उसकी तो सीमा होगी। छः हजार गीत लेकिन सीमा तो है कि छः हजार हैं। एंड्रयू कारनेगी अपने जमाने का सबसे बड़ा धनपति था, दस अरब डालर बैंक में कैश जमा थे बाकी सब प्रापर्टी और फैक्ट्रियों को तो छोड़ ही दो। दस अरब नकद पहली बार किसी व्यक्ति के पास थे, उसने अंत में मृत्यु के पहले जो स्टेटमेंट दिया है, उसने कहा कि मैं बहुत ही बुरी तरह हार के जा रहा हूं, मेरे इरादे सौ अरब कमाने के थे। नब्बे अरब डालर की हार, मैं बुरी तरह से परास्त होकर जा रहा हूं, कुछ भी न पा सका।

वह दस अरब डालर को ऐसे कह रहा है जैसे दस पैसे, जो पा लिया वह उसके लिए मिट्टी हो गया। क्योंकि भीतर है अनंत चेतना, उस अनंत चेतना को बाहर की दुनिया में कुछ भी मिल जाए उसे छोटा ही लगेगा। सब चीजें क्षुद्र हो जाती हैं। काश! इस बात को हम समझ पाएं कि हमारी वासनाएं, कामनाएं, लोभ की वृत्ति, फैलाव की वृत्ति, इसका मूल स्रोत कहां है? तब हमें समझ आएगा कि यह वृत्तियां भी आध्यात्मिक ही हैं। और हम नासमझी में इनको बाहर की दुनिया में लागू करने की कोशिश कर रहे हैं जो कि असंभव है। अब हम कुछ भी पा लें, कुछ भी हो जाएं वह हमेशा छोटा ही लगता रहेगा क्योंकि चेतना तो अनंत है और बाहर अनंत का अनुभव नहीं हो सकता है।

नवल नवतन नाहु बाला कवन रसना गुन भणा। अब स्वयं के भीतर ही असली जीवन का रस प्रगट हुआ है। मेरी सेज सोही देखि मोही, सगल सहजा दुखु हरा। कहते हैं, मेरा प्रीतम, मेरा परमात्मा, मुझ जीवात्मा के संग ही है, मेरी सेज पर ही सोया हुआ है और उसे देखकर मेरे सारे दुःख दूर हो गए हैं। नानकु पइअंपै मेरी आसपूरी मिले सुआमी अपरंपरा। वह अपरंपार, वह विराट, वह अनंत मिल गया है और अब मेरे मन की सारी आशाएं पूरी हो गई हैं।

प्यारे मित्रो, इस महत्वपूर्ण बात को याद रखना, बाहर के जगत में कोई कामना, कोई आशा कभी पूरी नहीं हो सकती। एक कामना के पूरा होते ही, हम तुरंत दूसरी कामना पर छलांग लगाते हैं। हम सोचते हैं फलां आदमी इतना अमीर है, इसके पास कितना पैसा है। हमको लग रहा है कि वो अमीर है, उससे पूछो तो उसकी कामना और बड़ी हो गई होगी। वह शायद अपने आपको दरिद्र महसूस कर रहा है। अन्य लोग समझते हैं कि इसके पास तो कितना पैसा है, फिर ये इतना कंजूस क्यों हैं। हमको उसकी दरिद्रता का पता ही नहीं है। एंड्रयू कारनेगी की सोचो बेचारे की, नब्बे अरब डालर कम हैं उसके पास। वो तो एक-एक डालर बचाएगा, कंजूस तो होगा ही होगा।

मैंने सुना है एक बार वह इंग्लैण्ड आया था। जिस होटल में वो गया उसने पूछा कि सबसे सस्ता कमरा किस रेट का है? क्लर्क पहचान गया, उसने कहा कि आप तो फलां-फलां हैं, आपके बेटे भी यहां आते हैं और वह आते ही पूछते हैं कि सबसे ज्यादा लग्जरी वाला कमरा कौन सा है? एंड्रयू कारनेगी ने कहा कि वह उड़ाऊ-खाऊ हैं, वे लोग अमीर बाप के बेटे हैं और मैं गरीब बाप का बेटा हूं। ये अमीर आदमी कंजूस क्यों होता है। दूसरे लोग आश्चर्यचकित होते हैं कि इनको क्या कमी है और हमको पता ही नहीं कि उस बेचारे को कितनी कमी है। जिस आदमी को नब्बे अरब डालर की कमी है, वह तो एक-एक पैसा बचाएगा। भीतर हम अनंत हैं और अनंत से कम में हमें रस नहीं आ सकता, मजा नहीं आ सकता और बाहर वैसा संभव नहीं है।

तो कुल मिलाकर देखें तो संसार में हम जो इतनी भाग-दौड़ करते हैं उसका कारण भी वस्तुतः आध्यात्मिक है। अगर हम गौर से टटोलेंगे तो पाएंगे कि ये तो बहुत स्प्रिचुअल बात है और तब हमारा देखने का नजरिया एकदम से बदल जाएगा, अब समझ में आ जाएगा कि ये बात जहां असंभव है वहां करने की कोई जरूरत नहीं है। वहां थोड़ा-बहुत काम चल जाए बस इतना बहुत है। वहां अनंत हो ही नहीं सकता। फिर हमारी नजर वहां पड़ेगी जहां वास्तव में अनंत है और फिर हम भी कह सकेंगे नानक की तरह कि अपने भीतर ही उसको पाया।

धनि धनि हमारे भाग घरि आइआ पिरु मेरा।

पिंगुल परबत पारि परे खल चतुर बकीता।
अंधुले त्रिभवण सूझिआ गुर भेटि पुनीता ।।1।।
महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता।

मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता ।।1।।रहउ।।

ऐसी भगति गोविंद की कीटि हसती जीता।

जो जो कीनो आपनो तिसु अभै दानु दीता ।।2।।

सिंघु बिलाई होई गइओ त्रिणु मेरु दिखीता।

स्रमु करते दम आढ कउ ते गनी धनीता ।।3।।

कवन वडाई कहि सकउ बेअंत गुनीता।

करि किरपा मुहि नामु देहु नानक दरसरीता ।।4।।

गुरु की संगति में आने से असंभव भी संभव हो जाता है; लंगड़े-लूले पर्वत पर चढ़ जाते हैं; मूर्ख-गँवार चतुर हो जाते हैं और अंधों को तीनों लोकों की सूझ मिल जाती है ।।1।। हे मेरे मित्र! साधु-संगति की महिमा सुनो। साधु की शरण लेने पर करोड़ों मलिनताएँ दूर होती हैं, पाप नष्ट हो जाते हैं और चित्त निर्मल होता है ।।1।।रहउ।। परमात्मा की भक्ति इतनी सशक्त है कि चींटी भी हाथी को जीत सकती है। परमात्मा ने जिस-जिस को अपना बना लिया है, उसे अभयदान दिया है ।।2।। सिंह बिल्ली के समान दिखाई देता है (अहंकार द्रवित होकर विनम्रता अपना लेता है) तिनका मेरुपर्वत के समान दिखाई देता है अर्थात् विनम्रता, जो पहले निर्बलता का चिह्न मानी जाती थी, वह पर्वत का बल धारण कर चुकी है। आधे-आधे छदाम के लिए जो भागे फिरते हैं, वे सब सन्तुष्ट और धनवान हो गये हैं ।।3।। उस अनन्त गुणवान् की क्या बड़ाई करूँ?वह तो, गुरु नानक कहते हैं, मुझ दर्शनों से वंचित जीवन पर कृपा करके मेरा उद्धार करता है ।।4।।

प्रिय मित्रों, नमस्कार।

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता,

कहते हैं गुरुनानक देव जी कि हे मेरे मित्रो, गुरु की महिमा का गुणगान सुनो। पिंगुल परबल पारि परे खल चतुर बकीता। अंधुले त्रिभवण सूझिआ गुर भेटि पुनीता। कहते हैं गरु के संग भेंट होने पर सारी मलिनताएं दूर हो गईं, सब पाप नष्ट हो गए, लंगड़े-लूले भी पर्वत चढ़ गए, अंधों को भी दिखने लगा, बहरों को भी सुनाई पड़ने लगा। इन प्रतीकों को भली प्रकार से समझना, काव्य को समझना, इसको तथ्यात्मक ढंग से नहीं लेना।

कुछ लोग संत वचनों को तथ्य की तरह समझने की कोशिश करते हैं कि शायद सच में अंधों को दिखने लगा, कि बहरों को सुनाई पड़ने लगा। इसे कविता के रूप में समझना। जब भीतर की आंख खुली और भीतर का अदृश्य आलोक दिखाई पड़ने लगा, जब भीतर अंतःकरण ने उस आलौकिक ध्वनि को सुनना शुरू कर दिया जो सामान्य कानों से नहीं सुनी जाती, तब चेतना के शिखर पर चढ़ाई हो गई अर्थात् पर्वत पर पहुंच गए जहां सामान्य पैरों से नहीं पहुंचा जा सकता। महिमा साधु संग की सुनो मेरे मीता, मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता, कहते हैं चित्त निर्मल हो गया।

अहंकार और मिथ्या प्रेम इस चित्त की कलुशताएं हैं। प्रेम के नाम पर चल रहे धोखे को हम प्रेम समझते हैं। झूठी प्रशंसा को भी हम प्रेम समझते हैं, वह प्रेम नहीं है, वह तो अहंकार को फुसलाने का उपाय है। हमें लगता है कि जब कोई व्यक्ति हमें प्रेम करता तब वह हमारी प्रशंसा करता है, हमारी तारीफ करता हैं, अतः जब हमें किसी को प्रेम व्यक्त करना होता है तो हम भी उसकी तारीफ करते हैं और दोनों ही खूब धोखा खाते हैं। झूठी प्रशंसा प्रेम नहीं है।

खुशामद करने वाले लोग हमेशा दूसरों की तारीफ करते रहेंगे और अपना काम निकलवा लेंगे। यह शोषण है। कोई भी व्यक्ति जो अच्छे पद पर आसीन है, उसके आसपास चमचे इकट्ठे हो जाते हैं। यही रूग्ण मानसिकता, झूठे प्रेम का आधार है कि जो पद पर है उसकी तारीफ की जाए। वास्तव में उसे भी अपनी तारीफ सुनना अच्छा लगता है। ऐसे में निश्चित ही झूठे लोग झूठी तारीफ करते रहेंगे। दोनों ही एक-दूसरे का शोषण कर रहे हैं। एक आदमी प्रशंसा का भूखा है और दूसरा उसकी भूख मिटा रहा है, निश्चित ही इस प्रशंसा के बदले में वह कोई दूसरा काम करवाएगा। एक पारस्परिक लेन-देन चल रहा है, यह अहंकारी चित्त की कुशलता है।

नानक कह रहे हैं, निर्मल हो जाओ, इस मैल को बह जाने दो। प्रेम के नाम पर एक और धोखा है वह है सहानुभूति और दया का धोखा। विशेषकर महिलाएं चूंकि वे कमजोर होती हैं, समाज ने उनको विकसित होने का मौका नहीं दिया, आर्थिक और

सामाजिक रूप से स्वनिर्भर नहीं होने दिया और शिक्षित नहीं होने दिया, इसलिए वह दूसरों पर निर्भर हैं। महिलाओं को प्रेम पाने का एक ही तरीका आता है- सहानुभूति अर्जित करना। इसलिए दुखों की चर्चा बढ़ा-चढ़ा कर करती हैं, जितनी तकलीफ है उससे कहीं ज्यादा बताएंगी। वह अपने पारिवारिक कष्ट, आर्थिक कष्ट, शारीरिक कष्ट, मानसिक कष्ट को बढ़ा-चढ़ा कर बताएंगी और कुछ झूठी बीमारियां भी पैदा कर लेंगी। उनका अनकॉन्शेस माइंड ऐसा कह देता है। सब डॉक्टर थक जाएं लेकिन रोग पकड़ में नहीं आता है। यह उपाय है सहानुभूति प्राप्त करने का। अब मजबूरी में लोग सहानुभूति दिखाएंगे, लेकिन याद रखना कि यह प्रेम नहीं है।

जैसे प्रशंसा को प्रेम समझने की भूल हो जाती है वैसे ही दया को भी प्रेम समझने की भूल हो जाती है। जब आप किसी भिखारी को जो आपके पीछे पड़ा है, गिड़गिड़ा रहा है, दान देते हैं तो यह प्रेम नहीं है, यह दया है। लोग इस प्रकार की दया हासिल करने की कोशिश में रहते हैं क्योंकि उनको पता है कि प्रेम तो मिलने वाला नहीं है। तो उसका विकल्प कम से कम दया ही मिल जाए। खासकर जो कमजोर वर्ग है वह सबल वर्ग से दया प्राप्त करने की कोशिश करेगा।

हिस्टीरिया नाम की बीमारी अधिकांशतः महिलाओं को ही होती है और उसका मुख्य कारण बस एक ही है, वह है अटेंशन सीकिंग टेंडेसी अथवा ध्यान आकर्षित करने की चाह। ऐसे तो कोई ध्यान दे नहीं रहा है, तो अचानक कुछ ऐसा हो जाए कि मजबूरी में लोगों को ध्यान देना ही पड़े। पति वैसे तो कभी समय देता नहीं घर में, वह हमेशा कहेगा कि आफिस में ज्यादा काम है, मैं आज लेट हो जाऊंगा, अब पत्नी बेहोश होकर गिर गई, हाथ-पैर अकड़ गए, सास भागी-भागी आई जो दिन भर इसको गाली देती थी, उल्टा-सीधा बोलती थी वह भी इसके सिरहाने बैठकर पानी छिड़क रही है, माथे में हाथ फेर रही है, पति को फोन पहुंच गया तो वह भी भागा-भागा पहुंचा कि क्या हो गया और मोहल्ले के लोग जमा हो गए और वह महिला बेहोश पड़ी है हाथ-पैर अकड़ाए हुए।

उसके दांत भी खोलने की कोशिश करो कि एक चम्मच पानी ही पिला दो तो नामुमकिन। कितनी भी दुबली-पतली हो उसका मुंह बड़े-बड़े पहलवान भी नहीं खुलवा सकते। अगर वह वास्तविक बेहोश होती तो सारी मसल्स रिलैक्स हो जातीं और अपने आप ही मुंह खुल जाता लेकिन जान-बूझकर अकड़ाए हुए है सारे शरीर को, किसी की औकात नहीं कि उसका अभी मुंह खुलवा ले। वह यही चाह रही थी कि सारी भीड़ जमा हो जाए क्योंकि ऐसे तो कोई देखता नहीं, कोई पूछता नहीं, प्रेम तो नहीं मिल सकता तो कम से कम सहानुभूति ही मिल जाए। और एक बार यह ट्रिक काम कर गई तो बस, बारंबार यह दौरे पड़ेंगे। अब इसका कोई इलाज नहीं हो सकता। कोई बीमारी हो तो इलाज हो।

कुछ ऐसे अदृश्य दर्द होंगे जो किसी भी जांच से पता नहीं चल सकते। डॉक्टर बदलते रहो, फिर पैथी बदलते रहो, इसका कुल मतलब इतना है कि परिवार के लोग उसको यहां से वहां, एक डॉक्टर से दूसरे डॉक्टर के पास ले जाएं, इससे उसे यह लगता है कि सब लोग मुझे प्रेम करते हैं, एक झूठा एहसास। वह भलीभांति जानती है कि प्रेम तो कोई नहीं करता लेकिन क्या करो? कम से कम दया ही प्राप्त कर लो। यह भिखमंगे जैसी हालत है जैसे भीख मांगने वाला हाथ में कटोरा लेकर पीछे पड़ा है और गिड़गिड़ा रहा है। और अपना दर्द और तकलीफ बता रहा है कि देखो मेरा हाथ या पैर कटा हुआ है, अंधा हूं, वह दया हासिल करने की कोशिश कर रहा है। दुनिया में बहुत लोग इस प्रकार की दया हासिल करने की कोशिश करते हैं।

वह जो मजनूं बने घूम रहे हैं पागल से दिखने लगे हैं वह जिस लड़की के पीछे पड़े हैं अब उससे दया हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं। वह लड़की मना कर रही है लेकिन यह पीछे पड़े ही हैं भिखमंगे की तरह। फिर एक दिन उस लड़की को हार कर हां करनी ही पड़ेगी, थोड़ा हृदय पसीजेगा लेकिन याद रखना, यह प्रेम नहीं है। यह भिखमंगे को दी जाने वाली भीख की तरह है। स्त्रियों को भी यह ट्रिक खूब अच्छे से आती है, किसी को पत्र लिख रही हैं, किसी को फोन कर रही हैं, किसी को एसएमएस भेज रही हैं, कोई जवाब नहीं आ रहा है मगर वह देवी मानने वाली नहीं हैं कि कभी तो दिल पसीजेगा। सफलता मिल जाएगी, कुछ महीने लगेंगे, कुछ साल लगेंगे आखिर कब तक कोई जवाब नहीं देगा, कब तक कोई फोन नहीं उठाएगा। लेकिन यह बहुत ही दयनीय हालत है, यह प्रेम तो नहीं है, मिल भी गया तो इससे कोई तृप्ति नहीं मिलने वाली है क्योंकि यह फाल्स सब्सटीट्यूट है।

तो प्रशंसा वह लोग पाने की कोशिश करते हैं जो सबल हैं, पावरफुल हैं, वह भी प्रेम नहीं है। जो लोग कमजोर हैं वह दया पाने की कोशिश करते हैं। मैं जब डॉक्टर था तो हर दस दिन में कोई न कोई हिस्टीरिया की मरीज आती थी। मैंने खूब अच्छा उपाय ढूंढ़ा था। हिस्टीरिया की एक खूबी यह है कि उसके सारे लक्षण तभी रहते हैं जब तक आसपास लोग मौजूद हों क्योंकि वह दूसरों को दिखाने के लिए ही है। जब कोई महिला भीड़भाड़ लेकर आई है, पूरे मोहल्ले के लोग खड़े हैं तो मैं सबको बाहर निकाल देता, सिर्फ एक मरीज ही रह जाती थी अंदर और मैं जोर से बोलता ताकि वह सुन भी ले कि सब लोग बाहर निकल जाएं, यहां कोई नहीं रहेगा और नर्स आप भी चलिए बाहर, यहां एक गिलास में पानी रख दीजिए, इनको पीना होगा तो उठकर पी लेंगी क्योंकि दो घंटे से प्यासी हैं और अभी इनको छोड़कर सब लोग बाहर चलते हैं, घंटे भर बाद आकर देखेंगे।

ऐसा जोर से कहकर ताकि वह सुन ले फिर हम वास्तव में सबको बाहर निकाल

देते और खुद भी बाहर चले जाते, नर्स भी बाहर हो जाती। मैंने दरवाजे में एक छेद बना रखा था देखने के लिए, जैसे ही सब बाहर हुए, उस देवी ने धीरे से नजर खोली, अधखुली आंखों से यहां-वहां ताकझांक की कि कोई है तो नहीं और उठ के बैठीं, पानी पिया। तब मैं उसके परिवार के किसी भी व्यक्ति को दिखा देता कि देख लो चुपचाप अभी, कम से कम तुम तो जान लो कि यह वास्तविक बीमारी नहीं है। जैसे ही हम दरवाजा खोलेंगे वह फिर बेहोश मिलेगी।

हिस्टीरिया का अटैक हमेशा तब पड़ता है जब लोग मौजूद हैं, एकांत में कभी नहीं पड़ता। अगर वास्तविक मिर्गी का अटैक हो तो वह तो एकांत में भी हो सकता है, नींद में भी हो सकता है, पानी में भी गिर के लोग मर जाते हैं मिर्गी वाले, आग में जल जाते हैं कुछ भी संभव है मिर्गी में लेकिन हिस्टीरिया का झूठा अटैक अच्छे से देखकर के आता है, आज तक हिस्टीरिया के मरीज को कभी कोई चोट नहीं लगी। गिरते हैं धड़ाम से, आवाज भी जोर की होगी लेकिन चोट कभी नहीं लगती क्योंकि वह सुव्यवस्थित ढंग से गिरते हैं। जहां गिरना चाहिए वहीं गिरते हैं, हर कहीं नहीं गिर जाते कि कांटे कंकड़ गड़ जाएं। मिर्गी वाले की तो जीभ कट जाती है दांतों के नीचे आकर, हिस्टीरिया वाले की जीभ कभी नहीं कटती। जैसे ही पता चलता है कि लोग मौजूद हैं महिलाएं बेहोश हो जाएंगी और एकांत पाते ही ठीक हो जाती हैं। बस लोगों का ध्यान चाहिए।

तो जो सबल वर्ग है दुनिया में खासकर पुरुष वर्गों में जो लोग सबल हैं, पावरफुल हैं वह प्रशंसा प्राप्त करके समझते हैं कि लोग उनको प्रेम कर रहे हैं। खुशामद करने वाले, चमचागिरी करने वाले, हां में हां मिलाने वाले, जी हजूरी करने वाले लोग चाहिए। और जो कमजोर वर्ग है, विशेशतः महिलाएं वे अटेंशन सीकिंग हो जाती हैं और दया को ही प्रेम समझने लगती हैं। प्रेम पाना तो असंभव सा लगता है, सावधान! यह दोनों ही एक प्रकार के भिखमंगे हैं, यह दोनों ही अहंकार के रूप हैं और अहंकार कुलषता है चित्त की।

नानक कह रहे हैं निरमल भए चीता, चित्त बिल्कुल निर्मल हो जाए। होशपूर्वक इन चीजों को विदा करना। ऐसी भगति गोविंद की कीटि हसती जीता, जो जो कीनो आपनो तिसु अभै दानु दीता। सिंघु बिलाई होई गइओ त्रिणु मेरु दिखीता। स्रमु करते दम आढ कउ ते गनी धनीता। कहते हैं परमात्मा की शक्ति, उसका प्रेम ऐसा है कि चींटी भी हाथी को जीत सकती है। प्रभु ने जिसे अपना लिया उसे अभय प्राप्त हो जाता है। सिंह भी बिल्ली के समान दिखाई देने लगता है। इसको भी उपमा समझना। शेर अहंकार की दहाड़ है और चींटी विनम्र है। नानक कह रहे हैं सिंह भी बिल्ली के समान दिखाई देने लगता है। और उल्टा भी होता है, तिनका भी मेरु पर्वत के जैसा दिखाई पड़ने लगता है।

निर्बल के बल राम, जिसने अपना अहंकार छोड़ा, पूरी तरह से निर्बल हो गया, अचानक परमात्मा का बल उसके भीतर आ जाता है। यह बल राजनैतिक बल नहीं, यह कोई आर्थिक बल नहीं, यह किसी ऊंची पोस्ट पर होने का बल नहीं, यह एक आंतरिक एवं आत्मिक बल है। ऐसा व्यक्ति भीतर से सम्राट हो गया। अब उसे न प्रशंसा की चाहत है, न किसी की दया और सहानुभूति की चाहत है।

जब भी कोई सेलीब्रेशन या कोई प्रोग्राम होता है, तो हर गीत के बाद या हर नृत्य के बाद बार-बार घोषणा करनी पड़ती है कि तालियां बजाएं।

कितना भिखमंगापन है, तालियां बजाएं... और जोर से। इसका एक हल यह है कि तालियां रिकार्ड कर लो, लोग बजाएं चाहे न बजाएं, हर गाने की समाप्ति पर तालियां स्वतः ही शुरू हो जाएं। और लोग तो हिप्नोसिस से चलते हैं, जैसे ही वह ताली की आवाज सुनते हैं खुद भी बजाने लगते हैं। एक सम्मोहन है, लोगों को लगता है कि सारी भीड़ कर रही है तो हम भी कर दें। भीड़ में से यदि एक आदमी उठकर बाथरूम के लिए जाए तो तुरंत चार-पांच लोग और चले जाएंगे, भेड़चाल है। यदि एक आदमी को खांसी आ गई तो और पांच-सात लोग तुरंत खांसेंगे। अगर एक व्यक्ति को नींद आने लगी तो आसपास के दस आदमी तुरंत अंगड़ाई और जम्हाई लेंगे। बिल्कुल सम्मोहित अवस्था में हम अपने कर्म-धर्म करते हैं। अगर चार-छः आदमी ताली बजा दें, तो बाकी लोगों को कहने की जरूरत ही नहीं, बाकी सब लोग बजाएंगे ही बजाएंगे। हम बिल्कुल रोबोट्स की भांति हैं, बटन दबी और काम शुरू मशीन की तरह।

मुझे यह समझ में नहीं आता कि ताली की जरूरत क्या है? कलाकार को बिल्कुल मजा नहीं आता अगर ताली नहीं बजती। ऐसे ही कवि लोग आते हैं, कई कवि तो कह देते हैं कि आप एडवांस में ताली बजाइए क्योंकि उनको पक्का पता है कि बाद में बजाने लायक रहूं या न रहूं इसलिए एडवांस ताली चाहिए। प्रशंसा फीडबैक में मिले, बेचारे तीन दिन से इतना उछलकूद मचा रहे हैं, पैरों में छाले पड़ गए नाचते-नाचते, कम से कम ताली तो बजाओ।

अगर ताली न बजे तो एकदम से उदासी छा जाएगी, सारा उमंग और उत्साह गायब हो जाएगा अर्थात हमारे भीतर से कुछ नहीं आ रहा, हम बिल्कुल भिखमंगे की तरह हैं दूसरों पर निर्भर हैं। हम अपने मालिक नहीं हैं, हमारी खुशी हमारी खुशी नहीं है, हमारा बल अपना बल नहीं है। दूसरे हमें क्या देते हैं सब इस पर निर्भर करता है। कवन वडाई कहि सकउ ते बेअंत गुनीता। करि किरपा मुहि नामु देहु नानक दरसरीता। कहते हैं कि उस अनंत गुणवान की क्या बड़ाई करूं, उससे ही मेरा उद्धार हो गया है।

प्यारे मित्रो, प्रेम के संदर्भ में इस सूत्र को थोड़ा सा समझना होगा। इससे पहले के

अध्यायों में हम शारीरिक, मानसिक, हार्दिक और आत्मिक प्रेम की बात कर चुके हैं। एक स्पष्ट परिभाषा यह है कि प्रथम तीन लौकिक प्रेम हैं और चौथा पराभक्ति या आलौकिक प्रेम है। लौकिक प्रेम अर्थात जिसको इंद्रियों से, मन से, भावना से जाना जा सके। अलौकिक प्रेम का अर्थ है जो इंद्रियों की पकड़ से बाहर है। उदाहरण के लिए हम ओंकार को कहते हैं आलौकिक ध्वनि, दिव्य ध्वनि। क्यों? क्योंकि इसको कानों से सुनना संभव नहीं है, किसी यंत्र के द्वारा रिकार्ड करना संभव नहीं है, न अपनी इंद्रियों से और न ही किसी वैज्ञानिक उपकरण से इसको पकड़ा जा सकता है। भीतर केवल इस चेतना के संगीत को चेतना ही जानती है, अन्य कोई भी उपाय नहीं है इसलिए हम उसको आलौकिक कहते हैं, दिव्य कहते हैं।

आलोक को हम कहते हैं दिव्य आलोक, क्यों? वह आंख से नहीं जाना जाता, किसी टेलीवीजन से, किसी कैमरे से पकड़ में नहीं आता है। वह दृश्य नहीं है, वह स्वयं द्रष्टा है। आत्मा दृश्य नहीं है, द्रष्टा है, साक्षी है। दिव्य सुगंध या दिव्य स्वाद को किसी इंद्रिय से नहीं जाना जा सकता, दिव्य स्पर्श को अमृत चेतना के अनुभव को बाहर से जानने का कोई उपाय नहीं है, आप केवल अपने भीतर ही उसे जान सकते हैं, बस। इसी संदर्भ में समझिएगा दिव्य प्रेम और भक्ति को, जिसको बाहर से जाना जा सके वह दिव्य प्रेम नहीं हुआ, जिसे केवल आप ही अपने भीतर जानते हैं बस वह ही आलौकिक है और दिव्य है।

प्रथम तीनों तलों पर लौकिक प्रेम है, चाहे वह भावनात्मक हो, चाहे वैचारिक हो, चाहे वह दैहिक हो, पर सब लौकिक है। वैज्ञानिकों ने उपाय कर लिए हैं जिसको हम भावनात्मक प्रेम कहते हैं उसका भी विश्लेषण संभव है, कुछ खास हार्मोन्स, न्यूरो ट्रांसमीटर्स के इंजेक्शन लगाकर ऐसी भावना पैदा की जा सकती है, उस भावना को नष्ट भी किया जा सकता है। जिसको हम बहुत महत्वपूर्ण समझ रहे थे वह एक केमिकल है बस, कुछ खास नहीं। उसका एंटीडोज देकर उसको नष्ट भी कर सकते हैं। सारी भावनाएं गायब हो जाएंगी, न केवल प्रेम, दूसरी भावनाएं भी। क्रोध को भी समाप्त किया जा सकता है, भय को समाप्त किया जा सकता है।

जिनको हम समझ रहे थे कि बहुत महत्वपूर्ण भावनाएं हैं वे कुछ खास नहीं, विशिष्ट केमिकल्स हैं जो हमारे एड्रीनल ग्लैंड से निकलते हैं और अंतःस्रावी ग्रंथियों में बनते हैं। उनके द्वारा उत्पन्न होते हैं तो उनको रोका भी जा सकता है, उसके उपाय किए जा सकते हैं फिर वैसी भावना पैदा नहीं होगी। एड्रीनिल हार्मोन्स की ग्रंथि काट दी जाए फिर आप कभी भी भयभीत नहीं होंगे और न ही कभी क्रोध आएगा। कुत्तों के ऊपर प्रयोग किए गए हैं, फिर कुत्ते भौंकना बंद कर देते हैं। उनकी एड्रीनिल ग्रंथि काट दी गई जिससे क्रोध पैदा होता था, अब क्रोध पैदा नहीं होगा। लेकिन याद रखना, यह कुत्ता

किसी क्षमाभाव को उपलब्ध नहीं हो गया है। अब यह काटता नहीं, भौंकता नहीं हैं पर इसका यह अर्थ नहीं है कि इसे अहिंसा फलित हो गई है।

ठीक इसी प्रकार योगियों ने कई प्रकार से प्रयास किया कि शरीर के किसी विशेष अंग पर दबाव डालने से कामवासना खत्म हो जाए। अब वैज्ञानिक तरीकों से भी यह किया जा सकता है, उन ग्रंथियों का निकाला जा सकता है, कामवासना खत्म हो जाएगी लेकिन याद रखना, यह ब्रह्मचर्य नहीं है। हठयोग के द्वारा भी वैसा ब्रह्मचर्य प्राप्त हो सकता है लेकिन वह गलत है, वह वास्तविक ब्रह्मचर्य नहीं है। कामवासना का खत्म हो जाना ब्रह्मचर्य नहीं है, ब्रह्मचर्य अपने आप में बहुत उच्च बात है, इतनी तुच्छ बात नहीं है। जब हम किसी बात को आलौकिक कहते हैं उसका मतलब है कि वह हमारी फिजिक्स, हमारी केमेस्ट्री, बायलाजी इन सबके परे है, इनसे कोई लेना-देना नहीं है।

तो प्रथम तीन तल के प्रेम अथवा अन्य भावनाएं, सदभावनाएं, दुर्भावनाएं सभी हमारी फिजिक्स का, केमेस्ट्री का, बायोकेमेस्ट्री का हिस्सा हैं, कोई बहुत महत्वपूर्ण बात नहीं है, उनको बदला भी जा सकता है। कुछ लोगों के अंदर एक्स्ट्रा हार्मोन्स हैं, अपने आपको बड़ा प्रेमी समझते हैं, वे भ्रम में हैं, उनको बीमारी है। कुछ हार्मोन्स उनके ज्यादा बन रहे हैं। अलौकिक प्रेम इन तीनों तलों से कोई भी संबंध नहीं रखता, वह केवल अपनी चेतना में केवल हम स्वयं ही अनुभव कर सकते हैं। तो हम अपने भीतर के प्रेम को परखें कि क्या वह हमारी भौतिक देह का हिस्सा है? क्या वह किसी विचार से संबंधित है? क्या वह कोई भावना है जो हमें घेर लेती है? हमें और अधिक गहराई में विश्लेषण करना होगा, हालांकि यह सब अपनी जगह ठीक हैं। याद रखना, मैं इनका कोई विरोधी नहीं हूं, ओंकार के पक्ष में हूं तो इसका मतलब यह नहीं कि बाहर के संगीत के विरोध में हूं, उस संगीत की अपनी जगह है, अपनी कीमत है। दिव्य आलोक के पक्ष में हूं तो इसका मतलब यह नहीं है कि बिजली के बल्ब तोड़ दूं, उनका अपना महत्व है और अपनी जगह उपयोगी हैं। ठीक वैसे ही यह तीन प्रेम अपनी जगह ठीक हैं उपयोगी हैं, दिव्य प्रेम को जान लें तो जीवन में आनंद ही कुछ और हो जाए। यह तीन अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं, इन तीनों से जरा पीछे खिसकना और उस बिन्दु पर पहुंच जाना जहां केवल तुम ही रह गए, अन्य कोई भी नहीं। कोई विचार नहीं, कोई भावना नहीं, कोई शारीरिक क्रिया नहीं, क्या वहां भी प्रेम मौजूद है? वही पराभक्ति में पहुंचना है।

खोल कपाट गुरु मेलीआ

दरसन पिआसी दिनसु राति चितवउ अनुदिनु नीत।
खोल कपाट गुरि मेलीआ नानक हरि संगि मीत।
हउ ढाढी दरि गुण गावदा जे हरि प्रभ भावै।
प्रभु मेरा थिर थावरी होर आवै जावै।
सो मंगा दानु गोसाईआ जितु भूख लहि जावै।
प्रभु जीउ देवहु दरसनु आपणा जितु ढाढी त्रिपतावै।
अरदासि सुणी दातारि प्रभि ढाढी काउ महलि बुलावै।
प्रभु देखदिआ दुख भुख गई ढाढी कउ मंगणु चिति न आवै।
सभे इछा पूरीआ लगि प्रभु के पावै।
हउ निरगुणु ढाढी बखसिओनु प्रभि पुरखि वेदावै ।।1।।

मैं प्रभु-दर्शन की प्यासी हूँ। दिन-रात तुम्हें याद करती हूँ। गुरु ने द्वार खोल के मुझे मेरे मीत हरि से मिला दिया। मैं हरि के द्वार का चारण हूँ, हरि की प्रसन्नता के लिए उसका गुण गाता हूँ। मेरा स्वामी एकमात्र स्थिर-स्थायी है, अन्य सब आवागमन के शिकार हैं। हे स्वामी, मैं तुमसे वह दान मांगता हूँ, जिससे मेरी सम्पूर्ण तृष्णा मिट जाए। हे प्रभु, अपना पावन दर्शन दो, जिससे तुम्हारा यह सेवक चारण तृप्त हो जाये। प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे (चारण को) महल में बुला लिया। प्रभु के दर्शन पाते ही गुण-गायक (चारण) की सब तृष्णा-वेदना नष्ट हो गई और (दर्शन में रत होकर) माँगने का ध्यान ही नहीं रहा। प्रभु के चरणों में लगकर मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण हो गई हैं। मुझ गुण-हीन अकिंचन चारण को परमप्रभु ने बख़्श लिया ।।1।।

प्यारे मित्रों, नमस्कार।

'दरसन पिआसी दिनसु राति चितवउ अनुदिनु नीत।

खोल कपाट गुरि मेलीआ नानक हरि संगि मीत।'

कहते हैं कि मैं प्रभु दर्शन की प्यास से भरी हुई, दिन रात उसकी याद में डूबी हुई जीवात्मा हूं, गुरु ने द्वार खोला और मुझे मेरे परम मीत हरि से मिलाया।

'हउ ढाढी दरि गुण गावदा जे हरि प्रभ भावै।

प्रभु मेरा थिर थावरी होर आवै जावै।'

कहते हैं, मेरा वह परमात्मा, मेरा प्रियतम स्थिर है, स्थायी है बाकी सब आवागमन के शिकार हैं। 'होरे आवे-जावे।' शेष सब आते-जाते हैं। वह परम तत्व स्थिर है, सदा-सदा एक सा है।

'सो मंगा दानु गोसाईआ जितु भूख लहि जावै।

प्रभु जीउ देवहु दरसनु आपणा जितु ढाढी त्रिपतावै।'

मैंने कहा कि हे प्रभु कुछ ऐसा दान दो कि मैं सदा-सदा के लिए तृप्त हो जाऊं, मेरी भूख मिट जाए। बस अपना दर्शन दे दो यही मेरी सबसे बड़ी इच्छा है।

'अरदासि सुणी दातारि प्रभि।'

उस दाता प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुनी।

'ढाढी काउ महलि बुलावै।'

मुझे महल के भीतर बुला लिया। संत वाणी में जहां-जहां 'महल' शब्द आता है इसका अर्थ अपनी काया से है। इस देह के भीतर वह परम तत्व मौजूद है। जिसने भी उसे पाया है इस महल में ही पाया है। इस शरीर को महल कहते हैं।

'प्रभु देखदिआ दुख भुख गई ढाढी कउ मंगणु चिति न आवै।'

परमात्मा को सुनकर, परमात्मा को देखकर, यह भी ध्यान न रहा कि कुछ मांगना है। जो इच्छाएं थी उनका ख्याल ही न आया, विस्मरण ही हो गया।

'सभे इछा पूरीआ लगि प्रभु के पावै।'

प्रभु के ज्ञान से सभी इच्छाएं समाप्त हो गयीं, मैं वासना रहित हो गया।

'हउ निरगुणु ढाढी बखसिओनु प्रभि पुरखि वेदावै ।'

और प्रभु की कृपा है कि मुझ निर्गुण पर, मुझ गुणहीन पर भी उसने अपनी मेहरबानी की, मुझे अपना लिया। मुझे भी भीतर महल में बुलाया और दर्शन दिए। यह उसकी बड़ी से बड़ी कृपा है। तो तीन महत्वपूर्ण बातें ख्याल में रखना। यह शरीर हमारा मंदिर है, जिसमें स्वयं ब्रह्म विराजमान है। संसार में लोग बाहर के मंदिर, मस्जिद, चर्च,

तीरथ और हज आदि में जात हैं।

स्वयं से बाहर जो परमात्मा को खोज रहे हैं वे कभी भी न खोज पाएंगे। जो निकट में भी नहीं पहचान पाए वो दूर में कैसे पहचानेंगे? दूर भी वही है लेकिन हम नहीं पहचान पाएंगे। अपने भीतर ही ज्ञान हो सकता है। बाहर तो केवल अनुमान है। ज्ञान सदा भीतर है। जिस व्यक्ति ने अपने भीतर के चैतन्य को जाना कि मैं कांशेस हूं, मेरे भीतर चेतना है, संवेदनशीलता है, वह सब के भीतर ही फिर चेतना को जान पाता है। लेकिन सबसे पहले स्वयं के भीतर ही जानना होगा।

जिसने स्वयं के भीतर गूंजते नाद के स्वर को जान लिया अब वह जानता है कि सब के भीतर वही है लेकिन सबसे पहले खुद के भीतर जानना होगा। इस बात को याद रखना ज्ञान सदा भीतर है, अनुमान बाहर होता है। जो हम भीतर जानते हैं वैसा ही अनुमान बाहर के बारे में लगाते हैं। कोई व्यक्ति बहुत चालाक है, धूर्त और बेईमान है वो सोचता है कि दुनिया में सभी लोग चालाक और बेईमान है। ये उसका अनुमान है। जो व्यक्ति सीधा सरल है वह समझता है कि सारी दुनिया में सभी लोग सीधे सरल होंगे। ये उसका अनुमान है।

जो आदमी दुख में है उसे लगता है कि सारी दुनिया दुखी है। रात चांद को भी देखे तो लगेगा कैसा मुरझाया हुआ है, फीका-फीका है, उदास है, चमक नहीं है। जो व्यक्ति प्रसन्न है उसको सब कुछ प्रसन्नता से भरा हुआ नजर आता है। यही चांद उस खुशमिजाज व्यक्ति के लिए अलग ढंग से दिखाई देगा। दुखी व्यक्ति के लिए अलग ढंग से दिखाई देगा। चांद वास्तव में क्या है? ये कोई भी नहीं जानता, न ही हम जान सकते हैं। वो हमारा अनुमान ही है।

जो हमारे भीतर हो रहा है उसी को प्रोजेक्ट कर के हम बाहर देखते हैं। इस बात के प्रति खूब-खूब सचेत रहना। बाहर के तथ्य को हम नहीं जान सकते हम केवल अपने आंतरिक सत्य को ही जानते हैं। जैसे प्रोजेक्टर से फिल्म प्रोजेक्ट होती है और परदे पर दिखाई देती है। करीब-करीब वैसा ही हमें संसार में जो दिखाई देता है वो हमारे भीतर का ही प्रोजेक्शन है, प्रक्षेपण है। अगर हम भीतर बदल जाते हैं तो बाहर की दुनिया हमें बदली-बदली नजर आती है। पर्दा नहीं बदल गया, प्रोजेक्टर की फिल्म बदल गयी। जब आप भीतर प्रेम से भरे होते हैं, सभी लोग प्रिय लगते हैं, अच्छे लगते हैं। जब आप घृणा से भरे हैं, क्रोध से भरे हैं सभी लोग शैतान नजर आते हैं।

जो लोग भगवान की खोज में कहीं बाहर जाते हैं, वे भ्रम में हैं। अपने भीतर प्रेम को विकसित करो। फिर सर्वत्र परमात्मा नजर आता है। सबसे पहले अपने भीतर फिर सर्वत्र। जो व्यक्ति क्रोध से भरा है, नफरत से, ईर्श्या से, जल-भुन रहा है, उसके भीतर स्वयं शैतानियत सवार है, उसको सर्वत्र शैतान ही नजर आएगा। वो मान ही नहीं

सकता कि दुनिया में कोई भले मानुश हैं, अच्छे लोग हैं। वो स्वयं नहीं है, तो वो कैसे माने कि दूसरे होंगे?

इस बात का खूब ख्याल रखना, हमें जो बाहर दिखाई पड़ रहा है वह हमारा ही प्रक्षेपण है। वो हम ही हैं और इसलिए अगर परमात्मा को खोजना है तो मंदिर, मस्जिद, तीरथ जाने से बात न बनेगी। अपने भीतर जाना होगा, वहां तलाशना होगा। और केवल तलाशना ही नहीं स्वयं को रूपांतरित करना होगा। ये तलाश ऐसी नहीं कि कोई चीज वहां रखी है, गए और मिल गयी। ये कुछ ऐसी है कि हमको ही बदलते-बदलते वैसा हो जाना होगा।

जैसे कोई छोटा बच्चा जवानी को जानना चाहे, तो कुल एक ही उपाय है कि उसको स्वयं ही इस प्रोसेस से गुजरना होगा। जब वह स्वयं जवान हो जाएगा तब वह जानेगा कि जवानी क्या है? बुढ़ापा क्या है हम दूसरों को देखकर नहीं जान सकते। हम खुद जब बूढ़े होंगे तभी हमें पता चलेगा कि बुढ़ापा क्या होता है? परमात्मा को जानने के लिए परमात्मा हो जाना पड़ता है और कोई उपाय नहीं है। ये परमात्मा कहीं रखा हुआ नहीं है कि वहां गए और मिल गए, साक्षात्कार कर लिया, इंटरव्यू ले लिया उनका। हमें ही वैसे हो जाना है- परमात्ममय।

महावीर ने कहा है जब आत्मा ही परमात्मा हो जाती है दोनों में कोई भेद नहीं, तब बाहर भी वही सर्वत्र नजर आता है। उसके पहले कोई उपाय नहीं है।

तो प्यारे मित्रों, विभिन्न समाधियों के माध्यम से आप अपने भीतर ब्रह्म के जिन गुणों को- नाद, नूर, अमृत, प्रेम, आनंद, चैतन्य आदि को जानते हो, वह कुछ और नहीं है, वह आप ही हो। आप ही हो ओंकार, आप ही हो आलोक।

जीवन पदवी पाई

खुलिआ करमु क्रिपा भई ठाकुर कीरतनु हरि हरि गाई।
स्रमु थाका पाए बिस्रामा मिटि गई सगली धाई ।।1।।
अब मोहि जीवन पदवी पाई।
चीति आइओ मनि पुरखु बिधता संतन की सरणाई ।।1।। रहाउ।।
कामु क्रोध लोभु मोहु निवारे निवरे सगल बैराई।
सद हजूरि हाजरु है नाजरु कतहि न भइओ दूराई ।।2।।
सुख सीतल सरधा सभ पूरी होए संत सहाई ।
पावन पतित कीए खिन भीतरि महिमा कथनु न जाई ।।3।।
निरभउ भए सगल भै खोए गोबिंद चरण ओटाई ।
नानकु जसु गावै ठाकुर का रैणि दिनसु लिव लाई ।।4।।

भाग्य खुल गया, प्रभु की कृपा हुई, जिससे अब हरि–नाम की कीर्ति करता हूँ। श्रम की थकावट (बेकार भगदड़) चुक गयी, जीवन में स्थिरता आई और समूची भटकन शांत हो गयी ।।1।। अब मुझे जीवन–पद प्राप्त हुआ है, मन जगत् के विधाता परमपुरुष में लगा है और संन्तों की शरण प्राप्त हुई है ।।1।।रहाउ।। (मैंने अर्थात् जीव ने) काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का निवारण किया है, सब वैर–विरोध त्याग दिए हैं। परमात्मा (मेरे लिए) सदा साक्षात् प्रत्यक्ष है, कहीं कभी दूर नहीं होता ।।2।। सन्तों (गुरु) की सहायता से मुझे सुख–शांति मिली, (हृदय) शीतल हुआ, श्रद्धा सब पूर्ण हुई है। उसकी महिमा अकथनीय है, क्षण भर में ही वह अनेक पतितों को पावन कर देता है ।।3।। परमात्मा के चरणों का सहारा लेने से मेरे समूचे भय नष्ट हो गए हैं और मैं निर्भय हो गया हूँ। गुरु नानक कहते हैं कि रात–दिन उसी में लग्न लगाकर (मैं) स्वामी का यशोगान करता हूँ ।।4।।

प्यारे मित्रों, नमस्कार।

कहते हैं नानक कि भाग्य खुल गया। प्रभु कृपा हुई, अब हरि नाम की कीर्ति करता हूं, श्रम की थकावट चुक गई है। जीवन में स्थिरता आई और समूची भटकन शांत हुई। अब मुझे जीवनपद प्राप्त हुआ है। मन, जीवन के विधाता परम पुरूष पर लगा हैं और संतों की शरण प्राप्त हुई। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का निवारण हुआ सब बैर त्याग दिए। परमात्मा सदा साक्षात् प्रत्यक्ष हैं। कहीं कभी दूर नहीं होता। संतों की सहायता से जो मुझे शांति मिली है, हृदय शीतल हुआ, श्रद्धा पूर्ण हुई, उसकी महिमा अकथनीय है। क्षण भर में ही वह अनेक पतितों को पावन कर देता है। परमात्मा के चरणों का सहारा लेने से मेरे समूचे भय नष्ट हुए और मैं निर्भय हो गया हूं।

नानक कहते हैं कि रात-दिन उसी की लगन में डूबा हुआ, मैं उसका यशोगान करता हूं। प्रेम के बारे में दो-तीन बातें बहुत महत्वपूर्ण है। जैसे पिछले अध्यायों में हमने चर्चा कि कोई भी बाहरी क्रिया उत्तेजना वाली होगी, वह थकाने वाली होगी फिर उससे छुट्टी लेनी ही होगी। वह सदा नहीं की जा सकती। प्रेम के संबंध में भी हमारी जो धारणा है वह इसी भ्रांति से भरी हुई है जैसे एक्टिवली हमको कुछ करना है। अगर हम करेंगे तो प्रेम होगा, वह भी थकाने वाला, तोड़ने वाला होगा। थोड़ी देर में चुकता हो जाएगा। किसी भी क्रिया में श्रम लगता है।

नानक कह रहे हैं कि सारे श्रम की थकावट समाप्त हुई। जीवन में स्थिरता आयी, समूची भटकन शांत हुई। अगर हमारा प्रेम एक्टिव लव है वो ज्यादा दिन नहीं टिकेगा। उसमें शक्ति नष्ट हो रही है। पैसिव लव, निष्क्रिय प्रेम ही सदा हो सकता है। वह हमारा सहज स्वभाव हो सकता है। ऐसा प्रेम ही सहज प्रेम कहलाएगा। जो स्वंय अपने आप है। क्रिया जैसा नहीं, बस जो है, नॉट डूइंग बट बिइंग। याद रखना जिस-जिस चीज में श्रम लग रहा है वह हमारा स्वभाव नहीं है और वह ज्यादा देर तक टिक भी नहीं सकता। केवल स्वभाव ही स्थिर होता है क्योंकि वह सदा-सदा के लिए हो सकता है।

नानक कह रहे हैं कि जीवन में स्थिरता आयी, अपने भीतर टिक गए। दूसरी महत्वपूर्ण बात इस शबद में यह है कि षट्रिपुओं का निवारण हुआ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, बैर और विरोध आदि त्याग दिए।

सामान्यतः साधु संत जब त्याग की बात करते हैं तो वह बताते हैं कि घर छोड़ दिया, मकान छोड़ दिया, पत्नी-बच्चे छोड़ दिए, माता-पिता को छोड़ दिया। मकान हमारा नहीं है हम केवल उपयोग कर रहे हैं। यह एक सामाजिक व्यवस्था है। कोई मकान किसी का नहीं है, हो नहीं सकता। जब हम नहीं थे तब भी यह जमीन थी, यह पिछले चार अरब सालों से है, बीच में हम अचानक प्रगट हुए और कहने लगे कि

हमारी जमीन है। अचानक फिर एक दिन हम गायब हो जाएंगे पर जमीन यहीं रहेगी। निश्चित ही यह तो मंद बुद्धि को भी नजर आता है।

यह जमीन हमारी नहीं हो सकती। हां, जमीन कहे कि आदमी मेरे हैं, ये मनुष्य जो कीड़े मकोड़े की भांति घूम रहे हैं मेरे ऊपर, ये मेरे हैं, तो समझ में आता है कि जमीन ऐसा कह सकती है। जिस माटी से हम जी रहे हैं उसी माटी में मिल जाएंगे। इसलिए मनुष्य कहे कि ये जमीन मेरी है तो असंभव बात लगती है। ऐसा तो कभी भी नहीं हो सकता।

तो जो चीजें हमारी नहीं हैं उनका त्याग भी कैसे होगा? और जो हमारा वास्तविक स्वरूप है उसका भी त्याग नहीं हो सकता। तो त्याग का मामला बड़ा जटिल है। जो चीज हमारी है ही नहीं उसका त्याग भी संभव नहीं है। कोई सन्यासी कह रहा है कि मैंने पत्नी का त्याग कर दिया। ये पत्नी आपकी थी कब? कुछ समय पहले आप उसे नहीं जानते थे। माता-पिता ने कुछ लड़कियां दिखाईं, उसमें से आपने एक चुन ली। वो आपकी पत्नी हो गई। ना आपके संग आयी, ना आपके संग जाएगी। जो आपकी है ही नहीं उसका त्याग कैसे करोगे?

वास्तव में आप चैतन्य स्वरूप हो, वह तो आप ही हो, तो स्वयं का त्याग कैसे होगा? तो फिर त्याग किस चीज का हो सकता हैं? विचारणीय बात है कि जो हमारा नहीं है उसका त्याग करना झूठा त्याग है। जो हम वास्तव में हैं उसका त्याग संभव नहीं तो फिर त्याग किस चीज का होगा? इन दोनों के बीच में मन उत्पन्न हुआ जो ना पदार्थ है और ना चेतन है। एक भ्रमिक अवस्था, इल्यूजरी स्टेट है, जैसे रात को हम सपने देखते हैं। सपने की कोई वास्तविकता नहीं है। हां अगर हम जाग जाएं तो एक प्रकार से सपने का त्याग हो जाता है। ये कोई वास्तविक वस्तु भी नहीं थी जिसको हम कहें कि मेरी है और ना ही ये हमारा स्वभाव है। एक भ्रम था, इसको छोड़ा जा सकता है।

मन, अंहकार और अंहकार की सारी शाखाएं हमारा इल्यूजन हैं। ये वास्तव में हमारा होना नहीं है। इसी भ्रम से काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, विरोध इत्यादि उत्पन्न होते हैं, जिन्हें हम पकड़े बैठे हैं, इन्हें ही छोड़ना है। यह काल्पनिक हैं। इनकी कोई सच्चाई नहीं है। इनका त्याग ही असली त्याग है।

नानक कह रहे हैं कि अब मुझे जीवनपद प्राप्त हुआ और मैंने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का निवारण किया। बैर, विरोध त्याग दिए। अब प्रभु मुझसे कहीं भी दूर नहीं है। मुझे सुख, शांति मिली। हृदय शीतल हुआ, श्रद्धा पूर्ण हुई। क्षण भर में ही हम पतित-पावन हो जाते हैं। ये क्षण... बहुत महत्वपूर्ण बात है। इस पर दार्शनिकों में काफी विवाद रहा है कि अगर हमारे कर्मों की वजह से हम पर कालिख लगी है और बंधन बन

गए हैं उनको तो काटने में वक्त लगेगा। पता नहीं कितने हजारों जन्मों से हम कर्म कर रहे हैं? उनके क्या-क्या बंधन हो गए होंगे? हिसाब लगाना भी मुश्किल है, उसको काटने के लिए उतना ही श्रम और लगेगा। ये क्षण भर में कैसे हो जाएगा?

मैनें अभी जो स्वप्न वाली बात आपसे कही, यदि उसको ठीक से समझ लें तो यह क्षण की बात भी एकदम स्पष्ट हो जाएगी। कर्ता रूपी अंहकार के कारण जिन्हें हम अपना कर्म समझ रहे हैं, वह भी सपना है और सपना क्षण भर में टूट सकता है।

एक आदमी चार घंटे से सो रहा है, अचानक हमने उसके ऊपर ठण्डा पानी छिड़का और उसे उठा दिया, वो ये नहीं कहता कि चार घंटे से सपना चल रहा था अभी इतनी जल्दी कैसे टूट जाएगा? अब मुझे सपने को धीरे धीरे काटना पड़ेगा। कम से कम चार घंटे और लगेंगे जागने में। नहीं! ऐसा कोई नहीं कहता, बस नींद खुल जाती है क्षण भर में और सब स्वप्न गायब हो जाते हैं। वह कोई वास्तविकता नहीं थी।

अगर कर्मबंध का सिद्धांत सही है, तब तो मुक्ति असंभव है। क्योंकि कर्मबंध काटने के लिए जब हम कोई उपाय करेंगे उसमें फिर कई-कई जन्म लगेंगे उस जन्म में और नए कर्म होते जाएंगे, नए बंधन बंधते जाएंगे। यदि पिछले जन्म में मैंने चोरी की थी, अब उसको काटने के लिए मुझे इस जन्म में दान करना पड़ेगा तब जाकर बैलेंस होगा। मगर दान करने के लिए धन आएगा कहां से? फिर चोरी करनी पड़ेगी। ये सिलसिला तो समाप्त हो ही नहीं सकता। हर कोई पैदा होते ही धन लेकर तो नहीं आता है। यहीं दुनिया में आकर कमाना पड़ता है। दान देकर पिछला वाला कर्म काट दिया अब इस जन्म का नया कर्म फिर बंध गया। तब तो मुक्ति असंभव है।

नानक जो कह रहे हैं केवल यही संभव है कि क्षण भर में सब बंधन नष्ट हो गए। मैं पतित-पावन हो गया। अशुद्ध कोई था ही नहीं, पतित और गिरा हुआ कोई था ही नहीं, बस नींद खुली और अचानक पाया कि मैं शुद्ध ही हूं, मैं पावन और पवित्र ही हूं। सब सपने थे। जब ये अंहकार, क्रोध, बैर, इत्यादि छूट गए, तब जो शेष रह गया वह है सहज प्रेम।

इस बात को याद रखना कि जैसे बीमारी मिट जाती है तो पीछे जो रह जाता है वह है स्वास्थ्य। सीधा-सीधा स्वास्थ को नहीं पाया जा सकता। बीमारी छूट जाए तो जो शेष है वह स्वास्थ्य है। क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य आदि अप्रेमपूर्ण तत्त्वों का छूटना जागरण से होता है। हम जितने चैतन्य हो जाएंगे अचानक ये चीजें गायब होने लगेंगी। पूर्ण होश में ये टिक नहीं सकतीं, तब पीछे जो रह गया वह है सहज प्रेम।

गुरु से भेंट हुई, बात बन गई

ताती वाउ न लगई पारब्रह्म सरणाई।
चउगिरद हमारै रामकार दुखु लगै न भाई ।।1।।
सतिगुरु पूरा भेटिआ जिनि बणत बणाई।
राम नामु अउखधु दीआ एका लिव लाई ।।1।।रहाउ।।
राखि लीए तिनि रखनहारि सभ बिआधि मिटाई।
कहु नानक किरपा भई प्रभु भए सहाई ।।2।।

परब्रह्म के शरणागत को कभी कोई कष्ट नहीं होता (ताती हवा एक नहीं लगती), क्योंकि उसके गिर्द रक्षक लक्ष्मण-रेखा खिंच जाती है और कोई दुःख उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता ।।1।।

सतगुरु के मिलने पर ऐसा विधान होता कि जीव एकाग्र होकर राम-नाम में ही लीन हो जाता है (राम-नाम की दवा लेकर शक्ति पाता है) ।।1।।रहाउ।।

रक्षक प्रभु नित्य रक्षा करता है और सब प्रकार के सन्तापों को दूर करता है। गुरु नानक कहते हैं कि जब परमात्मा कृपा करता है, तो जीवों का सहायक हो जाता है।।2।।

सभी मित्रों को नमस्कार।

ताती वाउ न लगई पारब्रह्म सरणाई।

जो परब्रह्म की शरण में आ गया उसे फिर गर्म हवा का झोंका भी नहीं लगता।

'चऊगिरद हमारै रामकार दुखु लगै न भाई'

चारों तरफ एक लक्ष्मण रेखा खिंच जाती है। दुख उसके भीतर नहीं आते हैं।

'सतिगुरु पूरा भेटिआ जिनि बणत बणाई।

राम नामु अउखधु दीआ एका लिव लाई।।'

गुरु से भेंट हुई और उन्होंने ही बात बना दी है। ओंकार रूपी औषधि दी है जिससे उस एक रामनाम में ही लिव लग गयी, प्रेम लग गया, लगन लग गई। एक में डूब गए।

'राखि लीए तिनि रखनहारि सभ बिआधि मिटाई।

उस प्रभु ने जो सबको रखता है, मुझे भी रख लिया। आज तक वही तो रख रहा था, अब मुझे पता चल गया। 'सब व्याधि मिटायी' सब प्रकार के मनोविकार समाप्त हुए।

'कहु नानक किरपा भई प्रभु भए सहाई।'

कहते हैं नानक कि बहुत कृपा हुई कि प्रभु सहायक हो गए। अस्तित्व सदा ही सहयोगी है। अंहकार वश हम सोचते हैं कि हम ही सब कुछ करने वाले हैं और हम दुखी होते रहते हैं। जैसे ही पता चला कि प्रभु सहायक हैं, उनसे सहायता मिल रही है, उनकी कृपा हो रही है, वो राखन हार हैं तो अंहकार रूपी व्याधि मिट जाती है। मूल व्याधि अंहकार है; बाकि क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि वे सब इसी की शाखाएं हैं। मूल व्याधि अंहकार है। मैं अस्तित्व से अलग-थलग हूं, मैं कर्त्ता हूं। यह भाव अंहकार है। इसलिए जो शरण में गया, जिसने अंहकार को छोड़ा फिर दुख उसे नहीं छू सकते।

'ताती वाउ न लगई पारब्रह्म सरणाई।

चउगिरद हमारै रामकार दुखु लगै न भाई।'

ये जो लक्ष्मण रेखा है जिसे पार करके दुख भीतर नहीं आ सकते। यह लक्ष्मण रेखा समर्पण भाव की है। 'पार ब्रह्म सरनाई।' स्वयं को छोड़ दिया उसके चरणो में। सच पूछो तो ये कहना भी बिल्कुल ठीक नहीं है कि छोड़ दिया। इस बात का पता चल गया कि उसकी ही शरण में हम हैं, छूटे ही हुए हैं। हमारी अलग से कोई सत्ता

नहीं है। ऊपर-ऊपर से दिखते हैं व्यक्ति की भांति, पर भीतर वह समष्टि ही अपनी पूर्णता में मौजूद है। जो कुछ भी हो रहा है वहीं से संचालित हो रहा है। जैसे ही यह भाव समझ में आता है, सारे दुख समाप्त हो जाते हैं। फिर सम्पूर्ण अस्तित्व में जो हो रहा है उसकी मर्जी, उसकी मौज है। हमारी चिन्ता मिटी, हमारा भय मिटा, कर्ता भाव मिटा, अब अस्तित्व की जो मर्जी, उसकी मर्जी से ही सब हो रहा। हम स्वयं भी उसी की मर्जी से हैं। कभी थोड़ा ख्याल करें कि क्या कभी आपने सोचा था कि आप हों और अचानक एक दिन आपने पाया कि आप हैं? और यूं ही एक दिन आप सोच-विचार करके यहां से चले जाएंगे, अचानक गायब हो जाएंगे। नहीं, आपकी मर्जी पूछी भी नहीं जाएगी। ना आप मर्जी से आए थे ना मर्जी से जा रहे हैं। बीच में हम भ्रम पाल लेते हैं कि हमारी मर्जी से चीजें हो रही हैं या होनी चाहिए। बस वही हमारे दुख का कारण है। खूब अच्छे से समझ लीजिए इस बात को कि समर्पण भाव या शरण भाव आनन्द में ले जाता है। कर्त्ता भाव, मैं भाव, दुख में ले जाता है।

यहां तक कि बुद्ध और महावीर ने जिन्होंने ईश्वर को इन्कार कर दिया। उन्होंने भी शरण भाव को स्वीकार किया- बुद्धम् शरणम् गच्छामि। संघम् शरणम् गच्छामि। धम्मम् शरणम् गच्छामि। शरण भाव को इन्कार नहीं किया। ईश्वर को हटा दिया। बिना ईश्वर के भी समर्पण भाव सिखाया। महावीर ने भी वैसा ही किया ईश्वर को तो इन्कार कर दिया लेकिन शरण भाव की विधि को इन्कार नहीं किया।

'नमो अरिहंताणाम नमो-नमो।

नमो सिद्धाणाम नमो-नमो।।'

पंच नमस्कार, नमन भाव, शरण भाव।

'अरिहंते शरणम् पवज्झामि।

सिद्धे शरणम् पवज्झामि।।'

पांच शरण स्थल कहे हैं, जो अरिहंत हो गए, जो सिद्ध हो गए, जो उपाध्याय हो गए, जो आचार्य हो गए और समस्त साधु जो इस राह पर अभी चल ही रहे हैं, उन सभी को नमन। यह आश्चर्य की बात है कि ईश्वर को छोड़ा जा सकता है किन्तु शरणागति भाव को नहीं छोड़ा जा सकता है। याद रखना यह ईश्वर से ज्यादा पउचवतजंदज है। ईश्वर है कि नहीं, ये विवादास्पद हो सकता है किन्तु इस बात में कोई विवाद नहीं है कि जिस व्यक्ति को शांति और आनन्द की खोज है उसे समर्पण भाव में जीना होगा, यही एकमात्र सूत्र है। अहंकार भाव का परिणाम दुख है, समर्पण भाव का परिणाम आनन्द है।

ओशो ने अपने जीवन काल के अन्तिम दो-तीन वर्षों में जो ध्यान विधि कराई वह मुख्य रूप से 'लेट गो' की विधि थी। समर्पण यानि पूरा छोड़ दो, उन्होंने इस पर बहुत जोर दिया। आश्रम के लिफाफे पर 'लेट गो' इस प्रकार से लिखा था कि अंग्रेजी में 'लेट' और उसके नीचे 'गो' और ऊपर का 'ई' एवं नीचे का 'गो' एक ही कलर के थे। तो 'ईगो' स्पश्ट दिखता था। पूरा-पूरा पढ़ो तो 'लेट गो' और किस चीज को जाने देना है? वो स्पष्ट है, ईगो। इस ईगो के साथ दो प्रकार की भूल हम कर सकते हैं। एक संसार के लोग कर रहे हैं। इसको बढ़ाने की, इसको फैलाने की, इसको प्रतिष्ठित करने की, इसको जमाने की और मजबूत करने की। दूसरी भूल साधक करते हैं। इसे मिटाने की, इसे हटाने की, इसे खत्म करने की।

कल एक मित्र पूछ रहे थे मैं कुछ भी करूं, पीछे से अहंकार भाव आ ही जाता है। कुछ करूं तो आ जाता है कि देखा मैंने किया। नहीं करूं तो लगता है देखा मैंने नहीं किया। कुछ भी करूं तो अंहकार आ ही जाता है। वे परेशान थे कि कैसे इससे छुटकारा हो? साधक की समस्या अहंकार से कैसे छूटे? छोड़ने के इस प्रोसेस में भी अहंकार आ जाएगा कि देखा मैंने अहंकार छोड़ दिया, मुझ से ज्यादा कोई भी विनम्र नहीं, फिर से अहंकार घोषणा कर रहा है कि मैं ही नम्बर एक विनम्र हूं। मेरे जैसा निरअहंकारी कहीं देखा? बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं।

तो दो मुसीबते हैं एक तो ससांरी की मुसीबत वो अहंकार को बहुत मजबूत, बहुत पुष्ट, बहुत बड़ा करना चाहता है और बेचारा परेशान होता है और नहीं कर पाता। और दूसरी मुसीबत साधकों की है कि वह अहंकार को नष्ट करना चाहते हैं, मिटाना और खत्म करना चाहते हैं पर नहीं कर पाते और दुखी होते हैं।

है ना मजेदार बात, यह अजीब चुटकुला है, जो है ही नहीं, ना तो उसको बढ़ाया जा सकता है और ना उसको घटाया जा सकता है। ना वो कभी जन्मा है, ना वो मिट सकेगा। क्योंकि वो एक ख्याल मात्र है। सिर्फ एक मानी हुई धारणा है, तो कैसे उसको बड़ा करोगे और कैसे उसको नष्ट करोगे? कुछ हो तो उसके साथ कुछ किया जा सकता है। यह हम नहीं देख पाते हैं। संसारी भी चूक जाता है, साधक भी चूक जाता है। दोनों परेशान अपने-अपने तरीके से। खूब सावधान और सचेत होकर गौर करना कि ये है कहां?

पहले इसको ठीक से खोज लें कि ये है कहां? क्या है? कैसा है? ये बाद में तय करेंगे कि इसको पुष्ट करना है या नष्ट करना है। पहले अच्छे से खोज तो लें कि है कहां? आप उसे कहीं भी ना पाएंगे। खोजने जाएंगे तो कहीं मिलेगा ही नहीं। फिर भी ढूंढते जाना। ऐसी कोई भी चीज नहीं मिलेगी जिसको आप कह सको कि ये है

अहंकार। चूंकि हमने कभी खोजा नहीं, बस एक ख्याल पकड़ लिया और हम उसको पुष्ट करने में या नष्ट करने में हो व्यस्त हो गए। हमने ठीक से अवलोकन नहीं किया कि ये चीज क्या है? है कहां? जब आप खोजेंगे तब आप कभी भी उसका वजूद नहीं पाएंगे। एक इल्यूजन, एक भ्रम, बस मान लिया।

समझो कोई गणित कर रहा है, जोड़ रहा था दो और तीन, उत्तर उसने लिख दिया दस। दो और तीन दस नहीं होते लेकिन उसके मन में तो हो गए। अब वो आगे दस का और विस्तार कर रहा है, गणित में कुछ-कुछ और करना है। अब वो दस के साथ आगे कर रहा है सबकुछ। अब वह जो कुछ भी करेगा वो गलत ही होगा। क्योंकि ये दस ही गलत है।

ये वास्तव में है ही नहीं, बस ऐसे समझ लेना कि भ्रम हो गया। कुछ गलत फहमी हो गई। उस गलत फहमी के आधार पर हम कुछ करने चले तो कैसे कुछ कर पाएंगे? सफल हो ही नहीं सकते। इसलिए आपने कभी गौर किया जब किसी के साथ कोई गलत फहमी हो जाती है तो उसको दूर करने की कोशिश ही कितनी मुसीबत खड़ी कर देती है। पर गलत फहमी दूर नहीं होती और नई गलतफहमियां खड़ी हो जाती हैं। आप प्रयोग करके देखना, जब किसी के साथ कुछ गलतफहमी हो गई और आपने उसे समझाने की कोशिश की तो आप एक नई झंझट में फंस जाएंगे।

वो पुरानी गलत फहमी तो वहीं की वहीं रहेगी और इस बीच में एक और नई गलतफहमी खड़ी हो जाएगी। मामला और उलझ जाएगा क्योंकि उसमें सच्चाई है ही नहीं तो आप जो भी सफाई दोगे या अपने को सही साबित करने की कोशिश करोगे, उसमें और पक्का होता जाएगा कि जरूर कोई गड़बड़ है। वो गलतफहमी मिटना लगभग असंभव सा हो जाएगा।

ठीक ऐसा ही समझना कि अंहकार एक गलतफहमी है। है नहीं और हमने मान लिया। इसलिए हम असमर्थ हैं कुछ भी करने में। इसके साथ कुछ नहीं किया जा सकता। सिर्फ जाग कर देखा जा सकता है, ढूंढा जा सकता है कि है कहां? तब हम आश्चर्य चकित होंगे कि ये भी खूब मजा रहा कि जो है ही नहीं, हम उसे सवांरने की कोशिश कर रहे थे या मिटाने की कोशिश कर रहे थे। ऐसे में असफल होना स्वभाविक था। सारे दुखों की जड़ ये अहंकार रूपी गलतफहमी है। संसारी की मुसीबत भी यही है और साधकों की मुसीबत भी यही है, एक कॉमन पॉइंट है। उपाय सिर्फ जागरण है। बस जागो, चेतो, गौर से देखो, टटोलो तुम इसे कहीं भी ना पाओगे।

जैसे रात्रि सपने में हमें चित्र दिखाई देते हैं, सुबह जागने पर हम पाते हैं कि वो कहीं भी नहीं है और फिर हम उसकी चिन्ता नहीं करते। उठने के बाद मुश्किल से

चार-छः मिनट तक कुछ हल्की सी स्मृति रहती है, फिर दो-चार मिनट में सब गायब हो जाता है क्योंकि हमें पता चल गया कि उसका कोई महत्व ही नहीं है, जो है ही नहीं उससे क्या लेना-देना? अच्छा सपना देखा कि बुरा सपना देखा, हाउ डज इट मैटर, वो था ही नहीं बस बात खत्म हो गई, जाग गए बस बात खत्म हो गई।

जिसे हम अंहकार कह रहे हैं वह भी एक प्रकार की आत्मिक मूर्छा में देखा गया स्वप्न है। जब तक हम नींद में हैं, स्वप्न ही यर्थाथ मालूम पड़ता है। सारी दुनिया को भूलकर नींद में सोया हुआ आदमी अपने सपने को ही सच मानता है। जब वह जागेगा और वास्तविक दुनिया के सम्पर्क में आएगा तब सपना स्वतः ही खो जाएगा। पता चलेगा कि वो बिल्कुल झूठ था।

करीब-करीब ऐसी ही अवस्था होती है जब हम आत्मिक मूर्छा में, स्वभाव विस्मरण से भरे हुए हैं तो अहंकार का आभास होता है। इतना ज्यादा होता है कि वही सच लगता है, ब्रह्म झूठ हो गया। जब हम जागेंगे, आत्म बोध से भरेंगे तब ब्रह्म सत्य हो जाएगा और ये अहंकार मिथ्या हो जाएगा। ऐसा नहीं है कि इसको छैनी या हथौड़ा लेकर तोड़ना पड़ेगा, नहीं, कुछ नहीं करना पड़ेगा। सुबह उठने के बाद सपने को मिटाने के लिए क्या आपको कुछ करना पड़ता है? कुछ नहीं करना पड़ता। ठीक ऐसे ही, केवल जागरण की जरूरत है।

जिसको हम जागरण समझते हैं वह जागरण नहीं है, इस जागने से तो केवल जीवनचर्या चल जाती है, दिन के काम-धाम हो जाते हैं। इससे और अधिक भी जागा जा सकता है। जागरण का प्रतिशत आपको ख्याल में रखना होगा। जब कोई खतरे की घड़ी आ जाती है तो हम बहुत ज्यादा चौकन्ने हो जाते हैं। नींद में सपने देखते हुए भी थोड़ा जागरण तो है ही वरना सपने भी किसने देखे? जागरण या होश तो है पर रात को नींद में बहुत कम है। सपने में उससे थोड़ा ज्यादा है। सपने से ज्यादा दिन के समय है। दिन के समय भी जब कार्य कर रहे है, कोई रूटीन या मैकेनिकल वर्क है, उसमें ज्यादा होश की जरूरत ही नहीं हैं इसलिए वो बेहोशी में किए जा रहे हैं रोबोट की तरह।

एक आदमी कार ड्राइविंग का एक्सपर्ट है। इसका मतलब यह है कि उसको कार ड्राइविंग करते समय कोई भी होश नहीं रखना पड़ता। एक्सपर्ट का मतलब जिसको होश नहीं रखना पड़ता। जिसको होश रखना पड़े वो अभी नौसीखिया है। जैसे-जैसे हम कुशल होते जाते हैं, वैसे-वैसे हम बेहोश होते चले जाते हैं। तब होश की कोई जरूरत ही नहीं होती, सबकुछ एटोमेटिक फंक्शन की तरह अपने आप चलता रहता है। समय आने पर गियर बदल जाएगा, समय आने पर अपने आप व्हील घूम जाएगा,

समय आने पर हार्न बज जाएगा। इसके लिए होश की जरूरत नहीं है, आप गाना सुन सकते हैं, आप गुनगुना सकते हैं, आप टेलिफोन कर सकते हैं। और पैर अपने आप ब्रेक लगाएगा, ऐक्सीलेटर दबाएगा सब कुछ अपने आप होता जाएगा। जिस-जिस चीज को हम कहते हैं कि कार्य में कुशलता आ गयी, कार्य में दक्षता आ गयी उसका मतलब है कि हम बिल्कुल बेहोशी में कर सकते हैं।

रात को करोड़ों ट्रक ड्राईवर हाईवे पर पूरी दुनिया में घूम रहे होते हैं। ये सब नशे में धुत, होश की कोई जरूरत नहीं है। इतने सालों का अनुभव है ट्रक ड्राईविंग का। शराब पी कर भी चला लेते हैं, यदि ना पीने दो तो हो सकता है कि एक्सीडेंट हो जाए। शराब पी कर बड़े मजे से गाड़ी चल रही है। होश की कोई जरूरत नहीं। जब हम नया-नया काम सीखते हैं तब होश की जरूरत पड़ती है। अर्थात सामान्य से अधिक होश में आना पड़ता है। इसलिए हम विरोध करते हैं कोई भी नया काम सीखने के लिए, प्रतिरोध हमारी पहली कोशिश होगी कि हमें ना करना पड़े। जो पुराना हमारा रंग ढंग चल रहा था बस वही ठीक है। उसमें हम बेहोशी पूर्वक रह सकते हैं। अब नयी चीज में तो होश रखना पड़ेगा, बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी, होश जगाना पड़ेगा।

आप गौर करना कि आप कितनी नई चीजों का विरोध करते हैं। किस कारण? उसमें फिर मेहनत लगेगी, अब आप बदलना नहीं चाहते। मूर्छित ढंग से रोबोट की तरह जो चल रहा है बस वैसे ही चलता रहे। विज्ञान के विकास के साथ अब इतनी तबदीली हो गयी है, नयी-नयी चीजें और तकनीकें आ गईं हैं, पर हम पुरानी या आउट ऑफ डेट तकनीकों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।

बैंक में, पोस्ट आफिस में लोग काम कर रहे हैं। कॅम्प्यूटर को हाथ लगाने को तैयार नहीं हैं। उनको लगता है कि अब दस साल ही नौकरी बची है, पुराने हिसाब-किताब से चलते रहो। ये नयी मुसीबत कौन सीखे? क्योंकि इसमें होशपूर्वक सीखना पड़ेगा। शायद पुराने ढंग में बहुत ज्यादा मेहनत है लेकिन वो उसमें खुश हैं, क्योंकि वो बेहोशी में संभव हैं और यह नया काम जो शायद बहुत ज्यादा सरल है, एक्युरेट है, फिर भी कोई सीखने को तैयार नहीं होगा क्योंकि नया सीखने में होश लाना पड़ेगा और हम होश के विरोधी हैं।

जरा इस बात को टटोलना कि हम कहां-कहां और कैसे-कैसे होश के विरोधी हैं। अपने परिचितों के बीच में हमें ठीक लगता है। क्योंकि उनके बीच हम मूर्छित ढंग से जी सकते हैं। नए लोगों के बीच में हमको होशपूर्वक व्यवहार करना होगा, सजग रहना होगा, इसलिए हम उनसे बचेंगे। लोग कहते हैं कि हम फलां शहर घूमने गए थे, हफ्ता भर घूम कर आए हैं, पर वस्तुतः उस शहर में भी इनकी जान-पहचान

के जो चार लोग थे, ये वहीं तक सीमित रह गए। किसी नए पांचवे व्यक्ति से भी नया नाता नहीं जोड़ पाते हैं।

कौन झंझट ले? नयी चीज नया व्यक्ति, क्या पता कैसा हो? पुराना परिचित कम से कम पुराना तो है। हमें यह आदत तोड़नी चाहिए, तब हमारी साधना हो सकेगी। हम और अधिक जागरूक होने के लिए हमेशा तत्पर रहें। जहां भी नवीनता का मौका मिलता है, वहां हम उत्सुकता दिखाएं ताकि हमारा होश अधिक सध सके। नए काम में हाथ डालें। पुराने काम को नए ढंग से करने का ख्याल करें। तब आप पाएंगे कि होश बढ़ने लगा। एक दिन होश बढ़ते-बढ़ते न केवल बर्हिमुखी ही रहेगा बल्कि अंतरमुखी भी हो जाएगा, स्वयं के प्रति भी हो जाएगा। और उस स्वयं बोध में, आत्म जागरण में फिर अंहकार नहीं पाया जाता। वह भ्रम, वह सपना टूट जाता है। तब सारे दुख समाप्त हो जाते हैं, फिर केवल आनन्द ही आनन्द है।

चरण कमल से प्यार

सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरु।
मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारु।
बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसनि सभे छारु।
हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु।
वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ पुरख अपारु।
हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारु।
जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार।
नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारु।
सावणु तिना सुहागणी जिन रामनामु उरि धारु ।।6।।

उन्ही का सावन शुभ होता हैं, जो जीव-रूपी स्त्री चरण-कमलों में नेह लगाती है, वह आनन्द को प्राप्त होती है। जिन्होंने एक नाम का आधार लिया है, उनका मन, तन सच्चे प्रेम में डूबा है। विषयों के सभी रंग झूठे और नाशवान् दिखाई देते हैं। हरि-नाम शोभनीय एवं अमृत की बूँद है, परन्तु उसे सन्तों के साथ मिलकर पीने वाला हुआ जाता है। अपार सामर्थ्यवान् पुरुष प्रभु की सत्ता के साथ वन-तृणवत् प्रफुल्लित हो रहा है। हरि के मिलाप को बहुत अधिक मन चाहता है, लेकिन शुभ कर्म ही मिलानेवाले हैं। जिन सन्त-रूपी सखियों ने प्रभु को पाया है, मैं उन पर सदा बलिहारी जाता हूँ। नानक कहते हैं - हरि जीवों पर दया करके गुरु-उपदेश से उन्हें शुद्ध करनेवाला है। उन्हीं सुहागिनों का सावन सफल है, जिन्होंने राम के नाम का हार हृदय में धारण किया है ।।6।।

सभी प्यारे मित्रों को नमस्कार।

आध्यात्मिक जगत का कोई भी अनुभव कहना हो तो उसे किसी पार्थिव अनुभव की उपमा से ही कहा जा सकता है। भाषा में अभिव्यक्ति का अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

दो प्रकार के ज्ञान हैं। एक लौकिक ज्ञान, दूसरा आलौकिक ज्ञान। लौकिक ज्ञान अर्थात् जो ज्ञान हमें अपनी इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है, जैसे हम इन आंखो से देखते हैं, इन कानों से सुनते हैं, हाथों से स्पर्श करते हैं। अलौकिक ज्ञान अर्थात् बिना इन्द्रियों के, जिसे हम दिव्य ध्वनि, दिव्य आलोक, दिव्य सुगन्ध, दिव्य स्पर्श, दिव्य आनन्द और दिव्य प्रेम के रूप में जानते हैं। भीतर की इन आलौकिक अनुभूतियों को प्रकट करना हो या किसी को समझाना हो तो उसे अभिव्यक्त करने का एक ही उपाय है कि किसी लौकिक ज्ञान से उसकी तुलना की जाए। संसार की किसी वस्तु की उपमा दी जाए।

एक उदाहरण से समझो, जैसे किसी देश में हीरे जवाहरात न होते हों, ज्यादा से ज्यादा रंगीन कंकड़-पत्थर ही होते हों। उस देश में कोई परदेश से आए और हीरों के बारे में, मणियों के बारे में, माणिक के बारे में, मोतियों के बारे में कुछ बताना चाहे तो वो कैसे बताएगा। उन लोगों को समझाना है जिन्होंने वह चीजें कभी नहीं देखी हैं। वहां जो चीजे उपलब्ध हैं उन्हीं की उपमा से समझाया जा सकता है। कुछ रंगीन कंकड़-पत्थर चुनकर, कुछ चमकीले कंकड़ पत्थर चुनकर वो कहेगा कि कुछ-कुछ ऐसा होता है हीरा। साथ में यह भी कहेगा कि बिल्कुल ऐसा नहीं पर कुछ-कुछ ऐसे होते हैं हीरे। भली-भांति यह जानते हुए कि जो कहा जा रहा है वह बात ठीक नहीं है, भौतिकी और रसायन की दृष्टि से तो हीरे कंकड़ से बिल्कुल अलग हैं। लेकिन उन लोगों को समझाने का यही एक मात्र उपाय हो सकता है।

ठीक ऐसे ही जो हम अपने भीतर अनुभव करते हैं अंतरात्मा में डूब कर उसे जब बाहर की भाषा में व्यक्त करना चाहेंगे तो उन्हीं अनुभवों को उपमाओं के माध्यम से व्यक्त करेंगे। भीतर के प्रेम का, भीतर के स्मरण का, सुमिरन का अनुभव कैसे बताएं? बाहर के जगत के प्रेमी हम जानते हैं। उन्हीं के माध्यम से बता सकते हैं। मित्रों का प्रेम हमने जाना है। माता-पिता और बच्चों का प्रेम हमने जाना है। स्त्री-पुरूष का प्रेम हमने जाना है। इन्हीं उपमाओं से कहना होगा कि वह परम पिता है, वह परम मां के समान है, कि जीवात्मा स्त्री है और परमात्मा पुरूष है। कहना होगा वो परम सखा है, कल्याण मित्र है। यद्यपि ये उपमाएं बिल्कुल सटीक नहीं है। किन्तु कहने का कोई अन्य उपाय संभव ही नहीं है। इस भूमिका के संग इस शबद का अर्थ ग्रहण करेंगे-

'सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरु। ।'

कहते हैं उसी कामिनी का, उसी सुन्दर स्त्री का सावन-माह सुन्दर और शुभ जाता है। 'चरण कमल से प्यारो।' जिसका प्रेम अपने प्यारे के चरण कमलों से लग गया है। जो जीवात्मा परमात्मा के प्रति श्रद्धा से भर गयी, भक्ति भाव से भर गयी है।

'मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारु। '

जिसका तन मन उस एक नाम के रंग में रंग गया है, वह नाम जो सारे जगत का आधार है, बुनियाद है, मूल स्त्रोत है। उसके रंग में जो जीवात्मा रंग गयी, उस प्यारे से जिसका प्रेम लग गया। उसी का यह जीवन रूपी सावन का मौसम सुहाना जाएगा।

'बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसनि सभे छारु।

हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु'।

कहते हैं जो विभिन्न विषयों के रंग में रंगा है उसका जीवन व्यर्थ ही जा रहा है। क्योंकि जगत के सभी विषय जो हमारे लौकिक ज्ञान में आते हैं। जिन्हें हमारी इन्द्रियां पकड़ पाती है, वे सभी राख तुल्य हैं, नाशवान हैं और उनकी क्षणभंगुरता ही दुख देने वाली है। हम सब के भीतर एक अमर प्रेम की चाहत है। फिल्में, गीत, कविता और उपन्यास इस अमर प्रेम की बड़ी ऊंची उड़ाने भरते हैं।

हम सब के भीतर कहीं शाश्वत प्रेम की चाहत है। किन्तु ऐसा कोई प्रेम जगत में तो संभव नहीं फिर भी हमारी यह चाहत मुनासिब है, उचित है। क्योंकि हमारे भीतर अंतर आत्मा में जो प्रेम है वह शाश्वत प्रेम ही है। इसलिए हमारी चाहत उचित ही है। हां यह बात अलग है कि बाहर दुनिया में इसकी पूर्ति नहीं हो सकती। बाहर दुनिया में जो हम पाएंगे वह सब नाशवान है, सब क्षणभंगुर है। थोड़ी देर के लिए रंग लगता है लेकिन सब रंग उड़ जाते हैं, सब रंग फीका पड़ जाता है।

'हरि अम्रित बूंद सुहावणी।'

अमृत रस पान तो उसी से होगा जो स्वयं अमृत हो, शाश्वत और सनातन हो वह तो केवल परमात्मा के संग ही संभव है।

'हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु।'

किसी साधु के सत्संग में वह अमृत रस पीने को मिलता है, वहां हम अपनी चेतना के रंग में रंग जाते हैं और तब दिव्य प्रेम घटित होता। जो वास्तव में अमर प्रेम है उसकी न कहीं शुरूआत है न कहीं समापन है।

'वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ पुरख अपारु।'

कहते हैं उस समर्थ पुरुष जिसकी शक्ति अपरम्पार है, उसके साथ मिलने पर ऐसा होता है। यह पुरुष शब्द भी प्यारा है, 'पुर' यानि नगर, गांव, शहर। हमारा शरीर वह स्थान है जिसके भीतर वह परम पुरूष रहता है। शरीर पुर है। तन इसका बाहरी परकोटा, मन इसका भीतरी हिस्सा। तन, मन रूपी इस पुर के अन्दर जो चैतन्य रूपी पुरूष बैठा है, वह अपरम्पार है। उसके प्रेम में डूबने से मन हरा भरा एवं प्रफुल्लित हो जाता है।

'वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ,

जैसे जंगल में बसंत आ जाए, बहार आ जाए। हर पौधा लहलहा उठे, फूल खिल

जाए, एक-एक पत्ती चमक उठे, नयी-नयी कोपले फूट आएं।

'वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ पुरख अपारु।

हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारु।।'

और हरि से मिलाप के लिए भीतर बहुत गहरी आकांक्षा उठती है। किन्तु यह मिलना बड़ी ही विरली घटना है। बड़े सौभाग्य से यह मिलन होता है। यह केवल हमारे हाथ में नहीं है। हम सब प्रकार की साधना करें, शुभ कर्म करें, उसके बावजूद भी ऐसा कोई नियम नहीं है कि किसी युक्ति द्वारा ऐसा मिलन हो जाएगा। क्योंकि वह परम मुक्ति की घटना किसी नियम में बंधी नहीं हो सकती। अगर मोक्ष भी किसी प्रकार के नियम से बंधा है तो फिर वो मुक्ति कहां रही? वो भी बंधन हो गया एक प्रकार का। साधु सन्यासी अक्सर ऐसा सोचते हैं कि व्रत कर लिए, आसन प्रणायाम कर लिए, कुछ नियम साध लिए, कुछ त्याग कर दिए, दान कर दिया, अब तो परमात्मा को हमसे मिलना ही पड़ेगा।

अगर ऐसा कोई नियम हो या कार्य-कारण सिद्धांत हो, बंनेम ंदक मf्मिबज तनसम की तरह कि इस कारण के पूरा होते ही यह कार्य होना निष्चित ही है। तब यह बंधन हो जाएगा कि पानी को सौ डिग्री तक गर्म किया तो भाप बनना ही पड़ेगा। निश्चित रूप से परम मुक्त अवस्था ऐसे बंधन में नहीं हो सकती। अर्थात वह नियम के पार होगी। तो दुनिया की सामान्य बातों पर नियम लागू होते हैं लेकिन वो जो परम घटनाएं हैं, जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, वह सब नियम के बाहर है। प्रेम नियम के बाहर है, ध्यान नियम के बाहर है, भक्ति नियम के बाहर है, गुरु शिष्य संबंध नियम के बाहर है, समाधि, सम्बोधि नियम के बाहर है। महत्वपूर्ण का मतलब ही यह है कि वह नियम के बाहर है। इसी को कहने का दूसरा ढंग है कि सौभाग्यवश ऐसा होता है। इसी को कहने का दूसरा ढंग है कि गुरु कृपा से होता है, कि प्रभु कृपा से होता है।

'जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार।'

कहते हैं गुरु अर्जुन देव जी- कि जिन्होंने उस परम प्रभु को पा लिया, जिन जीवात्माओं ने परमात्मा को गले लगा लिया उन सखियों के मैं बलिहारी जाता हूं।

'हंउ तिन कै सद बलिहार।'

वे सभी जीवात्माएं धन्य-धन्य हो गयी हैं।

'नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारु।'

गुरू नानक देव जी कहते हैं, अर्जुन देव जी के माध्यम से, कि वह परमात्मा स्वयं ही जीवात्माओं पर करूणा करके गुरु के माध्यम से उपदेश देकर उन्हें संवारता है। 'सबद सवांरन हार।' गुरु के शब्दों के माध्यम से वह संवारता है, शुद्ध करता है, ऊर्ध्वगामी करता है।

'सावणु तिना सुहागणी जिन रामनामु उरि धारु ।।'

जिन्होंने अपने उर में राम नाम धारण किया, अपने हृदय में प्रेम सुमिरन जगाया, वे ही सुहागिन स्त्रियां इस सावन रूपी जीवन को आनन्द पूर्वक जी पाती हैं। हमारे समस्त दुखों का एक ही कारण है, वो है परमात्मा से वियोग। हमारी समस्त शांति, आनन्द, तृप्ति और सन्तोष का एक ही कारण है, वो है अपने भीतर विराजमान उस परम पुरूष से योग। उस परम पुरूश के साथ जुड़ गए तो सब सावन हो गया, बंसत हो गया, बहार आ गई और उसके संग नहीं जुड़े तो सब पतझड़ ही पतझड़ है। फिर तो जेठ की तपती दोपहरी है, प्यासी भूमि में दरारें पड़ जाती है। अधिकतम लोगों का जीवन वैसा ही है, दरारें पड़ गयी हैं। बुरी तरह से टूट-फूट गए हैं। एक ही उपाय है, अपने भीतर मुड़ो, इस तन मन रूपी पुर के भीतर विराजमान उस चैतन्य रूपी पुरूष के प्रति प्रेम से भरो। उसके स्मरण में जीना शुरू करो।

हमें दुनिया भर की बातें, लोग और परिस्थितियां आदि सब याद आते हैं, पर स्वंय अपने होने की याद नहीं आती, यही हमारी मूल व्याधि है। इसका मुख्य कारण यह है, जैसे छोटा बच्चा जन्म लेता है उसकी इन्द्रियां बाहर खुलती हैं। वो बाहर ही देखता, बाहर की सुनता है। भूख लगी तो भोजन बाहर है, प्यास लगी तो पानी बाहर है, खेल-खिलौने बाहर हैं, माता पिता बाहर हैं, दोस्त बाहर हैं, खेल-कूद बाहर है, पढ़ाई-लिखाई बाहर है, स्कूल कॉलेज बाहर है, घर गृहस्थी बाहर है, नौकरी बाहर है, दुकान बाहर है, यह सब बाहर की घटनाएं हैं।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, और ज्यादा बहिर्मुखी या एक्स्ट्रोवर्ट होता चला जाता है। फिर क्रमशः भूल ही जाता है कि भीतर जैसी भी कोई चीज है। बाहर सारी जरूरतें पूरी होती हैं और बाहर चीजों पर पकड़ बनाए रखने के लिए संघर्ष जरूरी है। कुछ करना होगा वरना चीजें हाथ से खिसक रही हैं। बाहर चीजें स्थिर नहीं है। एक बार समय बीत गया तो फिर वो चीजें हासिल न हो सकेंगी। बाहर आपाधापी है, धन कमाना है तो अभी कमाओ, घर गृहस्थी बसानी है तो अभी बसाओ, पढाई लिखाई करनी है तो अभी करो, चुनाव लड़ना है अभी लड़ो। समय बहुत कम है और ढेर सारी चीजें पानी हैं। न जाने क्या-क्या उपलब्ध करना है?

हजारों कामनाएं हैं और छोटी सी जिन्दगी है, सब कुछ शीघ्रता से पा लेना है और इसलिए हम हमेशा एक इमरजेन्सी सिच्युएशन में ही रहते हैं। वह हमें पूर्णतः बहिर्मुखी कर देती है। भीतर जाने का कोई अवसर ही नहीं, कोई मौका ही नहीं बचता। धीरे-धीरे ये सूझ-बूझ ही खत्म हो जाती है कि भीतर जैसी कोई चीज है। इसलिए अपने भीतर के चैतन्य से प्रेम की बात ही कभी नहीं सूझती।

हमारे लिए प्रेम का तात्पर्य है- बाहर किसी व्यक्ति से, किसी वस्तु से, किसी परिस्थिति से लगाव। हम अपने आप को उस परिभाषा के बाहर ही कर लेते हैं। हमें ख्याल ही नहीं है कि आत्म-प्रेम जैसी भी कोई चीज हो सकती है? स्वयं से लगाव भी

कुछ हो सकता है ये हमें ख्याल ही नहीं आता है। चूंकि समाज और शिक्षा व्यवस्था हमें आदर्शों से प्रेम करना सिखाती है। इसलिए क्रमशः हर बच्चा स्वयं के प्रति घृणा से भरता जाता है। उसे हमेशा कहा जाता है कि तुम ऐसे बनो, तुम वैसे बनो, तुम ये करके दिखाओ आदि आदि। यह होने चाहिए तुम्हारे आदर्श, तुम्हारे आइडियल, तुम्हारे जीवन के मॉडल फिगर, तुम्हें इनके जैसा बनना है। इसका अर्थ हुआ कि तुम जैसे हो वैसे ठीक नहीं हो, किसी और जैसे हो जाओ।

पुराने जमाने में लोग कहते थे बुद्ध जैसे बनो, विवेकानन्द जैसे बनो, महात्मा गांधी जैसे बनो, नए जमाने में कोई फिल्म अभिनेता का नाम लेगा, कोई खिलाड़ी का नाम लेगा, फिर किसी अभिनेत्री का, मॉडल का नाम लेगा। दूसरे जैसा बनने में ही सार्थकता है। तुम जैसे हो वैसे तो बिल्कुल व्यर्थ हो। तो धीरे-धीरे ये जो आदर्शवाद की धारणा है यह हमें स्वयं के प्रति घृणा से भर देती है कि मैं जैसा हूं वैसा ठीक नहीं हूं। तो आत्मप्रेम की बात गायब ही हो जाती है। किसी और जैसे होना, यह नामुमकिन और असंभव की दौड़ है। कभी पूरी होने वाली नहीं है।

पांच हजार साल से ऊपर हो गए। राम जैसे बनने की कोशिश कितने करोड़ो लोगों ने की। क्या कोई दोबारा राम हुआ? इन दो हजार सालों में कितने लोगों ने ईसा मसीह जैसे होने की कोशिश की, दोबारा तो फिर वैसा कुछ न हुआ। क्या यह पर्याप्त प्रमाण नहीं कि हम किसी और जैसे नहीं हो सकते। हम केवल स्वयं जैसे ही हो सकते हैं। लेकिन हमें स्वय से लगाव ही नहीं, हम अपने भीतर झांकते ही नहीं कि हम कौन हैं? क्या हैं? क्या हमारा स्वधर्म है? हम क्या होने को आए हैं? ऐसे में हमारा पूरा जीवन व्यर्थ ही जाएगा। यहां इस शब्द में परमात्मा को प्रेमी और जीवात्माओं को प्रेमिका के रूप में वर्णित करते हुए वास्तव में हमें अपनी भीतरी चेतना के प्रति चेताया जा रहा है। इसलिए मैंने कहा कि उपमाएं पूरी-पूरी सटीक नहीं होती। कुछ ना कुछ भूल-चूक रह जाती है।

जैसे कहा जीवात्मा, परमात्मा कहीं ऐसा ख्याल ना आ जाए कि दो अलग अलग घटनाएं हैं। हमारे ही भीतर हमारा स्वयं का होना, हमारा वह परम रूप, परम शुद्ध रूप ही परमात्मा है। और जो हम बहिर्मुखी हो गए हैं, हमारा मन इन्द्रियों के माध्यम से सब दिशाओं में दौड़ रहा है, यह जीवात्मा है। वास्तव में यह भी परमात्मा ही है पर बाहर की ओर उन्मुख हो गया है। काश ये भीतर की ओर पलट जाए, अंतसमुखी हो जाए तो जीवात्मा का परमात्मा से मिलन हो गया। इसी बात को इस शब्द में काव्यात्मक ढंग से कहा गया है। कविता को कविता की भांति लेना। उपमाओं को बहुत जोर से ठोस रूप में मत पकड़ लेना वरना भूल-चूक हो जाएगी।

कहा भयो जो दौऊ लोचन मूंद कै।
बैठि रहिओ बक धियान लगाइओ।।
नाहत फिरओ लीए सात समुद्रनि।
लोक गयो परलोक गवाइओ।
वास किओ बिखिआन सो बैठ कै।
ऐसे ही ऐसे सु बैस बिताइओ।।
साचु कहो सुन लेहो सभै।
जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ।।

बगुले की तरह आँख बंद कर बैठने से कहीं ध्यान होता है?सातों समुद्र में नहाने से कहीं लोक-परलोक संवरता है?ऊँचे आसन पर बैठकर व्याख्यान देने से समय भले नष्ट हो, जीवन कहाँ संवरता है? (गुरु गोविन्द सिंह जी कहते हैं) मैं सत्य वचन कहता हूँ कि जिन्होंने प्रेम किया, केवल उन्होंने ही प्रभु को पाया है।

प्यारे मित्रों, नमस्कार।

जो जीवन को प्रेम करते हैं उन्हीं ने परमात्मा को पाया। न तो ऊंचे-ऊंचे मंचों पर बैठकर प्रवचन देने से परमात्मा मिलता है, न शास्त्रों के अध्ययन से, न गंगा स्नान करने से, न तीर्थ यात्रा करने से। उसे पाने का एक मात्र उपाय है कि संपूर्ण जीवन के प्रति प्रेमभाव विकसित किया जाए। इसके अलावा न कोई उपाय रहा, न है और न कभी होगा। बगुलों की तरह आंख बंद करके ध्यान लगाने से भी कुछ नहीं होगा। तथाकथित मंदिर-मस्जिद में हो रही भक्ति से भी कुछ नहीं होगा। वास्तविक प्रेम, जीवन से गहन लगाव, जीवन के प्रति सम्मान भाव का जो महत्वपूर्ण तत्व है वह हमारे जीवन से बिल्कुल विदा हो चुका है, एक षडयंत्र के तहत विदा कर दिया गया है।

हमारे पूरे समाज की व्यवस्था, शिक्षा प्रणाली, सभ्यता, संस्कार डालने की पद्धति सब मिल जुलकर हमारे भीतर के प्रेमभाव को नष्ट करने के लिए जिम्मेवार हैं। भांति भांति के ढंग से, बचपन से ही जीवन के प्रति घृणा सिखाई गई है। नाम अलग-अलग हैं पर परिणाम एक ही है- जीवन के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण। हमेशा यही कहा गया है कि जीवन जीने योग्य नहीं है। अगर हम जिंदा हैं तो जरूर किन्हीं पिछले कर्मों के दुष्परिणाम हैं। **ओशो फ्रेगरेंस** के '**आनंदमय जीवन** ' प्रोग्राम में लोग आते हैं, पहले सत्र में उनसे जब पूछा जाता है कि आपके जीवन का लक्ष्य क्या है ? तो करीब-करीब पच्चीस प्रतिशत लोग कहते हैं कि आवागमन से मुक्त होना। सुन के सदमा सा लगता है, उनका लक्ष्य है कि जीवन दुबारा न मिले, यह उनका लक्ष्य है। अर्थात बहुत गहरे में उनको जीने में कोई मजा नहीं आ रहा है।

इस जीवन से उनको कोई लगाव नहीं है और उनकी पूरी कोशिश यह है कि अब दोबारा जन्म न हो, इतनी नफरत है जिंदगी के प्रति। और यही लोग अपने आपको धार्मिक समझते हैं और कहतें हैं कि यह जीवन परमात्मा के द्वारा संचालित है, यह परमात्मा के प्रेमी हैं, यह जीवन को नष्ट करने पर उतारू हैं। दुबारा पैदा ही नहीं होना चाहते। यह कायर हैं, अगर यह हिम्मतवर होते तो सुसाइड कर लेते। इस पर थोड़ा विचार करना? यह कैसी विचित्र स्थिति है हमारी, हम जीवित हैं और जीवन के प्रति हमारा लगाव नहीं है, कोई सम्मान नहीं है। इसको आप कई भांति से देखना। जिंदा व्यक्ति को सम्मान देना बहुत मुश्किल है, मुर्दे को हम फिर भी सम्मान दे सकते हैं।

फ्रांस में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ वाल्तेयर, बड़ा प्रसिद्ध व्यक्ति था, उसका एक दुश्मन था जो हमेशा उसके विरोध में उसकी आलोचना करता रहता था। अखबारों में आए दिन उसकी टिप्पणियां छपतीं थीं। वाल्तेयर जो भी कहता उसकी बात को वह आदमी जरूर काट देता, जिंदगी भर वह उसका दुश्मन बना रहा। फिर एक दिन वाल्तेयर के पास खबर आई कि आपका वह पुराना शत्रु समाप्त हो गया, उसकी मृत्यु हो गई। पत्रकारों ने पूछा कि आप क्या कहना चाहते हैं उसके बारे में? वाल्तेयर ने कहा कि बहुत कंडीशनल स्टेटमेंट है मेरा, क्योंकि मुझे पक्का नहीं पता है इसलिए आप नोट कर लीजिए, वह निश्चित ही बहुत तार्किक, विद्वान, ज्ञानी व्यक्ति था बशर्ते कि मर गया हो, यह कंडीशन है। अभी मुझे पक्का नहीं पता है कि मरा है कि नहीं मरा है, मरा है तो फिर निश्चित ही उसकी तारीफ मैं कर सकता हूं।

जीवित व्यक्ति के प्रति हमारे मन में सम्मान का भाव नहीं आता, मजारों पर भीड़ लगी रहती है। किसी जिंदा आदमी को बैठा दो तो उसके पास भीड़ नहीं आएगी। अपने भीतर गौर से टटोलना कि क्या यह जीवन के प्रति प्रेम है? अभी कुछ दिनों पहले मैं एक फिजिसिस्ट डॉक्टर कैपरा की किताब पढ़ रहा था- 'पीपुल विद अनकामन विजडम', विचित्र किस्म के प्रतिभाशाली लोगों से मुलाकात उन्होंने की और उनका वर्णन उन्होंने किया है। उसमें उन्होंने यूरोप के कैंसर स्पेशलिस्ट के बारे में वर्णन किया है जिन्होंने अपनी काफी खोजबीन के बाद यह पता लगाया कि कैंसर किसी भांति मर जाने की तरकीब है।

अगर हमारा सबकांशस माइंड किसी तरह से स्वीकार कर लेता है कि हमें नहीं जीना तो फिर कैंसर हो जाता है ताकि हम मर जाएं। यह मरने का एक उपाय है। इतनी हिम्मत नहीं है कि सीधे फांसी पर लटक जाएं, कि गोली मार लें तो शरीर ने एक उपाय कर लिया कि ठीक है कैंसर पैदा कर लेते हैं और मर जाओ। इन सज्जन को ख्याल कैसे आया कि लोग मरने में उत्सुक हैं, जीने में नहीं? इन्होंने एक विचित्र बात नोट की कि जो लोग पागल हो जाते हैं उनको कैंसर नहीं होता। बड़ा सोच-विचार किया कि यह क्या लॉजिक है? जो पागल हो गए उनको कैंसर नहीं होता।

इस प्रकार की बीमारियां उन्हीं को होती हैं जो पागल नहीं होते, मानसिक रूप से ठीक रहते हैं, शारीरिक रूप से मृत्यु की तरफ बढ़ रहे हैं। और एक तीसरा फैक्टर और उसने देखा कि यदि कोई व्यक्ति एंटीसोशल हो जाता है, अनसोशल हो

जाता है, हिंसक हो जाए, उपद्रवी हो जाए, आतंकवादी हो जाए, शराबी हो जाए, समाज की जो-जो नैतिक धारणाएं हैं उनके खिलाफ अनसोशल एलीमेंट हो जाए, असामाजिक तत्व हो जाए तो यह न तो पागल हो सकता और न ही इसको कैंसर हो सकता। यह पढ़कर मैं भी चौंका। उसने तो हजारों-हजारों मरीजों का डाटा प्रस्तुत किया है।

मुझे ओशो की बात याद आई, ओशो ने किसी प्रवचन में कहा है कि जब-जब बड़े पैमाने पर युद्ध होता है, जब प्रथम विश्वयुद्ध हुआ, द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ उस दौरान कई सालों तक अपराध की दर बहुत कम हो गई और जो एंटीसोशल काम चल रहा था उसकी जरूरत नहीं बची। अब व्यक्तिगत रूप से अपराध करने की जरूरत नहीं, क्योंकि सामूहिक पैमाने पर इतना अपराध हो रहा है। और उस बीच में पागलखानों की एंट्री भी बहुत कम है, जब पूरी दुनिया पगला गई अब अलग से पागल होकर क्या करना है? ऐसा लगता है कि लोग सोचविचार के पश्चात् पागल होते हैं? सोच-विचार के पश्चात् अपराधी होते हैं?

चार प्रकार के एस्केप हैं, पलायन हैं जीवन से, इसको समझना, यह हमारे जीवन की मानसिकता के हिस्से हैं। जब तक हम इसके प्रति जागरूक नहीं होंगे तब तक इससे मुक्ति नहीं मिलेगी। मूल बात एक है कि जीवन के प्रति घृणा है, हम जीना नहीं चाहते। इसको सीधा-सीधा अगर मैं ऐसा कहूं तो आपको अच्छा नहीं लग रहा होगा, अगर मैं शब्द बदल दूं तो आपको तुरंत बात समझ में आ जाएगी। जीवन की जगह रिस्पांसिबिलिटी या जिम्मेवारी शब्द रख लीजिए, उत्तरदायित्व कह लीजिए और आपको तुरंत समझ में आ जाएगा। हम जिम्मेदारी से भागना चाहते हैं और फायनल एस्केप तो मृत्यु में ही है, मृत्यु के बाद सारी जिम्मेवारी समाप्त हो जाएगी। हमने पहले चर्चा की थी कि हमारे चार डायमेंशन हैं- फिजिकल, मेंटल, इमोशनल और स्प्रिचुअल। इमोशनल को ही सोशल भी कहा जाता है जहां हम दूसरों से संबंधित होते हैं। तो यह चार हमारे एस्केप के उपाय हैं।

फिजिकल या शरीर के तल पर कैंसर या एड्स जैसी खतरनाक प्राणलेवा बीमारियां हो सकती हैं जिनका कोई इलाज संभव नहीं है। क्योंकि हम चाहते ही नहीं कि इलाज हो, हम मरने के लिए ही आए हैं, हम जिम्मेवारियों से बचना चाहते हैं। उत्तरदायित्व से बचने का दूसरा तरीका है कि पागल हो जाओ, मेंटल एस्केप अर्थात् मानसिक तल पर। फिजिकल एस्केप है कैंसर, मेंटल एस्केप है कि विक्षिप्त हो जाओ। अब दुनिया के लोग आपसे कुछ उम्मीद नहीं करेंगे कि आप कुछ काम

करो, कि आजीविका कमाओ, कि घर बनाओ, अब कोई कुछ नहीं कहेगा।

अब किसी को आपसे कोई अपेक्षा नहीं रहेगी, आप भाग खड़े हुए। तीसरा उपाय है एंटीसोशल हो जाओ। एक प्रकार का अनैतिक, अराजक जीवन कर लो, अपराधी हो जाओ, खूब शराबी हो जाओ तब भी लोगों को आपसे कुछ उम्मीद नहीं रह जाएगी। तो लोग ही आपकी सेवा करेंगे, लोग ही आपके लिए कुछ करने की कोशिश करेंगे, आप अपनी दारू की बोतल को जेब में लेकर घूमते रहो, कोई आपसे कोई उम्मीद नहीं करेगा, बल्कि लोग आपसे बचने की कोशिश करेंगे। अपराधी हो जाओ, यह तीसरा एस्केप है।

चौथा एस्केप है तथाकथित धर्म, जिनकी चर्चा इस शबद में आई है कि बगुला की तरह आंख मूंदने से या पाखण्ड करने से परमात्मा नहीं मिलेगा। मंदिर-मस्जिद, तीर्थयात्रा करने से भी नहीं मिलेगा, गंगा स्नान करने से और सात समुंदर पार जाने से भी नहीं मिलेगा और न ही ऊंचे आसनों पर बैठकर प्रवचन देने से मिलेगा। यह चौथा उपाय धर्म का है, धर्म के नाम पर त्याग और पलायन सिखाया गया है, सारी जिम्मेवारियों से भाग खड़े हो जाओ फिर लोगों को आपसे कुछ अपेक्षा नहीं रहेगी। अब वह मान लेते हैं कि ठीक है, यह आदमी तो सन्यासी हो गया, त्यागी हो गया, जंगल चला गया।

अब उसे दुकान नहीं चलानी पड़ती, अब उसको पत्नी, बच्चों का, माता-पिता का सहारा नहीं बनना पड़ता। समाज में जो प्रतियोगिता की दुनिया थी अब उस दुनिया में इसकी कोई भूमिका नहीं है, इन्हीं सारी मुश्किलों से तो वह बचना चाह रहा था। वह प्रेम से बचना चाह रहा था, संबंधों से बचना चाह रहा था, अपनी बुद्धि से बचना चाह रहा था और भाग खड़ा हुआ। पश्चिम में जहां सन्यासी होने की सुविधा नहीं है वहां पर लोग ज्यादा पागल होते हैं, वहां कैंसर ज्यादा होता है। प्रथम विश्वयुद्ध पश्चिमी देशों की कृपा से हुआ, द्वितीय विश्वयुद्ध भी उन्हीं की कृपा से हुआ और तीसरा विश्वयुद्ध जो कि अंतिम होगा जब कभी होगा तो वह भी उन्हीं की कृपा से होगा। वह पूरी दुनिया को समाप्त कर देंगे।

जो जीवन के प्रति बहुत घृणा से भर गए वह भाग खड़े हुए। पहाड़ों में और गुफाओं में जाकर रहने लगे, जस्ट वेटिंग फॉर डेथ। जहां घना जीवन था वहां से भाग खड़े हुए। यह हमारी चार प्रकार की पलायनवादी वृत्तियां हैं- फिजिकल, मेंटल, सोशल और स्प्रिचुअल। यह रियल स्प्रिचुअलिटी या सच्ची आध्यात्मिकता नहीं है और वही बात इस शबद में कही जा रही है कि जिन प्रेम

किया तिन ही प्रभु पायो। वास्तविक आध्यात्म तो जीवन के प्रति प्रेम से उत्पन्न होता है, पलायन से नहीं। जीवन विविध-विविध रूपों में चारों तरफ व्याप्त है, इसको ठीक से जियो, जीना सीखो।

अपने स्वयं के जीवन के प्रति सम्मान, अपने तन-मन, हृदय के प्रति सम्मान करना सीखो। स्वभावतः अपना सम्मान करोगे तो दूसरों के प्रति भी वही सम्मान होगा, जीवन मात्र के प्रति ही सम्मान होगा। मनुष्य ही क्यों? पशुओं से और वृक्षों से भी लगाव होगा। जब यह लगाव बढ़ता जाता है तो फिर कहीं सीमा नहीं रह जाती है। जब हमें पता लग जाता है कि आनंद इसी फैलाव में है, जुड़ने में है, तो हमारा सम्मान का भाव, श्रद्धाभाव और अहोभाव सीमित एवं असीमित दोनों के प्रति हो जाता है क्योंकि एक बात हमारे समझ में आ गई कि हमारा आनंद इस फैलाव में है। कौन क्या करता है? क्या नहीं करता है? इससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है।

हमारा आनंद इसमें है कि हम खूब-खूब संवेदनशील होकर, प्रेमपूर्वक, सम्मानपूर्वक जिएं। फिर पत्थर से भी लगाव हो जाता है, नदी से भी, पहाड़ से भी, धरती भी अच्छी लगती है और आकाश भी अच्छा लगता है, बादल भी अच्छा लगता है, सूरज भी अच्छा लगता है, सब अच्छा लगता है। अपने जीवन के कर्म और उत्तरदायित्व भी अच्छे लगते हैं। एक लगाव पैदा होता है। ओशो ने हमेशा ड्यूटी शब्द का मजाक उड़ाया है, वे कहते हैं कि 'कर्त्तव्य' शब्द ठीक नहीं है। क्योंकि उसमें तो हम मान के ही बैठे हैं कि हम तो करना नहीं चाहते थे लेकिन क्या करूं, करना पड़ रहा है, कर्तव्य है। नहीं, कर्तव्य से नहीं, प्रेम से करो। करना पड़ नहीं रहा है, हम करना चाहते हैं।

अपना दृश्टिकोण बदलें। हम जो भी कर रहे हैं उसमें हमारा गहन लगाव हो, हम दिल से उस काम को करना चाहें, हम जीवन में आगे आएं, कहीं से भी भागें नहीं। अगर समस्याएं हैं तो ठीक है, उससे निपटने का कुछ उपाय करेंगे, खोजेंगे, अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करेंगे, जो भी करने योग्य होगा वह हम करेंगे। जब मैं कह रहा हूं कि जीवन के प्रति प्रेम अर्थात् इस के अंतर्गत कर्म के प्रति प्रेम भी आ जाता है। जितना प्रेमी व्यक्ति होगा उसके जीवन में एक सम्यक कर्म का उदय होगा, वह हर काम को बहुत लगन से करेगा और कहां क्या किया जा सकता है, उसके उपाय खोजेगा, अपनी सीमा से बाहर जाकर खोजेगा।

हम कर्म ऐसे करते हैं जैसे मजबूरी में सिर पर बोझ आ गया हो। क्या करें? जीवन जीना है तो ये जहर पीना ही पड़ेगा, आए हैं दुनिया में तो जीना ही पड़ेगा।

ऐसी हालत में हम जीते हैं। इस आदत को छोड़ें, अधार्मिक आदत है। यद्यपि अधिकांश धार्मिक तथाकथित लोग इसी श्रेणी में आते हैं। जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ। जो परमात्मा को पाना चाहते हैं उन्हें परमात्मा के द्वारा रचित इस संपूर्ण जीवन के प्रति अपने बाहें फैलानी होंगी, सबको गले लगाना होगा और ठीक से जीना शुरू करना होगा। खोज करें कि जीवन कहां सघन है, वहां पहुंचें। जैसे सन्यासी कर्म के क्षेत्र से भागता रहा है, जिम्मेदारी के क्षेत्र से पलायन करता रहा है, इसका ठीक उल्टा करें। जो हमारी जिम्मेदारी नहीं है, उसको भी जिएं, उसको भी पूरा करने का प्रयास करें।

अपने जीवन को हम पूरा जिएं। सत्तर-अस्सी साल का जो मौका मिला है, उसे भरपूर जिएं। एक आदमी की जिंदगी में हम दो-तीन आदमियों की जिंदगी जी सकते हैं, उसके लिए गहन प्रेम चाहिए। कर्म के नए-नए आयाम खोजो, सृजन के भिन्न-भिन्न आयाम खोजो, बी क्रिएटिव... यह ओशो के खास शब्द हैं 'बी क्रिएटिव'। यह जीवन के प्रति प्रेम की दृष्टि दिखाता है। कुछ सृजन करो, कुछ रचो, भागने से क्या होगा, अगर भागना ही है तो फिर खुद को गोली मार लो, ऐसे धीरे-धीरे मरने से क्या मतलब है?

अभी मैंने जिस डॉक्टर के बारे में चर्चा की, उन्होंने हजारों मरीजों के साथ काम किया है, वे बताते हैं कि एक विचित्र बात वे अपने मरीजों से कहते हैं। वे बीस-पच्चीस लोगों की मीटिंग बुलाते हैं और एक ऐसी बात कह देते हैं जो सबके सबकांसस को छू जाती है, वैसे तार्किक रूप से कोई सुनेगा तो चौंकेगा कि क्या कह रहे हो लेकिन यह बात उनके अवचेतन मन तक पहुंच जाती है। उनके हृदय को छू जाती है। मैं उनसे कहता हूं कि आप बिल्कुल चिंता न करें, मैं आपकी बीमारी छीनने वाला नहीं हूं। कैंसर के मरीजों से वह यह कहता है कि आप बिल्कुल चिंता नहीं करिएगा।

यह डॉक्टर अपनी तरफ से कोई इलाज नहीं करता, कहता है कि तुम्हारा जो इलाज चल रहा है ठीक है, उससे मुझे मतलब नहीं है। मैं कुछ दूसरे तथ्य आपके लिए कहने वाला हूं, इंट्रोडक्शन में कह देता है कि आप बिल्कुल निश्चिंत रहिए आपकी बीमारी मैं नहीं छीनूंगा। और कहता है कि लोग ऐसे रिलैक्स हो जाते हैं कि उनको कैंसर है ही नहीं। वे लोग डॉक्टर को दुश्मन समझते हैं, हम मरने की कोशिश करते हैं और यह हमको बचाने की कोशिश कर रहा है। पश्चिम के देशों में जहां धर्म की सुविधा नहीं है, सन्यास और त्याग नहीं है, वहां

आधी दुनिया करीब-करीब कम्युनिस्ट हो चुकी है, धर्म लगभग विदा ही हो गया और जहां कहीं रह गया वहां भी नाम मात्र को ही है, बस औपचारिक तल पर ही है। उसका कुछ विशेष अर्थ नहीं है।

वहां पर एस्केप के तीन ही उपाय हैं। फिजिकल, मेंटल और सोशल, चौथा वाला गायब हो गया है। ओशो ने यह भी जिक्र किया है कि पूरब में जहां पर सन्यास की सुविधा है वहां पर पागलपन इतना नहीं है। एक विचित्र बात है, मतलब यह दोनों चीजें आपस में इंटरचेंजेबल हैं। एक सी मनोवृत्ति है जो हमें त्याग की तरफ ले जाती है अथवा पागलपन की तरफ ले जाती है अथवा कैंसर की तरफ ले जाती है अथवा एंटीसोशल होने के लिए प्रेरित करती है। जहां से भी हमें रास्ता मिलेगा हम वहां से ही भाग खड़े होंगे, कुल मिलाकर हमें भाग जाना है। जीवन नहीं जीना है और जीवन का पर्यायवाची आप रिस्पांसबिलिटी से करिएगा तो एकदम क्लियर हो जाएगा कि हम किस-किस भांति रिस्पांसिबिलिटी से बचना चाहते हैं।

हमारी जो बड़ी से बड़ी सुंदर कल्पना है वह है स्वर्ग में कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हैं, वहां बस कामना करो और तुरंत पूरी हो गई। कर्म को हम बाईपास करना चाहते हैं, कुछ करने की जरूरत ही नहीं, कोई जिम्मेवारी नहीं, बस सोचो और वैसा ही हो जाएगा। क्या गजब की कल्पना है। यह उन्हीं त्यागियों ने की है जो जिंदगी से भाग रहे थे, उन्होंने कल्पना की कि ऐसी कोई जगह हो तो मजा आ जाए। जहां कुछ करना न पड़े। ऐसे लोगों से ज्यादा बड़ा अधार्मिक कोई नहीं है और यह उसी श्रेणी के हैं जैसे किसी को शारीरिक तल पर कैंसर है, कोई मानसिक तल पर पागल है या एंटीसोशल हो गया है यह उसी श्रेणी के लोग हैं।

जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ। अपने स्वयं के तन-मन-हृदय से, अपने स्वयं के कर्म, विचार एवं भावनाओं से प्रेम करना सीखो। जब आप स्वयं के प्रति प्रेमपूर्ण हो जाते हो तब आप अन्य के प्रति भी प्रेमपूर्ण हो जाते हो। निश्चित ही जो हमारे निकट हैं घर-परिवार के लोग उन पर खूब-खूब प्रेम बरसेगा। एक व्यक्ति कम से कम पंद्रह-बीस लोगों से गहराई से जुड़ा हुआ है, उसके परिचित, उसके मित्रगण, उसके रिश्तेदार, फिर इसके बाहर और बड़ा सर्किल है पूरी मनुष्य जाति, अपरिचित लोग भी हैं। सभी के प्रति हमारा हृदय कोमल और प्रेमल होता जाएगा। हमारा आनंद बढ़ने लगेगा और यही जीवन का आनंद है, यह संबंध जीवन के ही विस्तार हैं।

हम जगत से जुड़े हुए हैं तब तक ही जीवित हैं, यह सांस आ-जा रही है पेड़-पौधों से हमारा नाता जुड़ा है। आज सुबह सूरज उगा था, माना कि वह दस करोड़ मील दूर है लेकिन उसके उदय से हमारे भीतर भी जीवन उदय हुआ है। अगर आज सूरज नहीं उगा होता तो हम सब ठंडे पड़ गए होते। हमारा जो जीवन है यह परस्पर जोड़ का नाम है। हम मनुष्यों से भी जुड़े हैं, वृक्षों से भी जुड़े हैं, चांद-सूरज-तारों से जुड़े हैं, पानी से, हवा से, आकाश से जुड़े हैं, जितने हम जुड़े हैं उतने हम जीवंत हैं। और जैसे-जैसे आप अपने संबंधों को काटते चलेंगे, वैसे-वैसे सिकुड़ते जाएंगे और मृतवत होते चले जाएंगे। बस, कर्मों से अपने को तोड़ लो, शरीर की उपेक्षा कर दो, बुद्धि की परवाह न करो, भावनाओं के खिलाफ चले जाओ, सबसे टूट जाओ, बस नाम मात्र को जिंदा सा रह जाओ, इसको हम कहते हैं धर्म।

धार्मिक व्यक्ति सघन जीवन को और भी सघनतापूर्वक जिएगा, एक संसारी से भी ज्यादा जिएगा, बहुत प्रेम और सम्मान से भरा हुआ जिएगा। कभी यह बात नहीं कहेगा कि मुझे आवागमन से मुक्त होना है, क्या फिजूल की बकवास है। कहने वाले को शर्म आनी चाहिए, यह आत्मघाती प्रवृत्ति है। ओशो की एक किताब का नाम मुझे बहुत प्यारा लगता है, ''जीवन ही है प्रभु और न खोजना कहीं'' संक्षेप में ठीक वही बात आ गई जो इस शबद में है। ओशो की एक अन्य किताब का शीर्षक है ''प्रेम है द्वार प्रभु का''।

प्यारे मित्रो, थोड़ा सोचना, विचारना, एक बार आप मन में सही बात का ख्याल ले आएं तो गलत अपने आप छूटने लगता है, छोड़ना नहीं पड़ता। जो त्याज्य है उसका त्याग अपने आप हो जाता है। याद रखना, जीवन त्याज्य नहीं है, यह जीवन विरोधी धारणाएं हैं। यह धारणाएं प्रकृति ने नहीं दी, परमात्मा ने नहीं दी, यह हमारी तथाकथित सभ्यता ने दी हैं।

इस कैंसर स्पेशलिस्ट ने एक और बड़ी गजब बात कही है- उसने सारे डाटा, समस्त आंकड़े प्रगट करके कहा है कि देखो आज तक हम किसी भी चिकित्सा पद्धति के द्वारा कुछ भी हासिल नहीं कर पाए। अगर हम एक तरफ से किसी को बचाते हैं तो वह दूसरे रूप से पलायन कर लेता है। अगर हम इन लोगों का कैंसर खत्म कर दें तो इनमें से अधिकांश लोग पागल हो जाएंगे, कोई सुसाइड कर लेगा, कोई एक्सीडेंट में मारा जाएगा और संभवतः वह जानबूझकर ऐसी गाड़ी चला रहा होगा कि एक्सीडेंट हो। वह क्या करे? अब उसका कैंसर खत्म कर दिया तो वह परेशान है।

एक आशा थी कि हम खत्म होने वाले हैं, अब खत्म होने वाले हैं। उन्होंने आंकड़े इकट्ठे किए हैं कि अगर हम कैंसर से बचा लेंगे तो यह आदमी पागल हो जाएगा, पागलपन से अगर बचा लिया तो सुसाइड कर लेगा। कुल संख्या उतनी ही रहेगी। इन चारों पलायनवादी वृत्तियों का अगर हम हिसाब लगाएं तो कुल जोड़ ज्यों का त्यों ही रहेगा। अगर एक अरब आदमी पीड़ित हैं चारों चीजों से तो वह एक अरब ही रहेंगे चाहे कितनी ही चिकित्सा पद्धति बढ़ जाए। वह अनुपात वैसा का वैसा ही रहता है, उसकी जगह में रिप्लेसमेंट हो जाएगा। पागलपन दूर कर दो तो उसको कैंसर हो जाएगा, पर कुल जोड़ वही रहेगा।

उन्होंने कहा कि हमारी पूरी चिकित्सा पद्धति एक तरह से फ्लाप हो गई है क्योंकि जो आधारभूत मानसिकता है वह बहुत ही रुग्ण है और उसका निदान समझ ही नहीं आता है। अपने भीतर गौर से टटोलना, शायद यह सुनकर कुछ लोग चौंके भी होंगे, पर विचित्र बात है। एक बार आपके ख्याल में यह सच्चाई आ जाए तो आपके भीतर जीवन के प्रति जो नफरत भरी है वह खत्म होनी शुरू होगी। आप अपने कर्म क्षेत्र में, अपने संबंधों के क्षेत्र में, अपने प्रेम के क्षेत्र में खूब सघनता पूर्वक शामिल होंगे। उस इनवाल्वमेंट का, उस भागीदारी का नाम ही जीवन है। जीवन को उसकी पराकाष्ठा पर जीना ही आध्यात्मिक व्यक्ति का लक्षण है।

किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ। किआ बेद पुरानां सुनीऐ।
पड़े सुने किआ होई। जउ सहज न मिलिओ सोई।।1।।
हरि का नामु न जपसि गवारा। किआ सोचहि बारंबारा ।।1।।रहाउ।।
अंधिआरे दीपकु चहीऐ। इक बसतु अगोचर लहीए।
बसतु अगोचर पाई। घटि दीपकु रहिआ समाई ।।2।।
कहि कबीर अब जानिआ। जब जानिआ तउ मनु मानिआ।।
मन माने लोगु न पतीजै। न पतीजै तउ किआ कीजै ।।3।।

(हे मूर्ख) वेद, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन से तब तक कोई लाभ नहीं, जब तक कि इस पढ़ने-सुनने के परिणामस्वरूप उस प्रभु की प्राप्ति न हो ।।1।।

हे मूर्ख! तू परमात्मा का नाम-स्मरण नहीं करता (फिर) बार-बार दूसरी कल्पनाएं करने से तुझे क्या लाभ होगा?।।1।।रहाउ।।

(अज्ञान के) अंधेरे में दीपक की ज़रूरत होती है, ताकि भीतर से वह हरि-नाम रूपी पदार्थ मिल सके जिस तक इन्द्रियों की साधारण पहुँच नहीं हो सकती। जिस मनुष्य को वह अगम्य हरि-नाम रूपी पदार्थ मिल जाता है, उसके भीतर वह (विवेक का) दीपक फिर सदा स्थिर रहता है ।।2।।

कबीर का कथन है कि उस अगम्य हरि-नाम रूपी पदार्थ से मेरी भी जान-पहचान हो गई है। जब से जान-पहचान हुई है, मेरा मन उसी में रम गया है। परमात्मा में मन प्रवृत्त होने से (कर्मकाण्डी) जगत् की तसल्ली नहीं होती। नाम-स्मरण करने वाले को भी यह आवश्यकता नहीं होती कि वह लोगों की तसल्ली भी कराए ।।3।।

सभी मित्रों को नमस्कार

कबीर साहब कहते हैं-

‘किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ। किआ बेद पुरानां सुनीऐ।

पड़े सुने किआ होई। जउ सहज न मिलिओ सोई।।’

कहते हैं किताबें पढ़ने से क्या होगा? पठन-पाठन से कुछ न होगा? ‘किया वेद पुराणा सुनिये’ वेद पुराण सुनने से भी कुछ नहीं होगा। ‘पढ़े सुने किया होई’ पढ़ने सुनने से कुछ भी नहीं होगा। ‘जो सहज न मिलिया सोयी।’ वह जो सहज स्वरूप परमात्मा है, वह इन विधियों से नहीं मिल सकता। सहज के कई अर्थ हैं। एक अर्थ है- सुगम या सरल जो आसानी से हो जाए, द इज़ी वन। सहज का अन्य अर्थ है, जो साथ ही जन्मा हो। आपने सुने होंगे दो शब्द, अग्रज और अनुज। बड़े भाई को कहते हैं अग्रज, अग्र याने पहले, ज यानि जन्मा अर्थात् जो पहले जन्मा। छोटे भाई को कहते हैं अनजु, अनु यानि पीछे या अनुयायी, ज यानि जन्मा अर्थात् जो बाद में जन्मा। तो सहज क्या होगा?

सह यानि साथ और ज यानि जन्मा अर्थात् जो साथ ही जन्मा। जिसको हम साथ लेकर ही आए थे। जो हमारे साथ सदा-सदा मौजूद ही है। जन्म में भी, जन्म के पहले भी, मृत्यु के बाद भी अर्थात जो हमारा स्वयं का ही होना है, जिससे हम अलग हो ही नहीं सकते। निश्चित रूप से अपने इस सहज स्वभाव का ज्ञान बाहर की किन्हीं विधियों से तो नहीं हो सकता। किताब बाहर है, प्रवचन बाहर है, पढ़ने सुनने से वह ज्ञान नहीं होगा।

‘किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ। किआ बेद पुरानां सुनीऐ।

पड़े सुने किआ होई। जउ सहज न मिलिओ सोई।।

हरि का नामु न जपसि गवारा। किआ सोचहि बारंबारा ।’

कबीर कहते हैं- उसका तो स्मरण मात्र पर्याप्त है, क्योंकि हम उसे भूल गए हैं जो हमारा सहज स्वभाव है। वह कही खोया नहीं है, जो कहीं मिल जाएगा। हम केवल भूल गए हैं और सिर्फ उसकी याद आ जाए बस इतनी सी ही बात है। ‘क्या सोचे बारम्बारा’ और सोच-विचार से भी कुछ ना होगा। क्योंकि सभी विचार बाहर के जगत से संबंधित होते हैं। विचार हमें खुद से दूर ले जाते हैं, इससे और अधिक विस्मरण होगा। सिर्फ याद आ जाए बस। सभी संतों की देशनाओं में यह बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि हम परमात्मा को सिर्फ भूल गए हैं, वह हमारा स्वभाव है। किसी भांति उसकी याद फिर से आ जाए। इसके लिए कोई विधि-विधान की जरूरत नहीं है। वास्तव में कुछ गुम नहीं हुआ है।

किसी आदमी की जेब मे हजार का नोट रखा था और वह भूल गया। अब इस रूपये को दोबारा प्राप्त करने के लिए किसी विधि-विधान की आवश्यकता नहीं है।

विधि-विधान करने का तो मतलब ही यही है कि अभी उसकी याद नहीं आई है कि वह नोट जेब में रखा है। आप अन्य चीजों में व्यस्त हो गए थे। बस इतना याद आ जाए कि वह धन मेरे पास ही मौजूद है। 'किया सोचे बारम्बारा' बार-बार कुछ सोचने की भी जरूरत नहीं है, दार्शनिक, फिलॉसाफिकल सिद्धांत, कुछ सोचने की जरूरत नहीं है।

'अंधिआरे दीपकु चहीऐ। इक बसतु अगोचर लहीए।'

एक वस्तु जो घर के भीतर ही मौजूद है लेकिन अंधेरे के कारण दिखाई नहीं दे रही है, उसके लिए बस इतना ही चाहिए कि एक दीपक जला लिया जाए। ऐसे ही चैतन्यता का दीपक अपने भीतर जलाना होगा। हमारी स्थिति ऐसी है जैसे अंधेरे कमरे में बहुत कीमती हीरा रखा हुआ है, पर हमें उसकी खबर ही नहीं है क्योंकि हम गहरी नींद में सोये हुए हैं। काश हम जाग जाएं, चैतन्य हो जाएं, यह जागरण का दीप जल जाए तो भीतर के खजाने का पता लग जाएगा।

'बसतु अगोचर पाई। घटि दीपकु रहिआ समाई।'

कहि कबीर अब जानिआ। जब जानिआ तउ मनु मानिआ।।'

कबीर कहते हैं कि मैंने भीतर के स्वाद को जान लिया है और जानते ही मेरी तसल्ली हो गयी है। मेरा मन अब मान गया है।

'जब जानिआ तउ मनु मानिआ।'

कई लोग उल्टी कोशिश करते हैं, जानने से पहले ही मान लेते हैं। वेदान्ती लोग रटते रहते हैं कि मैं आदि ब्रह्म स्वरूप हूं, मैं ये हूं, मैं वो हूं, मैं शुद्ध-बुद्ध आत्मा हूं। लेकिन यह बात भी मान्यता ही है इससे ज्ञान फलित नहीं होगा। केवल मानने से जानना संभव नहीं है।

कबीर कह रहे हैं-

'जब जानिआ तउ मनु मानिआ।'

जब कबीर जी ने जान लिया तब फिर सब बातें साफ हो गईं, वे कहते हैं कि जानते ही मेरा मन मान गया, तसल्ली हो गयी।

'मन माने लोगु न पतीजै। न पतीजै तउ किआ कीजै।'

कबीर साहेब बहुत बड़ा व्यंग्य कर रहे हैं, कहते हैं कि मैं तो समझ गया, मान गया, जान गया, 'मन माने लोग ना पतिजे' लेकिन अब लोग नहीं मान रहे हैं। मुझे तो स्वयं के ब्रह्म स्वरूप का पता चल गया, पर लोगों को कैसे बताऊं? 'लोग ना पतिजे औ ना पतिजे तो का कीजे।' लोग नहीं मानते हैं, अब क्या करें? उनकी वो जानें पर मुझे तो अपने भीतर रखी सम्पदा का अहसास हो गया है। अब अन्य लोगों को कैसे इसका पता चलेगा? उन्हें कैसे इसका अहसास होगा? अपने भीतर के इस खजाने का पता केवल स्वयं को ही चल सकता है। जो अपने भीतर जाएगा, केवल वही उसे जान पाएगा। दूसरों के द्वारा उसे जान पाना असंभव है। दूसरे के भीतर क्या है, हमें कैसे पता

चलेगा? अपने भीतर ही उस सहज को जानना है।

‘पड़े सुने किआ होई। जउ सहज न मिलिओ सोई।’

बाहर जितने भी क्रियाकलाप हैं जो हम परमात्मा की खोज के नाम पर करते हैं जैसे मंदिर जाना, मस्जिद जाना, तीर्थ जाना, गंगा स्नान करना, शास्त्र अध्ययन, चिंतन-मनन, वाद-विवाद, तर्क-वितर्क, पूजा-पाठ इत्यादि, इन सब से पता चलता है कि अभी हमें सुधि नहीं आई है, याद नहीं आई है। अपने भीतर की कीमती वस्तु पर अभी नजर नहीं पड़ी है, अभी हम बाहर ही तलाश कर रहे हैं। अभी तो हमको दिशा की सूझबूझ भी पैदा नहीं हुई है कि कहां खोजना है? बाहर की खोज से वह वस्तु कैसे मिलेगी जो भीतर मौजूद है? मंदिर, मस्जिद, मूर्तियों और तीर्थ स्थानों में वह कैसे मिलेगा जो मैं खुद ही हूं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह-सुबह अपने घोड़े पर सवार तेजी से भाग रहा था, बाजार से निकलते हुए जोर-जोर से चिल्लाता जा रहा था कि सामने से दूर हट जाओ बहुत आपातकालीन स्थिति है, मुझे जल्दी जाना है, रास्ता छोड़ो। सब लोग रास्ता छोड़कर सहयोग करने लगे कि पता नहीं क्या मुसीबत आ गयी? आखिर एक मित्र ने चिल्लाकर पूछा कि नसरुद्दीन क्या मुश्किल आ गयी? हम कुछ मदद करें? नसरुद्दीन ने कहा, अवश्य! मुझे मदद की बहुत जरूरत है। तुम जानते हो कि मुझे अपने घोड़े से बहुत लगाव है। सुबह से मेरा घोड़ा खो गया है, मिल ही नहीं रहा है। उस आदमी ने कहा कि हद हो गयी तुम अपने घोड़े पर ही तो सवार हो। नसरुद्दीन ने नीचे देखा और रुक गया। नसरुद्दीन ने उस मित्र को बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि तुमने अच्छी याद दिलायी क्योंकि मैं उसे दूर-दूर ढूंढ रहा था कि घोड़ा कहां गया? अब जिस पर मैं खुद ही सवार हूं, वह दूर कैसे दिखायी देगा?

नसरुद्दीन सूफी फकीर है, वो तो मजाक कर रहा है और हम सब पर व्यंग्य कर रहा है। घोड़ा तो फिर भी हमसे भिन्न हैं, नजर पड़ भी सकती है, दूसरा कोई बता सकता है। परंतु सोचो अगर नसरुद्दीन खुद को ही ढूंढ रहा हो और हड़बड़ी में तेजी से भाग रहा हो कि मैं नसरुद्दीन को खोज रहा हूं। वह है कहां? तो जितना ही वो भाग-दौड़ मचाएगा, जितनी तीव्रता दिखाएगा उतना ही और-और भूलता जाएगा कि मैं यहीं मौजूद ही हूं। नसरुद्दीन को घोड़े का तो शायद ख्याल आ भी जाए पर अपना ख्याल आना बहुत मुश्किल है। अगर एक बार हमने यह सिलसिला शुरू कर दिया कि स्वयं को कहीं खोजना है, तो बस पहला कदम ही गलत हो गया। इसके पहले कि खोज शुरू हो, हमें स्वयं को झकझोर कर, स्वयं के होने पर एक बार गौर कर लेना चाहिए, तब सम्यक दिशा में हमारी गति शुरू हुई।

राम-रस पियो रे

रे मन तेरो कोइ नहीं खिंचि लेइ जिनि भारु।
बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु।।
राम रसु पीआ रे। जिह रस बिसरि गए रस अउर ।।1।रहाउ।।
अउर मुए किआ रोईए जउ आपा थिरु न रहाइ।
जो उपजै सो बिनसि है दुखु करि रोवै बलाइ ।।2।।
जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग।
कहि कबीर चिति चेतिआ राम सिमरि बैराग ।।3।।

हे मन! जीवन (का वृक्ष सुफलित) हो उसके लिए निहित सुकर्म करने का भार जो तुझ पर है, (तेरे अतिरिक्त) ऐसा कोई तेरा अपना नहीं है जो इस भार को तेरे लिए खींचकर अपने सिर पर ले ले। जैसे पक्षियों का (अपना-अपना अनिश्चित) बसेरा वृक्षों पर होता है, वैसे ही इस जगत् (में आत्मा) का वास है ।।1।। हे भाई! जो परमात्मा के नाम का रस पीते हैं, (उसकी कृपा से) उस रस के प्रभाव से उनके दूसरे सारे रसों के चस्के विस्मृत हो जाते हैं ।।1।।रहाउ।। किसी दूसरे के मरने पर रोने का क्या अर्थ, जबकि (वास्तविक्ता यह है कि) अपना ठिकाना ही सदा नहीं रहने वाला है। (यही नितांत सत्य है) जो-जो जीव जन्मता है, वह नष्ट होता ही है, फिर (किसी और के मरने पर) व्यर्थ दुःखी होकर रोना किस काम का? इसका कोई औचित्य नहीं है ।।2।। संत कबीर कहते हैं- जिन्होंने अपने मन में प्रभु का स्मरण किया है, प्रभु को याद किया है, उनके सारे मोह छूट जाते हैं और जगत् से निर्लिप्तता पैदा हो जाती है। नाम-रस का पान करते-करते उनकी आत्मा जिस प्रभु से पैदा हुई है, उसी में जुड़ी रहती है। ।।3।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गई है और उसका परिवार शोकाकुल है। लोग रो रहे हैं, उदास हैं। संत कबीर भी वहां पहुंचते हैं। और तब उन्होंने ये वचन कहे हैं-

'रे मन तेरो कोई नहीं खींच ले जिन भार।'

कोई भी संसार में तेरा भार खींचने वाला नहीं है।

'बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु।।'

जैसे पंछी वृक्ष पर थोड़ी देर के लिए बसेरा करता है, फिर उड़ जाता है। ' रैन बसेरा तैसो इह संसार।' वैसे ही आत्माएं इस जगत में आती हैं, शरीर धारण करती हैं, थोड़ी देर रहती हैं और फिर आकाश में विलीन हो जाती हैं। कोई यहां सदा-सदा रहने के लिए नहीं आया है। यह हमारा घर नहीं, ज्यादा से ज्यादा एक सराय है। हम थोड़े दिन के मेहमान हैं। हमसे यही भूल हो जाती है कि हम अपने आप को मेजबान समझने लगते हैं। हम सब तो मेहमान हैं।

'बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु।।

राम रसु पीआ रे। जिह रस बिसरि गए रस अउर।।'

यहां इस रैन बसेरे में बस एक ही काम करने योग्य है कि प्रभु के रंग में रंग जाओ, अपने भीतर के जीवन रस को पियो। वही अमृत तत्व है, जो कभी नहीं मरता है। उस राम रस को जान कर, उसमें आनन्द मग्न होकर, फिर अन्य सभी रस फीके पड़ जाते हैं।

'अउर मुए किआ रोईए जउ आपा थिरु न रहाइ।'

रोते हुए लोगों से कबीर साहेब कह रहे हैं कि दूसरों के मरने पर तुम क्या रोते हो? तुम स्वयं ही स्थिर नहीं हो, तुम ही यहां टिकने वाले नहीं हो। दूसरे की मृत्यु पर आंसू बहाना तुम्हें शोभा नहीं देता। शायद तुम्हें यह ख्याल ही नहीं है कि जल्दी ही वो दिन आएगा जब अन्य लोग तुम्हारे जाने पर आंसू बहा रहे होंगे। लोग इस प्रकार दुनिया में जी रहे हैं जैसे उन्हे यहां सदा-सदा रहना है। कोई मर जाता है तो हम कहते हैं कि बेचारा मर गया। यदि वो बेचारा है तो हम कहां अमर रहने वाले हैं? क्या हमारा एक यही काम है कि लोगों को अर्थी में कंधे देकर मरघट तक पहुंचा आएं? क्या हमें सदा यहीं रहना है? कई लोगों को हम मरघट पहुंचा आएं हैं पर अपना ख्याल ही नहीं आता।

कबीर साहेब चेता रहे हैं-

'अउर मुए किआ रोईए जउ आपा थिरु न रहाइ।

जो उपजै सो बिनसि है दुखु करि रोवै बलाइ।।'

कहते हैं, जगत का एक शाश्वत नियम है कि जो उपजा है वह नष्ट भी होगा। किसी के उपजने पर हंसने की क्या बात है और किसी के समाप्त हो जाने पर रोने की क्या बात है? ये एक ही डंडे के दो छोर हैं, जन्म और मृत्यु। जन्म हो गया तो मृत्यु होगी ही होगी। जन्म से ही शुरूआत हो जाती है मृत्यु की। सिलसिला आरम्भ हो जाता है। क्रमशः रोज-रोज मृत्यु होती जा रही है। रोज एक-एक दिन जिन्दगी का कम होता जा रहा है। इसमें किस चीज पर खुशी मनाओगे और किस चीज में उदास होओगे? ये डंडे के दो छोर हैं, एक चुम्बक के दो ध्रुवों की तरह संयुक्त हैं, इनको अलग-अलग कर ही नहीं सकते। एक सिक्के के दो पहलू हैं। क्या ऐसा सिक्का बन सकता है जिसमें एक ही पहलू हो? यह नामुमकिन है।

कबीर कहते हैं फिर किस बात का रोना? वही हुआ है जो होना था। लोग मृत्यु को कहते हैं अनहोनी हो गई। यह बड़ी विचित्र बात है कि जो एक मात्र 'सुनिश्चित होनी' है, उसको ही कहते हैं अनहोनी। बाकि सारी बातें अनिश्चित हैं, पक्का नहीं है कि हों या न हों। पर एक बात पक्की है, १०० प्रतिशत गारन्टी है, वह निश्चित होगी ही, वो अनहोनी नहीं है, होनी है।

'जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग।

कहि कबीर चिति राम सिमरि बैराग।।'

ये जो सृजन हुआ है, जीवन का खेल चल रहा है। यह बस लुप्त होने को है, गायब होने को है। रोज धरती पर करीब ढाई लाख व्यक्ति समाप्त हो जाते हैं। अन्य पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े और पेड़-पौधों का अगर हिसाब लगाएं तो गिनती अरबों-खरबों में होगी। प्रतिदिन जो अनन्य जीव समाप्त हो रहे हैं, आश्चर्य है कि इन सबको देखते हुए भी हम चेतते नहीं, जागते नहीं है।

कबीर साहब कह रहे हैं-

'कहैं कबीर चित चेतिया।' चेतो, जागो, इस तथ्य से आंख न मूंदों, आंख मूंदने से समस्या हल नहीं होती है। लोग मृत्यु के बारे में बात करने से भी घबराते हैं। ओशो की प्रसिद्ध किताब 'मैं मृत्यु सिखाता हूं' जब अंग्रेजी में अनुवादित हुई तो अमेरिका में कोई प्रकाशक उसे छापने को तैयार न हुआ। 'आय टीच डेथ'- लोगों ने कहा, इसे खरीदेगा ही कौन? डेथ यानि मृत्यु के नाम से ही ऐसी घबराहट है। भारत में तो फिर भी चल जाता है क्योंकि यहां संतो की लम्बी परम्परा है जो मृत्यु के बारे में बताते रहे हैं। पश्चिम में तो कोई इस किताब को कोई हाथ भी ना लगाएगा। फिर ओशो से पूछा कि इसका नाम बदल दें? ओशो ने कहा बदल दो। ओशो की मजाक की आदत है, बाद में उस किताब का टाईटल उन्होंने रखा- 'हेअर एन्ड नाउ', जिसका उस किताब के

कन्टेन्ट से कुछ भी लेना देना नहीं है।

मृत्यु के नाम से हम घबराते हैं। उसकी चर्चा भी नहीं करना चाहते, जल्दी से भूल जाना चाहते हैं। मरघट पर खड़े लोग, अभी चिता जल ही रही है और वहां बातचीत शुरू कर देते हैं कि फलाने का लड़का तुम्हारी लड़की के लिए ठीक रहेगा और कौन फिल्म सी लगी है? शेयर मार्केट का दाम क्या चल रहा है? वहीं सब बातें शुरू हो गईं। सामने एक आदमी जिन्दा जल रहा है, अभी थोड़ी देर पहले जिन्दा था, अब जल रहा है। चार दिन पहले वो भी यही बातें कर रहा था कि कौन सी फिल्म लगी है?

लोग चेतते नहीं, जागते नहीं और थोड़ी देर को वैराग्य वहां फलित हो भी जाए तो उसको कहा जाता है श्मशान वैराग्य। उसका कोई महत्व नहीं है, वो दो-चार मिनट की बात है। घर लौटते-लौटते फिर सारी बात खत्म हो जाएगी। कबीर कह रहे हैं 'राम सिमर वैराग्य' काश हमें मृत्यु का यह तथ्य भली-भांति दिख जाए तो फिर भीतर एक अद्भुत वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा।

राग किस बात का रहेगा।? यहां कुछ बचना ही नहीं, कुछ बचता ही नहीं, हम खुद ही न बचेंगे, तो किस चीज से मोह करोगे? यहां कुछ भी इतना महत्वपूर्ण है ही नहीं। हम जो बहुत गंभीर हो कर बाहर की दुनिया को समझने की कोशिश कर रहे थे कि बाहर कोई महत्व की बात है, वह सब खेल तमाशा या लीला जैसा हो जाएगा। संत क्यों मृत्यु की इतनी चर्चा करते हैं? इसको भी थोड़ा समझना।

मनुष्य को आध्यात्मिक मूर्छा से जगाने के तीन उपाय हैं। जो लोग सर्वाधिक विवेकवान हैं, कहना चाहिए जो करीब-करीब जागृत ही हैं, वे तो जिन्दगी को देखकर ही जाग जाते हैं। जीवन पर्याप्त है उन्हें जगाने के लिए। जीवन में चारों ओर जो हो रहा हैं उसे देखकर भी हम अपेक्षाओं की नींद में, कामनाओं की नींद में सोए रहते हैं, ये निश्चित रूप से हमारे मूर्छित होने के लक्षण हैं।

अतः जो बहुत विवेकवान हैं, वे तो जीवन की घटनाओं को देखकर ही जाग जाते हैं। उनमें अत्यधिक संवेदनशीलता है, थोड़ी चोट लग जाना ही उनके लिए पर्याप्त है। जीवन की छोटी-छोटी चीजें उन्हें झकझोर देती हैं। कल किसी से प्रेम था, आज वो प्रेम संबंध टूट गया, तो क्या ये पर्याप्त नहीं कि प्रेम का सपना भी सदा के लिए नष्ट हो जाए? पहले अमीर थे आज अचानक अमीरी कम हो गयी, नुकसान हो गया, व्यापार में घाटा हो गया, तो क्या यह पर्याप्त नहीं कि धन के प्रति आसक्ति और धन से जो उम्मीदें लगा रखी थीं वो सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएं?

सुबह बगिया में एक फूल खिला है और शाम को मुरझा जाता है। क्या यह फूल तुम्हें नहीं जगाता है? जगाने वाला दूसरा मुख्य तत्व है- मृत्यु, मृत्यु का सत्य। जिन्हें

जिन्दगी नहीं जगा पाती उन्हें मौत जगा सकती है। उन्हें अभी और गहरी चोट लगनी है, खासकर किसी प्रियजन का विदा हो जाना। कल तक हम जिसकी सेवा कर रहे थे, जिससे प्रेम कर रहे थे, आज वो अचानक नहीं है। हृदय का एक कोना सदा-सदा के लिए खाली हो गया। जो अब कभी भी नहीं भरा जा सकता। उस व्यक्ति की जो जगह थी, उसे कोई भी न ले सकेगा। उसकी मृत्यु केवल उसकी ही मृत्यु नहीं है कहीं न कहीं हमारी भी आंशिक मृत्यु हो गयी।

मानो कि पिता जी चल बसे, याद रखना अब तुम भी किसी के बेटे न रहे, वो जगह खत्म हो गयी। जब तक पिता थे तब तक तुम बेटे थे। अब पिता नहीं हैं अब तुम भी पुत्र नहीं हो। तुम्हारे व्यक्तित्व का एक बड़ा हिस्सा गायब हो गया। पत्नी चल बसी अब तुम भी पति नहीं रह गए। बहुत कुछ कट गया। अपने प्रियजनों की मृत्यु भी जगाने के लिए बहुत सहयोगी हो सकती है।

जगाने वाला तीसरा तत्व है- गुरु तत्व। पहला जीवन तत्व, दूसरा मृत्यु तत्व, तीसरा गुरु तत्व। जिन्हें न जिन्दगी जगा पाती है, न मौत जगा पाती है, जिनकी नींद बहुत ही गहरी है, अब उन्हें किसी के द्वारा झकझोरे जाने की जरूरत है। कोई ऐसा हो जो उनके चेहरे पर ठण्डा पानी छिड़के, जो उनको आवाज दे, जो उन्हें चौंकाए, जो उन्हें डंडा मार कर जगाए। जिनकी नींद अत्यंत गहरी है, उन्हें गुरु की जरूरत पड़ती है। जो बहुत ही संवेदनशील है उनके लिए जीवन स्वयं ही गुरु है। दूसरे नम्बर पर मृत्यु गुरु है।

संस्कृत में तो एक सूत्र है जिसमें कहा गया है। आचार्यः मृत्यु। जो गुरु है, वह मृत्यु ही है। यह बात दोनों तरफ से सही है। गुरु मृत्यु स्वरूप है। वह अहंकार को मारेगा, वह मरने की कला सिखायेगा या उल्टी तरफ से कह लो कि मृत्यु गुरु है। वह भी बात सही है। दोनों सही हैं। तीसरे वे लोग हैं जिन्हें गुरु की जरूरत है, जिनकी नींद बड़ी गहरी है, कोई उन पर मेहनत करे, कोई उन्हें उठाए, तो ही वे उठ पाएंगे।

चौथे प्रकार के लोग ऐसे हैं जिनकी नींद इतनी ज्यादा है कि फिलहाल उनके जागने की कोई उम्मीद ही नहीं है। अभी उनका सवेरा बहुत दूर है। ना उन्हें जिन्दगी जगा पाती, न उन्हें मौत जगा पाती और यहां तक कि गुरु भी नहीं जगा पाते हैं। गुरुओं का जो प्रभाव है वो मुश्किल से एक लाख में से एक व्यक्ति पर पड़ता है। तो फिर जीवन और मृत्यु का कितना प्रभाव पड़ता होगा? आप स्वयं ही आंकलन कर लेना। गुरु का प्रभाव एक लाख में से एक व्यक्ति से अधिक पर नहीं पड़ता है। जिनकी नींद टूटने के करीब आ गयी है, वे ही गुरु की बात से जाग पाएंगे।

कितना मुश्किल है यह जागरण। हंसी-खेल नहीं है, हम ऐसी गहन मूर्छा में सोए हुए हैं, अपने सपनों में खोए हुए हैं और सब चीजों के प्रति बिल्कुल असंवेदनशील हैं।

सदगुरु की बातों में दोनों प्रकार की बातें आएंगी- जागरण के लिए बारम्बार वे मृत्यु के प्रति सचेत करेंगे और जीवन की उन घटनाओं के प्रति भी हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे, जिनसे जागरण फलित हो सकता है, जिनसे सपने टूट सकते हैं। इसलिए संतों की वाणी में मृत्यु का इतना ज्यादा जिक्र आता है।

पहली बार जब पूर्वी साहित्य पश्चिमी भाषा में अनुवादित हुआ तो लोगों ने कुछ इस प्रकार का निष्कर्ष निकाला कि पूरब के मनीशी निराशावादी हैं, मृत्यु उन्मुखी हैं। उनका ये निष्कर्ष सरासर गलत है। मृत्यु के प्रति हम जाग जाएं तो ही एक अद्भुत आशा पैदा होती है। वह जो जीवन का वास्तविक सत्य है, वाइटल फोर्स है, हमारी जीवन ऊर्जा है, अमृत चैतन्य है, उसे हम जान पाएंगे। यदि जिन्दगी के राग-द्वेष से हम थोड़े परे हट पाएं तो हम वास्तविक जिन्दगी को पहचान पाएंगे कि जीवन की शक्ति क्या है? हम छोटी-छोटी क्षुद्र बातों में ही व्यस्त रहते हैं, न हमारे पास समय है न हमें फुर्सत है। दिन भर भाग-दौड़ करते हुए, थके मांदे रात को सो जाते हैं, सुबह फिर वही संसार के सपने, फिर से भाग दौड़ शुरू हो जाती है। बीच में मौका ही नहीं है, कभी जागकर पुनः विचार करने का या कुछ देखने का अवसर ही नहीं है। हम ऐसे व्यस्त हैं।

तो सतगुरु निश्चित रूप से जीवन की परिस्थितियों का भी प्रयोग कर लेंगे और मृत्यु का तो निश्चित ही बहुत ज्यादा उपयोग कर लेंगे, जगाने के उपकरण के रूप में। अतः भारत के मनीषी निराशावादी नहीं है, मृत्यु उन्मुखी नहीं है बल्कि उनका लक्ष्य परम जीवन को पहचानना है। उस परम दिशा की ओर लोगों को ले जाना है। लेकिन वह द्वार मृत्यु जाता है।

एक बड़ी अद्भुत सूफी कहानी ओशो ने अपने प्रवचनों में कही है कि एक अमीर सौदागर था। उसके पास एक पिंजड़े में बहुत ही खूबसूरत पंक्षी बंद था। वो पक्षी कही दूर जंगल से लाया गया था। ये जो सूफी कहानी है, यह रेगिस्तान की कहानी है जहां वो अमीर रहता था। कहीं दूर से पकड़ कर इस पंछी को लाया गया था। एक बार वो अमीर सौदागर उसी जंगल के रास्ते से अपने व्यापार के सिलसिले में कहीं जा रहा था, तो उसने उस पंछी से पूछा कि मैं तुम्हारी जात-बिरादरी के दूसरे पक्षियों से मिलूंगा, क्या तुम्हें कोई संदेश उन तक पहुंचाना है?

उस पक्षी ने अपनी भाषा में कुछ कहा, जिसको सौदागर समझ नहीं पाया पर फिर भी उसने वह याद कर लिया। पक्षी ने अपनी भाषा में कहा था कि मैं बहुत तकलीफ में हूं और पिंजड़े में बंद हूं, मुझे मुक्ति का मार्ग बताओ। जिस ढंग से पक्षी ने यह कहा था, सौदागर ने वह रट लिया था, उसे मतलब समझ में नहीं आया। जंगल से गुजरते हुए, उस सौदागर ने पंछियों का एक झुण्ड देखा जो पेड़ पर बैठा था और उसी पक्षी की जाति का था। सौदागर ने उनसे कहा कि तुम्हारी जाति का

एक पंछी मेरे पास है और उसने ये संदेश तुम सबके लिए भेजा है। सौदागर ने वह रटा रटाया संदेश सुना दिया।

सौदागर को तो पता नहीं था कि इसका मतलब क्या है? जैसे ही पंछियों के झुण्ड ने यह संदेश सुना, उसमें से पांच-छः पंछी झट से नीचे गिरे और मर गए। सौदागर तो बहुत हैरान हुआ कि ऐसी कौन सी अपशगुन की बात कह दी मैंने कि ये तो मर ही गए, पेड़ से अचानक गिर गए। खैर, जब वह व्यापार के सिलसिले से वापस लौटा तो उसने उस पिजड़े के पंछी को यह सारी बात बताई। जैसे ही उस पिजड़े के पंछी ने सुना वो भी अपने पिजड़े के भीतर तुरन्त गिरा और मर गया।

उस सौदागर ने सोचा कि पता नहीं क्या बात हो गयी, शायद अपने रिश्तेदारों की मृत्यु की खबर सुनकर इसको भी सदमा लग गया है, ये भी मर गया है। सौदागर उस मुर्दा पंछी का क्या करता? इसलिए उसने पिंजड़े के द्वार खोलकर उस पंछी को पिजड़े के बाहर फेंक दिया। जैसे ही उसने पंछी को बाहर फेंका वो तुरंत उड़ गया और जाकर पेड़ पर बैठ गया। उस पंछी ने कहा कि तुम समझ नहीं पाए, उन पंछियों ने प्रतीक रूप में मुझे मुक्ति का मार्ग बताया था कि मरे जैसे हो जाओ। वो वास्तव में मरे नहीं थे, गिर के उन्होंने मरने का अभिनय किया था। मैं उनका संदेश समझ गया था। मैंने उनसे पूछा था कि मुक्ति का मार्ग क्या है? पिंजड़े से कैसे निकलूं? तो बिल्कुल ठीक उत्तर उन्होंने दिया कि मरे जैसे हो जाओ।

सूफी कहते हैं कि जो पंछी जंगल में गिर कर मर गए थे वे सतगुरु के प्रतीक हैं। उन्होंने ठीक रास्ता बताया है कि तुम भी अचानक बस मरे जैसे हो जाओ, मृतवत् हो जाओ, तब तुम माया के सौदागर से मुक्त हो जाओगे। हम सदैव जिन्दा को पकड़ते हैं, कैद में रखते हैं, मुर्दा लाश को कौन रखेगा? इस सूफी कहानी में जो संदेश छिपा है, ओशो ने इसकी बड़ी अद्भुत व्याख्या की है कि 'मृत्यु है द्वार अमृत का' जिसे उस परम जीवन को या उस परम ऊर्जा को जानना है, उसे मुर्दा जैसा हो जाना होगा।

सब प्रकार की भाग-दौड़ समाप्त हो जाए। शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक, तब क्या शेष रह जाएगा? जीवन की धड़कती हुई ऊर्जा ही तो बचेगी ना! फिलहाल हमारी ऊर्जा कुछ करने में व्यस्त है तो हमें उसका अहसास नहीं हो पाता है; ऑक्युपाईड एनर्जी। जब हम कुछ नहीं कर रहे होंगे तब क्या होगा? हम मुर्दा जैसी हालत में या नींद जैसी स्थिति में पड़े रहें परंतु भीतर से होशपूर्ण रहें, तब क्या बचेगा? कुछ भी नहीं बचेगा। सांस भी ऐसी धीमी हो जाए कि मानो मर ही गए हैं।

एक दम्पत्ति से मैं मिला, वे 'बायो फीडबैक' मशीन बेचते हैं। उस मशीन का प्रयोग हम कर रहे थे। मैं और ओशो शेखर जी वहां थे, तो उन्होंने सांस की एक मशीन

दिखाई, जिसमें कम्प्यूटर द्वारा सांस की गिनती होती है, और वह मशीन चित्र के रूप में यह भी दिखाती है कि आपकी सांस कैसी चल रही है? बीच-बीच में उसमें निर्देष भी दिए जाते हैं कि किस विशेष प्रकार से सांस को लेना है। उन दम्पत्ति ने बताया कि एक स्वस्थ व्यक्ति एक मिनट में औसतन 16 से 17 बार सांस लेता है। यदि लगभग छः सांस ली जाएं तो चित्त बहुत शांत हो जाता है।

उन्होंने मेरे ऊपर प्रयोग किया। पहले मेरी पांच सांसे चलीं, वो महिला कहने लगी कि आप पर क्या प्रयोग करें? जो हमारा लक्ष्य है आप तो उससे भी कम सांस ले रहे हैं। मैंने कहा ठीक है पर कुछ देर प्रयोग चलने देते हैं। थोड़ी देर मैंने सांस पर ध्यान दिया तो वह मशीन एक मिनट में साढ़े तीन सांस दिखाने लगी। वह बहुत ही चकित हुए। ओशो शेखर जी पर उन्होंने जब यह प्रयोग किया तो उनकी एक मिनट में केवल ढाई सांस थी। यह करीब-करीब मरे जैसा ही है।

एक अन्य प्रयोग उन्होंने किया जिसमें हम दोनों असफल रहे। वह प्रयोग ऐसा था कि जितना मांसपेशियों में तनाव होगा, उसी के अनुसार एक गेंद ऊपर से नीचे आती जाएगी, जैसे-जैसे रिलैक्स होंगे अंत में वह हृदय तक आ जाएगी। इस प्रयोग में जो मापक आधार है, जो बेसलाईन मेजरमेंट है वो ऊपर से शुरू होता है। हम दोनों उस गेंद को नीचे लाने में असफल रहे क्योंकि हम पहले से ही रिलैक्स हैं। तो बेसलाईन ही ऊपर कर रहे हैं तो उससे ज्यादा रिलैक्स नहीं हो सकते। अतः करीब-करीब मरे जैसे होकर ही तुम उस अद्भुत जीवन ऊर्जा को जानोगे, जो अमृत चैतन्य का एक गुण है।